10.2

आज की वैज्ञानिक महिलाएं

एडना योस्ट

आज की वैज्ञानिक महिलाएं

संसार की 11 प्रसिद्ध वैज्ञानिक महिलाओं के जीवन और कार्य का परिचय

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली

'WOMEN OF MODERN SCIENCE' का अनुवाद

अनुवादक
कांतिमोहन

दूसरा संस्करण, १९६६

मूल्य : तीन रुपये
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली
मुद्रक : भारत मुद्रणालय, शाहदरा, दिल्ली

AAJ KI VAIGYANIK MAHILAEN by EDNA YOST
BIOGRAPHIES
3.00

प्राक्कथन

वैज्ञानिक महिलाओं की जीवनी से सम्बन्धित सामग्री बड़ी ही सीमित मात्रा में उपलब्ध है। जीवनी अनेक पाठकों का प्रिय विषय है, और जब विज्ञान को सामान्य जन की समझ में आने योग्य भाषा और विचारों में प्रस्तुत किया जाता है तो पाठकों को उसमें भी विशेष आनन्द आता है। इस तथ्य की जानकारी ने इस लेखिका को वैज्ञानिक महिलाओं के इन संक्षिप्त रेखाचित्रों को प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी। आशा है, जिन पाठकों को विज्ञान का साधारण ज्ञान है उन्हें भी यह पुस्तक सहज और रोचक लगेगी।

प्रकाशक महोदय ने मुझसे कुछ ऐसी वैज्ञानिक महिलाओं को चुन लेने केलिए कहा था जिन्होंने विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में काम किया हो, और जिनका कार्य युवा छात्र-छात्राओं को विज्ञान को अपना जीवन-धर्म बनाने की दिशा में प्रेरित कर सके। स्पष्ट है कि मेरा उद्देश्य विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में से सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक महिलाएं चुनना नहीं था। (शायद सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक महिलाओं का निर्धारण संभव भी नहीं है।) प्रकाशक और मैं इस बात पर सहमत थे कि चुनी गई महिलाओं में से कुछ तो ऐसी हों जिन्होंने अपना वैज्ञानिक कार्य लगभग पूर्ण कर लिया हो, और कुछ ऐसी जिनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य अभी भविष्य के गर्भ में हो। हां, सभी वैज्ञानिक महिलाएं ऐसी हों, जिन्हें अपने-अपने क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी हो। सारांश यह कि इस पुस्तक के लिए हमें ऐसे श्रेष्ठ वैज्ञानिक चाहिए थे जिनमें ये दो बातें हों—(१) वे महिला हों; (२) उन्हें अपने क्षेत्र के पुरुष और महिला वैज्ञानिकों में अग्रणी मानकर सम्मानित किया जा चुका हो। इस प्रकार के वैज्ञानिकों की तलाश में मुझे कई लोगों से सहायता मिली, किन्तु अंतिम चुनाव की जिम्मेदारी मुझपर ही है।

अगला कदम और मुश्किल था। एक-एक करके मुझे इन महिलाओं को आश्वस्त करना पड़ा कि इस पुस्तक की तैयारी में उनकी सहायता आवश्यक है, ये सभी अपने क्षेत्र की लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिक थीं और इनका जीवन अत्यधिक व्यस्त था। किन्तु, इस सबसे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। क्योंकि, एक बार इस बात से आश्वस्त हो जाने पर कि जो काम किया जा रहा है वह समीचीन है और उनकी सहायता के बिना सुचारू रूप से सम्पन्न नहीं हो सकता, जो लोग जितने बड़े और जितने अधिक व्यस्त होते हैं वे उतनी ही आसानी से सहयोग देने को तत्पर हो जाते हैं। मेरे मार्ग में सबसे बड़ी बाधा यह थी कि अधिकांश वैज्ञानिक न केवल आत्मप्रचार नहीं चाहते बल्कि उससे कतराते भी हैं, और दुर्भाग्य से आज 'संक्षिप्त जीवन-परिचय' शब्द उस साहित्य के ही लिए प्रयोग किया जाता है जिसका उद्देश्य अतिरंजित तथ्यों द्वारा आत्मप्रचार होता है।

अन्ततः मुझे उनका सहयोग पाने में सफलता प्राप्त हुई। मैंने इस बात पर जोर दिया कि प्रचार और जीवनी दो अलग-अलग चीज़ें हैं और मेरा उद्देश्य प्रचार नहीं है बल्कि उनकी वैज्ञानिक उपलब्धियों पर विशेष प्रकाश डालते हुए उनका यथार्थ जीवन-परिचय देना ही है। मैंने आश्वासन दिया कि यदि उनमें से हरेक अपने विकासशील वैज्ञानिक के क्रमिक विकास का अध्ययन करने में मुझे सहायता देगी तो मैं वैज्ञानिक महिलाओं की जीवनी-विषयक साहित्यिक रिक्ति को पूर्ण करने का प्रयत्न करूंगी।

उस सहयोग का परिणाम है—वैज्ञानिक सफलता प्राप्त करनेवाली महिलाओं से सम्बद्ध यह पुस्तक। लेखिका उन महान वैज्ञानिक महिलाओं की अत्यन्त कृतज्ञ है जिन्होंने उसे समान स्तर पर सहयोग दिया और आधुनिक युग को व्यापक रूप से समझने के लिए एक गहरी अन्तर्दृष्टि प्रदान की।

न्यूयार्क सिटी —एडना योस्ट

जनवरी, १९५९

क्रम

आज की वैज्ञानिक महिलाएं

गर्टी थेरेसा कोरी

विज्ञान में रसायन, भौतिकी, और शरीर-क्रिया-विज्ञान एवं चिकित्सा इन तीन विषयों पर नोवल पुरस्कार दिए जाते हैं। ये पुरस्कार सन् १९०१ से प्रारम्भ हुए हैं और तब से जाति-धर्म या राष्ट्रीयता के आधार पर बिना कोई भेद-भाव किए प्रदान किए जाते हैं। विज्ञान के क्षेत्र में ये संसार के सर्वोच्च पुरस्कार माने जाते हैं। यदि पुरस्कारों की निर्णायक समिति इस परिणाम पर पहुंचती है कि किसी क्षेत्र-विशेष में कोई ऐसा अपूर्व काम नहीं हुआ जिसे यह सर्वोच्च सम्मान दिया जा सके तो उस क्षेत्र का पुरस्कार रोक लिया जाता है।

तीन बार ऐसा हुआ है कि यह नोबल पुरस्कार वैज्ञानिक शोध करनेवाले दम्पतियों को संयुक्त रूप से दिया गया है। आज तक केवल ये ही तीन महिलाएं विज्ञान में नोवल पुरस्कार प्राप्त कर सकी हैं।[1] सन् १९४७ में अमरीका को पहली बार यह सम्मान मिला जबकि सैंट लुई-स्थित वाशिंगटन विश्वविद्यालय के स्कूल ऑफ मेडिसिन के कार्ल और गर्टी कोरी को शरीर विज्ञान एवं चिकित्सा के क्षेत्र में नोवल पुरस्कार का आधा भाग प्रदान किया गया। कोरी-दम्पती जन्मतः आस्ट्रियाई थे किन्तु प्राग के मेडिकल स्कूल से स्नातक होने के कुछ ही दिन बाद उन्होंने स्वेच्छा से अमरीकी नागरिकता ग्रहण कर ली थी। अमरीकी नागरिक बनने के बाद उन्हें अपने उस शोध-कार्य के लिए सब सुविधाएं प्राप्त हो गईं जिस-पर आगे चलकर उन्हें पुरस्कृत किया गया और जब सन् १९४७ में उन्हें यह सर्वोच्च सम्मान प्राप्त हुआ तब उन्हें अमरीकी नागरिक बने लगभग बीस साल हो चुके थे।

---

१. सन् १९०३ में मेरी क्यूरी और उसके पति को भौतिकी में संयुक्त रूप से नोवल पुरस्कार दिया गया था। बाद में केवल उसे रसायन पर नोवल पुरस्कार दिया गया। क्यूरी स्वतन्त्र रूप से विज्ञान में नोवल पुरस्कार प्राप्त करनेवाली एकमात्र महिला तो है ही, साथ ही वह एकमात्र पुरस्कार-विजेता है जिसे यह पुरस्कार दो बार दिया गया है।

यह कहानी गर्टी थेरेसा रैड्नित्ज़ नामक लड़की की है जो आगे चलकर गर्टी थेरेसा कोरी के नाम से विख्यात हुई और जिसने अपने शोध-कार्य से वास्तव में नोबल पुरस्कार के अपने भाग को उपार्जित किया। उसका जीवन और कार्य अपने पति से इतने घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध हो चुके हैं कि एक के विना दूसरे की चर्चा करना असंभवप्राय है। हां, मेडिकल स्कूल में एक-दूसरे के संपर्क में आने और संयुक्त रूप से काम करने से पहले की बात दूसरी है। अपने उन प्रारम्भिक वर्षों में से गर्टी रैड्नित्ज़ का एक वर्ष तो वहुत ही कठिनाईपूर्ण रहा। यदि सोलह वर्ष की अवस्था में वह असाधारण और श्रमसाध्य कार्य के लिए कमर न कसती तो शायद उसकी कहानी कुछ और ही होती और आज हम उसे पूर्णतम, सम्पन्नतम और सर्वाधिक सुखी जीवन वितानेवाली महिला के रूप में याद न करते।

उसके जीवन के अनेक पक्ष थे और उसके परिपक्व एवं वहुमुखी व्यक्तित्व के निर्माण में उन सभीका समान महत्त्व है। एक पत्नी और मां के रूप में वह अपनी गृहस्थी में सब प्रकार सुखी व संतुष्ट थी। एक कर्मनिष्ठ वैज्ञानिक के नाते उसे प्रयोग-शाला की उन दुर्बोध समस्याओं में परम सन्तोष प्राप्त होता था जिन्हें सुलझाने में वह कठोर बौद्धिक अनुशासन और रचनात्मक कल्पनाका प्रयोग करती थी। एक मिलनसार और स्पृहणीय मित्र के रूप में उसके घनिष्ठ मैत्री-सम्बन्ध अनेक धर्मों और देशों के लोगों से थे। दस वर्ष तक वह बिस्तर पर पड़ी रही और यद्यपि इस लम्बी बीमारी ने उसे एक हद तक मुहताज कर दिया तथापि उसका विकास नहीं रुका। बीमारी को सिर-माथे रखकर वह अपने मानवीय गुणों और सूझ-बूझ का विकास करती रही। उसने अपनी आंखों से, मानवों के स्वास्थ्य और रुग्णता-विषयक समस्याओं की दिशा में किए गए अपने योगदान को समादृत होते तथा विज्ञान के क्षेत्र में मान्यता प्राप्त करते देखा। जीवन में उसे जो सफलताएं मिलीं वे निश्चित रूप से उन सभी सम्भावनाओं से परे थीं जो उसके सामने उस समय थीं जबकि सोलह वर्ष की उम्र में उसने मार्ग की सब वाधाओं को पार करके डाक्टरी पढ़ने का संकल्प किया था।

गर्टी रैड्नित्ज़ का जन्म प्राग में हुआ। उन दिनों यह नगर आस्ट्रिया में था, चेकोस्लोवाकिया में नहीं। उसका पिता प्राग में चीनी की कई परिष्करणशालाओं का प्रबन्धक था। अपने सामाजिक वर्ग की अधिकांश लड़कियों की तरह दस साल की अवस्था तक घर पर पढ़ाने के बाद उसे लड़कियों के एक स्कूल में दाखिल करा

दिया गया। उन दिनों के लिहाज से यह एक अच्छा स्कूल था। इसका लक्ष्य था बड़े घरों की लड़कियों को जीवन में सफल बनने की शिक्षा देना। इसलिए इस स्कूल में लड़कियों के सामाजिक और सांस्कृतिक गुणों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता था। चूंकि कुछ निसर्गतः बौद्धिक योग्यताएं इन गुणों की परिधि में नहीं आतीं इसलिए स्कूल के पाठ्यक्रम में विज्ञान या गणित को विशेष स्थान नहीं दिया गया था। शुरू में गर्टी रैड्नित्ज़ को इन विषयों की कमी नहीं खली। वह स्कूल की पढ़ाई में खूब रुचि लेती थी और उसके शिक्षक शीघ्र ही समझ गए कि इस लड़की में जन्मजात सामाजिक गुण हैं जिन्हें सरलता से विकसित किया जा सकता है। आगे चलकर जीवन-भर वैज्ञानिक शोध-कार्य में लगे रहने पर भी उसके ये जन्मजात गुण कभी नष्ट नहीं हुए। भावी डा० गर्टी कोरी की दयालुता उसके छात्र-जीवन में ही उजागर हो गई थी।

फिर भी गर्टी रैड्नित्ज़ ऐसी लड़की न थी जो अधिक दिनों तक अपने पूर्णतर विकास की अवहेलना सहन कर पाती। सोलह वर्ष की अवस्था में, जबकि वह प्राग के अपने उस स्कूल से स्नातक होने ही वाली थी, उसने डाक्टरी पढ़ने का फैसला किया। सम्भवतः अपने इस निर्णय में वह किसी हद तक अपने एक सम्बन्धी से प्रभावित हुई होगी जो एक मेडिकल स्कूल में कौमारभृत्य का प्रोफेसर था। पूछताछ करने पर पता चला कि मेडिकल स्कूल में दाखिल होने के लिए उसे आठ साल लैटिन सीखनी होगी (अभी तक उसे लैटिन का एक अक्षर भी नहीं आता था), जितना गणित उसने पढ़ा है उसके आगे पांच साल गणित और पढ़ना होगा, और इसके अलावा भौतिकी एवं रसायन का भी अध्ययन करना होगा। यह सारा काम जिमनेजियम में किया जा सकता था जोकि एक तरह का स्कूल था जिसमें अधिकांशतः छात्र पुरुष वर्ग के थे। पता चला कि गर्टी को भी वहां दाखिला मिल सकता है बशर्ते कि वह अपने को उस काम के योग्य सिद्ध कर सके। उसे मालूम था कि मेडिकल स्कूल में दाखिल हो जाने के बाद उसे छः वर्ष तक वहां पढ़ना होगा। एक बार तो उसे ऐसा लगा होगा कि डाक्टरी की डिग्री लेने से पहले ही उसकी गरदन हिलने लगेगी और बाल सफेद हो जाएंगे। मगर वह गर्टी रैड्नित्ज़ थी, कोई मामूली लड़की नहीं। उसने निश्चय किया कि स्नातक हो जाने के बाद गर्मी की छुट्टियों में वह सैर करेगी और इसके बाद जल्दी से जल्दी मेडिकल स्कूल में दाखिल होने के लिए अनिवार्य योग्यता प्राप्त करेगी।

उसने डाक्टर बनने का दृढ़ संकल्प कर लिया।

टाइरॉल पर छुट्टियां मनाते हुए उसका परिचय एक व्यक्ति से हुआ जो टेत्शेन में रीयल जिमनाज़ियम नामक स्कूल में शिक्षक था। जब उसे गर्टी की समस्याओं और भावी योजनाओं का पता चला तो उसने एक दिन गर्टी को सुझाया, "ऐसा है तो तुम इन छुट्टियों में ही मुझसे लैटिन सीखनी क्यों न शुरू कर दो?" वह राज़ी हो गई और भूरी आंखों व घने ललछौंहे बालोंवाली यह आकर्षक लड़की, जो छुट्टियों में जी भरकर मौज उड़ाने यहां आई थी, धीरे-धीरे टाइरॉल के सैलानियों के लिए ईद का चांद हो गई। छुट्टियां खत्म होते न होते गर्टी ने इतनी लैटिन सीख ली थी जितनी तीन वर्ष में सीखी जाती है। उसने फैसला किया कि अगले पांच वर्षों में भी यथासंभव वह अपनी यही रफ्तार बनाए रखेगी।

उसी साल शरद के दिनों में वह टेत्शेन रीयल जिमनाज़ियम में दाखिल हो गई। उसका एक ही लक्ष्य था—कम से कम समय में मेडिकल स्कूल की प्रवेश-परीक्षाओं के लिए पूरी तैयारी कर लेना। एक ही साल में उसने यह असम्भवप्राय काम कर दिखाया जिसमें कैलकुलस द्वारा गणित का अध्ययन भी सम्मिलित था। निःसन्देह उसकी बौद्धिक क्षमता और स्वयं को अनुशासित करने की शक्ति उत्कृष्ट कोटि की थी। उसने परीक्षा दी और सफल हुई। जीवन-भर इन परीक्षाओं को वह 'मेरे जीवन की कठिनतम परीक्षाएं' कहकर याद करती रही।

अपनी अठारहवीं वर्षगांठ के तुरन्त बाद ही वह प्राग विश्वविद्यालय के मेडिकल स्कूल में भरती हो गई। प्राग विश्वविद्यालय की गणना यूरोप के सर्वाधिक प्राचीन एवं प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों में की जाती थी। उस समय 'चार्ल्स फर्डिनांड'—प्राग विश्वविद्यालय को उन दिनों इसी नाम से पुकारा जाता था—दो शाखाओं में विभक्त था। एक शाखा चेक थी और दूसरी जर्मन। कुमारी रैड्नित्ज़ ने जर्मन शाखा के मेडिकल कॉलेज में अपना नाम लिखाया। इसी वर्ष इस कॉलेज में कार्ल कोरी नामक एक लंबा, नीली आंखोंवाला नवयुवक भी दाखिल हुआ जिसकी उम्र अभी अठारह वर्ष भी नहीं थी। कुछ ही दिनों बाद उन दोनों की मुलाकात हुई। कुछ समय बाद दोनों ने प्रयोगशाला में जीव-रसायन पर साथ-साथ काम किया। अपने अध्ययन के प्रथम वर्ष में ही गर्टी इस विषय में रुचि लेने लगी थी। वे दोनों साथ-साथ काम करके आनन्दित होते थे। प्रतिरक्षण-चिकित्सा (Immunology) पर किए गए अपने संयुक्त अध्ययन के परिणामों को

प्रकाशित रूप में देखकर वे पुलक उठे—उसपर उन दोनों के नाम साथ-साथ छपे थे।

उन्हें महसूस हुआ कि प्रयोगशाला के अन्दर ही नहीं, उसके बाहर भी वे एक-दूसरे को पसन्द करते हैं। आस्ट्रिया के आल्प्स पर्वत पर साथ-साथ चढ़ने में उन्हें अद्भुत आनन्द प्राप्त होता था। साथ-साथ तैरने, स्केटिंग करने या बर्फ पर फिसलने में एक विचित्र सुख था। वे परस्पर प्रणय-सूत्र में बंध गए। उनके परिचितों को इसपर कोई आश्चर्य नहीं हुआ। सन् १९२० की वसन्त ऋतु में वे दोनों एम० डी० की डिग्री के साथ स्नातक परीक्षा में उत्तीर्ण हुए और उसी साल गर्मियों में उन्होंने शादी कर ली।

अभी वे मेडिकल स्कूल के छात्र ही थे कि प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हो चुका था। इस युद्ध में कुछ देश हार गए थे और दूसरों की विजय हुई थी। जहां तक आस्ट्रिया का सम्बन्ध है, वह तो इस महायुद्ध में पूरी तरह तबाह हो गया था। उनका प्राग विश्वविद्यालय अब आस्ट्रिया में नहीं रहा था। प्राग अब नवनिर्मित देश चेकोस्लोवाकिया की राजधानी बन गया था। अस्पतालों में काम करनेवाले डाक्टरों की मांग तो थी किन्तु इन दो युवा डाक्टरों को अपना भविष्य उज्ज्वल नहीं दिखाई दिया क्योंकि ये दोनों डाक्टरी करने की बजाय जीव-रसायन पर अनुसन्धान करना चाहते थे। स्नातक होने के बाद डा० कार्ल को वियना में इस प्रकार के अनुसन्धान का एक अवसर मिला। डा० गर्टी भी उसी नगर में बालकों के एक अस्पताल में डाक्टर हो गई। अस्पताल में काम करने के अलावा वहां उपलब्ध साधनों का उपयोग करके उसने भी कुछ शोध-कार्य किया। अवटुकंठिकी (थायरॉइड) और प्लीहा का अध्ययन करके उसने कुछ लेख लिखे जो एक वैज्ञानिक पत्र में प्रकाशित हुए। मगर, उसे और उसके पति को यह अहसास होता जा रहा था कि जिस प्रकार का अनुसन्धान वे करना चाहते हैं उसकी सुविधाएं उन्हें यूरोप में प्राप्त नहीं हो सकतीं। उन्हें लगा कि सिर्फ अमरीका में ही उन्हें वे सब सुविधाएं उपलब्ध हो सकती हैं। वे वहां पहुंचने का कोई उपाय सोचने लगे।

स्नातक होने के दो वर्ष बाद कार्ल कोरी को न्यूयार्क राज्य में बफैलो-स्थित दुर्दम्य रोगों के शोध-संस्थान में जीव-रसायनज्ञ का पद प्राप्त हो गया। वे अकेले ही अमरीका आए। कुछ ही दिनों में उन्होंने अपनी पत्नी की नियुक्ति भी इसी संस्थान में सहायक विकृतिविज्ञानी के पद पर करा दी। अब वह भी अमरीका आ गई और इस प्रकार के पदों के लिए अनिवार्य सिविल सर्विस परीक्षा में उत्तीर्ण

भी हो गई। कुछ ही साल बाद उसकी नियुक्ति सहायक जीव-रसायनज्ञ के पद पर हो गई। इस पद पर नियुक्त हो जाने के बाद उसके लिए विकृति की शोध में अपना अधिकांश समय लगाना इतना आवश्यक नहीं रह गया। यह परिवर्तन बड़ा शुभ रहा क्योंकि गर्टी कोरी की रुचि शरीर के रोगों की अपेक्षा स्वस्थ शरीर के क्रिया-संचालन में ही विशेष रूप से थी।

इस प्रकार अमरीका आकर उन दोनों को फिर से साथ-साथ काम करने का अवसर मिला जैसाकि वे प्राग के मेडिकल स्कूल में करते थे। तब से (अर्थात सन् १९२२ से) अधिकांश वैज्ञानिक लेखों पर उन दोनों के नाम साथ-साथ प्रकाशित होते थे (यद्यपि कुछ अपवाद भी थे)। और, यद्यपि दोनों को स्वतंत्र रूप से सम्मान और पुरस्कार प्राप्त हुए, तथापि उन्हें मिलनेवाला सर्वोच्च पारितोषिक नोबल पुरस्कार उन दोनों को संयुक्त रूप से ही प्राप्त हुआ, जो सर्वथा उचित था क्योंकि उनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योगदान उन दोनों के संयुक्त प्रयत्न का ही परिणाम था।

जैसाकि वफैलो के इस संस्थान के नाम से ही स्पष्ट है, कोरी-दंपती की आरम्भिक जीवरासायनिक शोध मानव-शरीर की असामान्य वृद्धि के विभिन्न पहलुओं पर थी। चूंकि शरीर की सामान्य और असामान्य, दोनों ही तरह की वृद्धि उन खाद्य पदार्थों के कारण ही संभव होती है जिन्हें हम खाते हैं, इसलिए जीवरसायन में विशेष रुचि रखनेवाले कोरी-दम्पती का ध्यान विशेष रूप से उन रासायनिक प्रक्रियाओं (जिन्हें उपापचयन कहते हैं) की ओर आकृष्ट हुआ जिनसे गुज़रने के बाद ही भोजन के तत्त्व जीवित शरीर के निर्माता पदार्थों में परिवर्तित हो पाते हैं। आरम्भ में अर्बुदों के उपापचयन का अध्ययन करके उन्होंने जो निष्कर्ष निकाले उनकी ओर सिर्फ असामान्य वृद्धि पर काम करनेवाले वैज्ञानिक ही आकर्षित नहीं हुए बल्कि सामान्य वृद्धि के उपापचयन को समझने के इच्छुक लोगों ने भी उनमें रुचि ली। इस प्रारम्भिक अध्ययन ने कोरी-दम्पती के मन में इन प्रक्रियाओं को पूरी तरह समझने की लालसा उत्पन्न कर दी।

तब तक इंसुलिन का आविष्कार हो चुका था। इससे उनकी आगे काम करने की रुचि को प्रोत्साहन मिला तथा आगे की शोध के लिए एक दिशा भी मिली। इंसुलिन (हार्मोन वर्ग का) एक प्रोटीन है जो सामान्य शरीर में उत्पन्न होता है और उपापचयन की प्रक्रियाओं के समय कार्बोहाइड्रेटों (यानी हमारे भोजन

में निहित शर्करा और श्वेतसारों) के उपयोग का नियंत्रण करने में शरीर के काम आता है। इंसुलिन का आविष्कार हो जाने के बाद डाक्टरों के लिए मधुमेह नामक रोग पर कावू पाना काफ़ी आसान हो गया। मधुमेह प्रायः उस अवस्था में हो जाता हैं जब शरीर कार्वोहाइड्रेटों का समुचित उपयोग नहीं कर पाता। जीवरसायनज्ञ के पदों पर काम करते हुए उन दोनों डाक्टरों को इंसुलिन के रूप में एक ऐसा हथियार मिल गया जिसकी मदद से उन्होंने उन दुर्बोध और अस्पष्ट रासायनिक प्रक्रियाओं (विशेष रूप से भोजन में निहित कार्वोहाइड्रेटों की प्रक्रियाओं) के बारे में पूरी जानकारी हासिल करने का फैसला किया जो सम्पूर्ण मानव-शरीर में अनवरत रूप से होती रहती हैं।

सम्पूर्ण मानव-शरीर का जीवरासायनिक अनुसन्धान करने में कोरी-दम्पती की चिकित्सा एवं शरीर क्रिया विज्ञान की सुदृढ़ पृष्ठभूमि बड़े काम आई। दुर्दम्य रोगों के शोध-संस्थान ने उन्हें इस काम के लिए उपयुक्त सुविधाएं और पूरी छूट दी। अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में गर्टी कोरी अमरीका में मिली अतिशय उदारता और उन प्रभूत सुअवसरों के लिए कृतज्ञता-ज्ञापन करती थी जिनके कारण वह और उसका पति अपनी इच्छानुकूल अनुसन्धान करने में सफल हो सके थे। अमरीका में अपने वैज्ञानिक जीवन के आरम्भ में वफैलो के इस संस्थान में समस्त सुविधाएं उपलब्ध थीं।

शरीर में शर्कराओं के उपयोग से संबंधित रासायनिक प्रक्रियाओं के अनुसंधान पर अपना ध्यान केन्द्रित करते हुए कोरी-दम्पती ने सफेद चूहों को एक निश्चित मात्रा में शर्करा खिलाई। उनमें से कुछ चूहों को उन्होंने इंसुलिन दी, कुछ को नहीं। इसके बाद उन चूहों को श्वसन-कक्षों में रख दिया गया ताकि इस बात का पता चल सके कि शर्करा का कितना भाग ऑक्सीकृत हुआ है। नियत समय पर कार्वोहाइड्रेट के लिए उनके शरीरों का विश्लेषण किया गया। इस प्रयोग से तथा अन्य दूसरे तरीकों से कोरी-दम्पती इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि अवशोषित शर्करा का लगभग आधा अंश मधुजन में परिवर्तित होकर यकृत तथा पेशियों में जमा हो गया है, और कुछ शर्करा चरबी के रूप में परिवर्तित होकर इसी रूप में जमा हो गई है और वाकी शर्करा जलकर (ऑक्सीकृत होकर) कार्बन-डाइ-ऑक्साइड और पानी वन गई है।

जानवरों को नियमित आहार देकर और फिर उनके शरीरों का विश्लेषण

करके वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इंसुलिन यकृत में जमा शर्करा के परिणाम को तो कम कर देता है, किन्तु वैसे शर्करा के सामान्य उपयोग को बढ़ा देता है। यह नवीन तथ्य डाक्टरों के लिए मधुमेह के रोगियों के उपचार में बड़ा लाभदायक सिद्ध हुआ। कोरी-दम्पती ने अपने प्रयोगों को जारी रखा। आगे के प्रयोगों में उन्होंने शर्करा के विभिन्न रूपों का उपयोग किया और इंसुलिन के अलावा दूसरे हारमोनों को भी जानवरों के शरीर में पहुंचाकर देखा। इन प्रयोगों से शरीर की गुह्य रासायनिक प्रक्रियाओं के बारे में अमूल्य जानकारी मिली। अंततः उन्होंने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि पेशियों में जमा मधुजन से दुग्ध अम्ल उत्पन्न होता है जिसे रुधिर-प्रवाह यकृत में पहुंचा देता है; वहां यह दुग्ध अम्ल यकृत-मधुजन में परिवर्तित हो जाता है और रुधिर ग्लूकोज़ को जन्म देता है जो बाद में पेशियों के उसी मधुजन में बदल जाता है जिससे यह प्रक्रिया प्रारम्भ हुई थी। हमारे शरीर की यह सतत आवर्ती प्रक्रिया 'कोरी-चक्र' के नाम से विख्यात है। इस सिद्धान्त ने शरीर के उपापचयन-विषयक ज्ञान को बहुत आगे बढ़ाया।

सन् १९३१ में उनके सामने एक ऐसा प्रस्ताव आया जिसे मान लेने पर उन्हें बफ़ैलो के इस संस्थान से अधिक सुविधाएं प्राप्त हो सकती थीं। सैंट लुई-स्थित वाशिंगटन विश्वविद्यालय ने डा० कार्ल कोरी को अपने यहां प्रोफ़ेसर और डा० गर्टी कोरी को फ़ैलो एवं सहयोगी अनुसंधाता के पद पर आमंत्रित किया। कोरी-दम्पती ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। बाद में गर्टी कोरी को जीवरसायन विभाग में सहयोगी प्रोफ़ेसर के पद पर नियुक्त कर दिया गया। नोबल पुरस्कार मिलने के कुछ दिन पहले ही उसकी नियुक्ति विधिवत प्रोफ़ेसर के पद पर कर दी गई थी। किन्तु स्नातक कक्षाओं को छोड़कर अध्यापन कभी भी उसके जीवन का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग नहीं बन पाया। वह अपना जीवन विज्ञान के अनुसंधान-पक्ष को समर्पित कर चुकी थी। उसने एक बार कहा था, "मेरे जीवन के अविस्मरणीय क्षण वे विरल क्षण हैं जो वर्षों के सतत परिश्रम के बाद अवतरित हुए हैं, जिनमें प्राकृतिक रहस्यों का अवगुंठन सहसा उठ गया है और पहले जो तिमिरमय तथा व्यवस्थाहीन प्रतीत होता था उसीमें मधुर प्रकाश और व्यवस्था के दर्शन हुए हैं।"

सैंट लुई में उसे शुरू से ही इस बात की छूट थी कि वह अपने पति के साथ बराबरी के स्तर पर प्रयोगशाला में काम कर सके। उनका तरीका यह था कि

पहले वे शोध का विषय-निर्धारण करते और फिर उस विषय पर काम शुरू कर देते थे। जो समस्याएं उठतीं उनपर विचार-विमर्श करते, उन्हें कैसे सुलझाया जाए—इस बात का निश्चय करते और फिर काम का बंटवारा कर लेते थे। इसके बाद वे दोनों अलग-अलग या छात्रों अथवा दूसरे सहयोगियों के साथ, अपने-अपने काम पर जुट जाते थे। बीच-बीच में वे आपस में मिलान कर लेते थे और अपने कामों में सह-संबंध स्थापित करते जाते थे। डा० कार्ल अपना कुछ समय अध्यापन और प्रशासनिक कार्य को देते थे तो डा० गर्टी अपना कुछ समय घर की सार-संभाल में लगाती थी, घर जो उन्हें इतना प्यारा था—जहां डा० गर्टी की देख-रेख में पौधे लहलहाते थे और फूल खिलते थे, जहां मधुर संगीत और सुन्दर चित्र प्रस्तुत और प्रशंसित होते थे, और जहां चौदह वर्षों बाद उनके नन्हे-से बेटे ने जन्म लेकर उन्हें दो से तीन कर दिया था।

नन्हे टॉमी की वजह से उसकी मां के काम में कोई व्याघात नहीं पड़ा। उसके समय का विभाजन इतना सही था कि गर्भावस्था और टॉमी के शैशव में भी वह अपने अनुसंधान और गृहकार्य को समान रूप से निभाती रही। डा० कार्ल कोरी इस काल में और आगे चलकर गर्टी की बीमारी के दिनों में इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रखते थे कि उनकी पत्नी का कार्य भी अबाध गति से चलता रहे और उसे कुछ कष्ट भी न हो।

सैंट लुई में एक प्रकार से उन्होंने बफैलो में किए गए अपने काम को ही आगे बढ़ाया, भले ही अब उनका विशेष ध्यान एक दूसरी चीज़ पर केन्द्रित था और काम की दिशा भी कुछ परिवर्तित हो गई थी। जैसाकि पहले कहा जा चुका है, कोरी-दंपती यह सिद्ध कर चुके थे कि कोरी-चक्र के अन्तर्गत शरीर का मधुजन कुछ सतत रासायनिक परिवर्तनों से गुज़रता रहता है। इनमें से कुछ परिवर्तन प्रकिण्व (Enzyme) नामक प्रोटीनों के कारण होते हैं जोकि हारमोनो की भांति ही सामान्य शरीर में उत्पन्न होते हैं और रासायनिक प्रक्रियाओं में शरीर के काम आते हैं। इन प्रक्रियाओं के दौरान मधुजन में होनेवाले परिवर्तनों को समझने के लिए कोरी-दंपती ने प्रकिण्व-तंत्र पर अनुसंधान करने का निश्चय किया ताकि मधुजन में होनेवाले रूपांतरों को समझा जा सके। इन अनुसंधानों के साथ ही मौलिक आविष्कारों की एक उज्ज्वल शृंखला बंध गई।

तब तक प्रकिण्वों के बारे में लोगों की जानकारी बहुत कम थी। अब भी

उनके बारे में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकी है। यह माना जाता है कि हमारे शरीर में रासायनिक परिवर्तनों को उत्पन्न करने में प्रकिण्व एक उत्प्रेरक का काम करता है, और एक विशेष प्रकार का प्रकिण्व सामान्यतया एक विशेष पदार्थ को ही प्रभावित करता है। प्रकिण्वों की रचना बहुत ही पेचीदा होती है, इसलिए उनपरकाम करना भी बहुत ही कठिन हो जाता है। इसलिए, और कई दूसरे कारणों से भी इस विषय से अनभिज्ञ आदमी को यह समझाना कि प्रकिण्वों पर कोरी-दंपती ने क्या काम किया है, अत्यन्त कठिन काम है, और ज्यादातर संभावना इसी बात की है कि इस विषय पर पूरी बात सुनकर भी उसके पल्ले कुछ न पड़े। हां, उनके काम के कुछ नतीजों को इस तरह से पेश किया जा सकता है कि आम आदमी भी उसे थोड़ा-बहुत समझ सके। उदाहरणार्थ :

उन्होंने मेंढक की पेशी को अच्छी तरह धोकर उसका कीमा बनाया और फिर प्रचलित तथा अपनी कल्पना-प्रसूत प्रयुक्तियों द्वारा उन्होंने सांश्लेषिक विधि द्वारा उससे एक शर्करा फास्फेट तैयार किया जो इससे पहले अज्ञात था। अब यह अपने आविष्कारकों के नाम पर 'कोरी एस्टर' के नाम से विख्यात हुआ। उन्होंने फोस्फोरिलेस (Phosphorylase) और फोस्फोग्लूकोमुटेस (Phosphogluco-mutase) नामक दो नये प्रकिण्वों को खोज निकाला। साधारण आदमी इनके नाम से ही अंदाज़ लगा सकता है कि प्रकिण्व की रचना कितनी पेचीदा होती होगी। उन्होंने उन प्रकिण्वों को खोज निकाला जो कोरी-चक्र की उपापचयन-प्रक्रियाओं के दौरान सिर्फ मधुजन को प्रभावित करते हैं। साथ ही उन्होंने उन उत्प्रेरक प्रभावों को भी पहचान लिया जिनके कारण मधुजन की रासायनिक रचना में परिवर्तन होता है। अंततः—और यह काम अत्यन्त ही कठिन था जबकि कहने में यह आसान-सा दिखाई देता है—उन्होंने मधुजन के अणु की रचना का पता लगा लिया। इस सब काम में गर्टी कोरी का योगदान भी महत्त्वपूर्ण रहा। उसने मधुजन के इकट्ठा होने से उत्पन्न चार रोगों का पता लगाया, और ये चारों रोग एक-दूसरे से भिन्न थे। आगे चलकर सन् १९५१ में उसने हार्वे सोसाइटी के सम्मुख एक व्याख्यान दिया जिसमें उसने इन दिनों के शोध-कार्य की प्रगति का हवाला दिया था।

उनके कार्य—'मधुजन के उत्प्रेरण और परिवर्तन के अनुसंधान' को मान्यता देते हुए कार्ल और गर्टी कोरी को सन् १९४७ में शरीर विज्ञान और चिकित्सा

पर दिए जानेवाले नोवल पुरस्कार का आधा भाग प्रदान किया गया। पुरस्कार का दूसरा अर्द्धांश अर्जेंटाइना के शरीर-विज्ञानी डा० वर्नार्डो ए० हाउसे को मिला जिन्होंने शरीर द्वारा शर्करा के उपयोग पर पियूष ग्रंथि (Pituitary Gland) से होनेवाले स्राव का प्रभाव प्रदर्शित किया था।

किसी काम पर नोबल पुरस्कार दिया जाना इस बात का प्रमाण है कि वह काम मौलिक और महत्त्वपूर्ण है। कोरी-दंपती को अपने जिस अनुसन्धान पर नोवल पुरस्कार प्राप्त हुआ था वह स्वास्थ्य और रोगों की समस्याओं के क्षेत्र में उनके महान योगदान का एक अंश-मात्र है। सम्भवतः यह तथ्य भी इतना ही महत्त्वपूर्ण है कि सैंट लुई में उनकी प्रयोगशाला एक ऐसा केन्द्र बन गई थी जिससे आकृष्ट होकर कार्वोहाइड्रेटों के उपापचयन में रुचि रखनेवाले प्रथम श्रेणी के वीसियों वैज्ञानिक वहां चले आते थे। इस एक शोध-केन्द्र के उद्दीप्त वातावरण के फलस्वरूप वहां से इस विषय पर बहुत-से शोधपूर्ण लेख प्रकाशित हो चुके हैं, और अभी यह सिलसिला जारी ही है। सम्भव है कि वहां जो काम हो रहा है उससे मनुष्य को मध्य और परवर्ती आयु में हो जानेवाले सामान्य रोगों पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सके, हो सकता है कि ये रोग पहले के मुकावले कम हो जाएं और इन रोगों को ज्यादा अच्छी तरह समझ लेने के बाद इनका इलाज अधिक सफलता से किया जा सके। कुछ डाक्टरों का यह मत है कि वृक्क, यकृत, दिल और रुधिरवाहिका के रोग प्रायः चरवी और कार्वोहाइड्रेट बढ़ानेवाले भोजन को इतनी अधिक मात्रा में खाने से हो जाते हैं कि शरीर उनका उपयोग समुचित रूप से न कर पाए। ऐसा भोजन करनेवाले लोग अपने शरीर को दूसरी प्रकार के उन भोज्य पदार्थों से वंचित रखते हैं जिनसे श्रेष्ठ उपापचयन के लिए पोषक तत्त्व प्राप्त होते हैं। यदि इन डाक्टरों का यह विश्वास सही है तो हो सकता है कि वाशिंगटन विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में होनेवाला काम लोगों में उचित आहार की आदत डालने में सफल हो और इस तरह इन बीमारियों की रोक-थाम की जा सके।

सन् १९४७ में स्वीडन के सम्राट् गुस्ताव पंचम के हाथों से नोबल पुरस्कार लेने के लिए अपने पति के साथ स्टॉकहोम जाने के पहले ही गर्टी कोरी एक ऐसे रोग के चक्कर में फंस गई जिसका तब तक कोई समुचित उपचार विज्ञान के पास नहीं था। इस घटना से उसकी मित्र-मण्डली को अपार शोक हुआ। परन्तु यह देखकर उन्हें प्रेरणा मिलती थी कि पूरे दस साल इस बीमारी को बाला-ए-ताक

रखकर वह अपने कार्य में जुटी रही। वे दिन अब स्वप्न हो गए थे जब वह और कार्ल प्रयोगशाला में लौटने से पहले स्केट करते या टेनिस के वल्ले उठाकर कुछ कसरत कर लेते थे, या रौकी पर्वत की किसी चोटी पर चढ़ जाते थे और तव उन बीते दिनों की यादें ताजा हो जाती थीं जब वे जवान थे और इसी तरह आल्प्स पर साथ-साथ घूमते-फिरते थे और भविष्य के सुनहले सपने बुनते रहते थे। अलबत्ता सैंट लुई में उनका वगीचा अब भी सलामत था जहां कार्ल सब्जियों की देखभाल करते थे और गर्टी फूलों की। टॉमी वड़ा होने के साथ-साथ खरपतवार में दिल-चस्पी लेने लगा था, भले ही वह इस मामले में उनकी मदद करता था या नहीं, यह एक अलग वात है।

जिन दिनों डा० गर्टी कोरी वीमारी के कारण घर से वाहर कम निकल पाती थी उन दिनों उसने अपने डाइनिंग रूम और रहने के कमरों की विना परदेवाली खिड़कियों के नीचे चौड़े-चौड़े तख्तों पर ही फल-फूल आदि के वहुत-से पौधे वगैरह लगवा लिए थे। इससे कमरे में ही उसे बाग की सैर का लुत्फ मिल जाता था। धीरे-धीरे वह पहले की तरह प्रयोगशाला में जाने के काविल हो गई और उन मीटिंगों में भी जाने लगी जिनमें शामिल होना उसके लिए ज़रूरी था। वीमारी के दिनों में भी उसने अपना अध्ययन जारी रखा। वस्तुतः वह आजीवन विद्याव्यसनी रही। उसकी अभिरुचि विज्ञान तक ही सीमित नहीं थी। जीवनियों, इतिहास और सामयिक प्रसंगों से सम्वद्ध पुस्तकों को वह निरन्तर पढ़ती रहती थी, और एक महीने में इन विषयों की दो-तीन पुस्तकें पढ़ लेती थी। वह जिस समाज में भी बैठती उसमें चर्चित विषयों की अधुनातन जानकारी उसीसे मिल सकती थी। विज्ञान की ही तरह वह कला को भी मानव-मस्तिष्क का गौरवशाली अवदान मानती थी।

और मित्रों की उसे कमी न थी—मित्र जो इस सचाई पर विस्मय-विमुग्ध थे कि ऐसे समय में भी जबकि उसकी शक्ति प्रतिदिन घटती जा रही थी, और उसके महत्कार्य के लिए उसकी शक्ति का एक-एक कण बहुमूल्य हो उठा था, गर्टी कोरी अपने उन स्वजनों की ओर से तटस्थ न हो सकी थी जिनकी समस्याओं से वह परिचित थी। उसका अंतिम पत्र, जो उसकी मृत्यु के कारण अधूरा ही रह गया था, उसकी एक सहेली के नाम था जिसका पति बीमार था। अपने पत्र में गर्टी ने आशा व्यक्त की थी कि अब तक वह अच्छा हो चुका होगा या शीघ्र ही

स्वास्थ्य-लाभ कर लेगा। बीमारी की अवस्था में उसने एक पुस्तिका लिखी थी जिसका शीर्षक था, 'मेरा यह विश्वास है, (This I Believe)। इस पुस्तिका में उसने लिखा है, "ईमानदारी, जिसका अर्थ प्रायः बौद्धिक सत्यनिष्ठा होता है, साहस और उदारता अब भी ऐसे गुण हैं जिनकी मैं सबसे ज़्यादा कद्र करती हूं।" आगे चलकर उसने लिखा है कि जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में मैं इन गुणों में से कभी एक को और कभी दूसरे को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व देती रही हूं। जवानी के मुकाबले इन दिनों उदारता का महत्त्व मेरे लिए बहुत अधिक हो गया है। गर्टी के मित्रों को उसके स्वभाव में यह विशेषता हर समय विद्यमान मिली। वह दूसरों की समस्याओं को परम सहानुभूति के साथ सुनती, उनकी यथाशक्य सहायता करने को सदैव तत्पर रहती। रुग्णावस्था में भी उसकी यह विशेषता बनी रही।

गर्टी कोरी को जितना सम्मान मिला उतना बहुत कम महिला वैज्ञानिकों को नसीब हुआ है। नोबल पुरस्कार के बाद तो उसपर सम्मान-सूचक पुरस्कारों की झड़ी लग गई। सन् १९४७ में वह अमरीकी राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी की चौथी महिला सदस्य बनाई गई। नोबल पुरस्कार मिलने के एक वर्ष के पूर्व उसे और उसके पति को संयुक्त रूप से विज्ञान में मिडवेस्ट एवार्ड दिया गया। नोबल पुरस्कार की प्राप्ति के बाद उन दोनों का दूसरा शर्करा अनुसंधान पुरस्कार प्रदान किया गया। कभी उन दोनों को साथ-साथ, और कभी सिर्फ गर्टी को, बोस्टन और येल विश्वविद्यालयोंने, स्मिथ कालेज, रोचेस्टर विश्वविद्यालय और कोलंबिया विश्वविद्यालय ने सम्मानार्थ डाक्टरेट की उपाधियां प्रदान कीं। सन् १९४७ में उसने अपने पति के साथ अंतःस्रावी विज्ञान (Endocrinology) में स्क्विब एवार्ड प्राप्त किया और अगले वर्ष उसे केवल महिलाओं को दिया जानेवाला गारवन स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। सन् १९५० में उसे अमरीकी मेडिकल कॉलेज संघ की ओर से बोर्डन एवार्ड दिया गया और इसी वर्ष राष्ट्रपति ट्रूमैन ने उसकी नियुक्ति नवनिर्मित राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान के बोर्ड के सदस्य के रूप में कर दी। अपनी मृत्यु तक वह इस पद पर रही और इसपर रहते हुए उसने बहुत महत्त्वपूर्ण अनुसंधान किए और बैठकों में शामिल होने के लिए उसे वाशिंगटन के भी बार-बार चक्कर लगाने पड़े।

गर्टी कोरी इसे अपना सौभाग्य समझती थी कि उसे यूरोप में शिक्षा प्राप्त करने और फिर अमरीका में उस शिक्षा के उपयोग के लिए प्रभूत सुअवसर मिले। वह

मानती थी कि उसे तथा उसके पति को अपने शोध-कार्य में जो सफलता मिली उसके ये दो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कारण हैं। मृत्यु से पूर्व गर्टी कोरी द्वारा लिखित वैज्ञानिक लेखों की संख्या १५० और २०० के बीच थी। उसमें कुछ ऐसे जन्मजात गुण थे जो विकसित होकर एक महान जीवरसायनज्ञ के अनुसंधान-कार्य के लिए बहुमूल्य सिद्ध हो सकते थे। "वह एक ऐसी महिला थी जो तथ्य और कल्पना में भेद करने में गलती नहीं करती थी"—उसके एक मित्र ने गर्टी कोरी के बारे में बताया, और कार्ल कोरी ने सिर हिलाकर इस बात का समर्थन किया—कार्ल कोरी ने, जो इस बात को सबसे ज्यादा अच्छी तरह समझता था कि उनके चालीस वर्ष के साहचर्य और पैंतीस वर्ष के सहयोगी अनुसंधान-कार्य में उसकी स्वर्गीय पत्नी की यह विशेषता कितनी अमूल्य थी।

लाइज़ मेट्नर

लाइज़ मेट्नर की वैज्ञानिक उपलब्धियां भौतिकी के क्षेत्र में हैं। यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसकी ओर अमरीकी महिलाओं का ध्यान अपेक्षाकृत कम आकृष्ट हुआ है। अभिरुचि की इस कमी का कारण अमरीका में अक्सर यह बताया जाता है कि "गणित या भौतिकी में लड़कियों का दिमाग इतना अच्छा नहीं चलता।" फिर भी भौतिकी के क्षेत्र में कुछ महिलाओं ने वस्तुतः असाधारण योग्यता का परिचय दिया है। यूरोप ने ऐसी दो महिलाओं को जन्म दिया है जिनके योगदान को विश्व के सर्वश्रेष्ठ भौतिकशास्त्रियों ने उच्चतम कोटि को माना है।

इन महिलाओं के नाम हैं मेरी क्यूरी और लाइज़ मेट्नर। इन दोनों के कारण उन्नीसवीं सदी की भौतिकी और उसकी धारणाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित हुए। जिन वैज्ञानिकों के अनुसंधानों के कारण परमाणु-ऊर्जा और परमाणु-शक्ति का प्रयोग संभव हो सका है, उनमें इन दोनों के नाम बहुत ऊपर आते हैं।

इस दिशा में सन् १९०३ में भौतिकी के क्षेत्र में नोबल पुरस्कार प्राप्त करनेवाली मेरी क्यूरी की तुलना में लाइज़ मेट्नर की उपलब्धियों को कम लोग जानते हैं। मादाम क्यूरी को यह पुरस्कार दो और वैज्ञानिकों के साझे में दिया गया था जिनमें से एक भागीदार स्वयं उसका पति था। लेकिन बहुत-से लोगों को यह पता नहीं है कि रेडियधर्मिता (Radioactivity) पर मेरी क्यूरी ने काम पहले शुरू किया था, और बाद में उसका पति भी अपने अनुसंधान-कार्य को छोड़कर इसी काम में शामिल हो गया। रेडियधर्मिता पर काम करते हुए ही क्यूरी-दंपती ने अंततः रेडियम को खोज निकाला और यूरेनियम की कच्ची धातु से उसका पृथक्करण भी किया। इन्हीं अनुसंधानों पर उन्हें नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया।

लाइज़ मेट्नर यूरेनियम के परमाणु के विखंडन के अनुसंधान में लगी हुई थी और उस समय जबकि इस काम में सफलता मिलने ही वाली थी अचानक उसे

अपने अनुसंधान कार्य से विरत हो जाना पड़ा। पिछले अनेक वर्षों से वह ऑटो हैन के सहयोग से परमाणु-विखंडन पर काम कर रही थी कि दुर्भाग्यवश उसे नाज़ी जर्मनी छोड़कर अन्यत्र भाग जाने के लिए मजबूर होना पड़ा। उसके चले जाने के बाद ऑटो हैन और उन दोनों के नये सहयोगी फ्रिट्ज़ स्ट्रासमान ने वह काम पूरा किया। परमाणु-विखंडन में सफलता प्राप्त करने पर ऑटो हैन को सन् १९४४ में नोवल पुरस्कार प्रदान किया गया। लाइज़ मेट्नर को स्वीडन की विज्ञान अकादमी का सदस्य बनाया गया। यह एक असाधारण सम्मान था और उससे पहले केवल दो और महिलाओं को प्रदान किया गया था। नाज़ी जर्मनी से भाग निकलने के बाद वह स्वीडन में ही बस गई थी और इस देश ने उसे आजीवन अपने अनुसंधान-कार्य में लगे रहने की उपयुक्त सुविधाएं सहर्ष जुटा दी थीं।

मिस मेट्नर को जल्दी ही पता चल गया था कि उसकी विशेष रुचि गणित और भौतिकी की ओर है। वह वियना में एक वकील के यहां पैदा हुई थी। उसके छः और भाई-बहन थे। उसकी आरंभिक शिक्षा वियना के एकेडेमिक हाईस्कूल में हुई और बाद को वह वियना विश्वविद्यालय में दाखिल हो गई। अपने छात्र-जीवन में वह अखबारों के उन अंशों का बड़ी ही सूक्ष्मता से अध्ययन करती थी जिनमें रेडियधर्मिता के अनुसंधान और रेडियम के पृथक्करण में मेरी क्यूरी के शोध-कार्य का विवरण रहता था। इस प्राचीन विश्वविद्यालय में उसे सन् १९०२ में लुडविक बोल्ट्ज़मान से सैद्धान्तिक भौतिकी पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह वाकई उसका सौभाग्य था क्योंकि तब तक यूरोप के बहुत-से विश्वविद्यालयों के भौतिकशास्त्री इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करते थे कि सभी वस्तुएं छोटे-छोटे अदृश्य कणों से मिलकर बनी हैं जिन्हें परमाणु कहते हैं। इसके ठीक विपरीत, प्रोफेसर वोल्ट्ज़मान इस सिद्धान्त के प्रवल समर्थक थे। लाइज़ मेट्नर और उसके साथियों के समक्ष वे बड़े उत्साह के साथ परमाणु के सिद्धान्त की विशद व्याख्या करते थे। उनका मत था कि हाल ही में रेडियधर्मिता का जो अनुसंधान हुआ है वह परमाणुओं की सत्ता का प्रायोगिक प्रमाण है; फिर भी बहुत-से यूरोपीय और अमरीकी वैज्ञानिक इस सिद्धान्त को शंका की दृष्टि से देखते थे और इसे स्वीकार नहीं करते थे।

परमाणु के सिद्धांत को माननेवाले अन्य भौतिक शास्त्रियों की भांति प्रोफेसर बोल्ट्ज़मान को भी इस बात का पूर्ण विश्वास था कि रेडियधर्मिता का अनुसंधान

शीघ्र ही परमाणु-संबंधी इन धारणाओं में क्रांतिकारी परिवर्तन उपस्थित करनेवाला है कि परमाणु प्रकृति का सूक्ष्मतम, अविभाज्य तथा अदृश्य कण है । ईसा से पांचवीं सदी पूर्व डेमोक्रीटस नामक यूनानी विद्वान ने इस सिद्धांत का प्रतिपादन किया था कि सभी चीज़ें अदृश्य कणों से निर्मित हैं, ये सभी कण सतत गतिशील हैं, और सबके सब मूलतः एक ही पदार्थ के बने होने पर भी आकार-प्रकार एवं भार में एक-दूसरे से भिन्न हैं । डेमोक्रीटस इन सूक्ष्म कणों को 'परमाणु' कहता था क्योंकि ग्रीक भाषा में इस शब्द का अर्थ 'अविभाज्य' होता है । तब से लगभग चौबीस शताब्दियां बीत चुकी थीं और लाइज़ मेट्नर के ज़माने में परमाणु के सिद्धांत में रुचि लेनेवाले वैज्ञानिक के लिए यूनानी विद्वान डेमोक्रीटस की भांति दार्शनिक स्तर पर परमाणु के बारे में अपने सिद्धांत प्रतिपादित करना ज़रूरी नहीं रह गया था । तब तक विज्ञान बहुत उन्नति कर चुका था और वैज्ञानिक इस सिद्धांत की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता का निर्णय अपनी प्रयोगशाला में कर सकते थे और ऐसा करने में वैज्ञानिक उपकरणों एवं प्रचुर ज्ञान-राशि की सहायता ले सकते थे । यह सब होने पर भी रेडियधर्मिता के अनुसंधान के भी बहुत वर्षों बाद में वैज्ञानिक अपने प्रयोगों से परमाणु से भी सूक्ष्मता कणों का अस्तित्व सिद्ध करने की दिशा में प्रयत्न कर सके । लाइज़ मेट्नर ने परमाणु-भौतिकी के क्षेत्र में उस समय पदार्पण किया जबकि रेडियधर्मिता का अनुसंधान हो चुका था और ऐसा लगने लगा था कि शीघ्र ही इस क्षेत्र में और भी चमत्कार होनेवाले हैं । वह गणित में समुचित प्रशिक्षण पा चुकी थी । उसमें कार्य-क्षमता थी और उसकी कल्पना सैद्धांतिक भौतिकी के क्षेत्र में गतिशील थी ।

बहुत वर्ष बाद वह कैथोलिक यूनिवर्सिटी ऑफ अमरीका में विज़िटिंग प्रोफेसर बनकर अमरीका आई । तब एक बार उस वर्ष (सन् १९४६) वैज्ञानिक प्रतिभा की वार्षिक शोध में चुये गए युवा छात्रों से वार्तालाप करते हुए उसने अपनी युवावस्था के दिनों में परमाणु-विज्ञान की अवस्था पर प्रकाश डाला था । उसने बताया कि उन दिनों परमाणुओं को सामान्यतया 'ठोस, अखंडनीय छोटे पिंड' माना जाता था । संन् १८६८ में मैंडेलजेफ नामक रूसी रसायनज्ञ ने तब तक ज्ञात सभी पदार्थों की अपनी प्रख्यात परमाणु-भारों की आवर्ती तालिका (Periodic Table of Atomic Weights) बनाई । इस तालिका में दिए गए भार के अंकों में लयबद्ध आवृत्तियां देखकर कुछ वैज्ञानिकों के मन में यह विचार

आया कि संभवतः परमाणु भी अपने से कहीं सूक्ष्मतर कणों से मिलकर बने हैं, यद्यपि उस ज़माने में ऐसे वैज्ञानिकों की भी कमी न थी जो परमाणु के अस्तित्व को ही नहीं स्वीकार करते थे। उसने छात्रों को बताया कि जब मैं तुम लोगों की उम्र में आई तो रेडियधर्मिता और रेडियम का अनुसंधान हो चुका था (यह अनुसंधान दो फ्रांसीसी पुरुषों और एक पोलिश महिला ने किया था)। इस अनुसंधान से प्रेरित होकर दूसरे वैज्ञानिकों ने परमाणु में निहित विद्युत् के धनात्मक तथा ऋणात्मक चार्ज का अनुसंधान किया जिन्हें प्रोटीन तथा इलेक्ट्रोन कहते, हैं तथा आगे चलकर न्यूट्रोन नामक कणों को भी ढूंढ़ निकाला जिनसे विद्युत्-चार्ज नहीं होता।

.अपनी बात जारी रखते हुए उसने आगे कहा कि इसके पहले कि परमाणु में निहित इन तत्त्वों को प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया जा सके, (बोर डेनमार्क के) और आइन्स्टाइन (जर्मनी के) जैसे सैद्धांतिक विज्ञानवेत्ता यह समझने लगे थे कि यदि उचित रूप से आघात किया जाए तो परमाणुओं के टुकड़े हो सकते हैं। और इस प्रकार, उसने अपनी बात पूरी करते हुए कहा, वैज्ञानिकों के एक अन्तर्राष्ट्रीय वर्ग के कारण, समस्त यूरोप और अमरीका की प्रतिवर्ष वर्द्धमान भौतिकशास्त्रियों की पीढ़ी के लिए इस चुनौती को स्वीकार करना ज़रूरी हो गया कि वे अपनी प्रयोगशालाओं में उस बात को सत्य सिद्ध करके दिखाएं जिसकी संभावना उनके समकालीन सैद्धांतिक भौतिकशास्त्री व्यक्त कर चुके थे।

डा० मेट्नर ने सन् १६०७ में बर्लिन जाकर एक उदीयमान युवा भौतिकशास्त्री बनने की दिशा में पहला कदम रखा। इससे एक वर्ष पूर्व ही वह वियना में प्रो० बोल्ट्ज़मान के पर्यवेक्षण में डाक्टर ऑफ फिलॉसफी की डिग्री ले चुकी थी। वह सैद्धांतिक भौतिकी के क्षेत्र में अपने अध्ययन को आगे बढ़ाना चाहती थी और इसका सर्वोत्तम उपाय यही था कि वह बर्लिन जाकर मैक्स प्लैंक के भाषणों से लाभान्वित हो। मैक्स प्लैंक की गणना विश्व के सर्वाधिक उल्लेखनीय भौतिकशास्त्रियों में की जाती है और उन दिनों वे बर्लिन विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे। वह चाहती थी कि भाषण सुनने के साथ-साथ वह कुछ प्रयोग भी करती चले, और इसके लिए उसे कुछ सुविधाएं भी प्राप्त हो गईं। चूंकि वियना में वह रेडियृधर्मिता पर पहले ही कुछ काम कर चुकी थी, इसलिए उसने एक नवयुवक रसायनज्ञ ऑटो हैन के साथ इसी क्षेत्र में अनुसंधान करने का निर्णय

किया। ऑटो हैन को अपने इसी अनुसंधान में सफलता मिलने पर आगे चलकर भौतिकी के क्षेत्र में नोवल पुरस्कार मिला, यद्यपि उस समय वह यह वात सोच भी न सकता था। वह मेट्नर का हमउम्र था, और कार्वनिक रसायन (Organic) में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करके रेडियधर्मिता के क्षेत्र में प्रयोग कर रहा था। उन दिनों वह वर्लिन के एमिल फिशर संस्थान में काम कर रहा था।

उसके मार्ग में एक वाधा थी। उन दिनों फिशर-संस्थान के द्वार स्त्रियों के लिए वंद थे। हैन इस रुकावट को दूर करने के लिए विशेष आतुर था ताकि मेट्नर को उसके साथ ही काम करने का मौका मिल सके। वह स्वयं अपना शोध-कार्य संस्थान के एक उच्च पदाधिकारी की निजी प्रयोगशाला में करता था, और उसे इस वात की आशा नहीं थी कि डाक्टर मेट्नर को वहां काम करने की अनुमति मिल सकेगी। फिर भी, उसे पहली मंज़िल पर एक पुरानी वढ़ई की दूकान दे दी गई जहां उसे रेडियधर्मी माप करनी थी। उसने मिस्टर फिशर से मिलकर इस वात की अनुमति प्राप्त कर ली कि डा० मेट्नर भी वहां उसके साथ काम कर सके, मगर इसके साथ ही डा० मेट्नर से यह आशा भी की गई थी कि वह ऊपर की मंज़िल के अध्ययन-कक्षों में प्रवेश नहीं करेगी। और इस प्रकार उन दोनों का सहयोगी अनुसंधान प्रारंभ हुआ। डा० हैन के शब्दों में उनके इस सहयोग ने "···मेरे वैज्ञानिक विकास को वहुत अंशों में प्रभावित किया···(डा० मेट्नर द्वारा) वर्लिन का यह संक्षिप्त प्रवास एक ऐसे सहयोग में वदल गया जो तीस वर्षों तक चलता रहा।" और उसने वताया कि सहयोगजन्य मैत्री तो और भी अधिक दिनों तक स्थापित रही।

कुछ वर्षों तक डा० मेट्नर का सहयोग प्रयोगशाला के अभाव में सीमित ही रहा। वढ़ई की उस दूकान में कुछ काम तो तुरन्त प्रारम्भ किए जा सकते थे जैसे रेडियधर्मी पदार्थों से निकलनेवाली किरणों की माप और उनके भौतिक गुणों की शोध। अंततः डा० हैन ने संस्थान की सवसे नीचे की मंज़िल के एक भाग को रासायनिक अनुसंधान के योग्य वनवा लिया और अव डा० मेट्नर रासायनिक अनुसंधान के प्रायोगिक काम में उन्हें सहयोग देने लगी। यहां वे दोनों काम करते थे—कार्वनिक रसायनज्ञ हैन और सैद्धान्तिक भौतिकशास्त्री मेट्नर। ये वर्ष परमाणु-विज्ञान के अनुसंधान के प्रारम्भिक वर्ष थे।

सन् १९१२ में वर्लिन विश्वविद्यालय के एक भाग के रूप में कैसर विलियम

रसायन संस्थान खुला और हैन को उसमें प्राध्यापक (बाद में चलकर प्रधान) नियुक्त किया गया। डा० मेट्नर को विश्वविद्यालय के सैद्धांतिक भौतिकी के संस्थान में मैक्स प्लैंक का सहायक बना दिया गया। अब अनुसंधान-कार्य में हैन मेट्नर सहयोग अधिक सुविधापूर्वक चल सकता था और उनके सहायकों की संख्या भी बढ़ गई थी। पांच साल बाद इस महिला भौतिकशास्त्री से (जिसके लिए कुछ वर्ष पहले तक प्रयोगशाला के द्वार बन्द थे) कैसर विलियम रसायन संस्थान में एक नवीन भौतिकी-विभाग शुरू करने और उस विभाग की अध्यक्षा बन जाने के लिए कहा गया।

अब वह एक विश्वविद्यालय के एक ऊंचे पद पर थी और ऐसे नगर में थी जहां विश्व के कुछ सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक जमा थे। अब उसे इस बात की प्रभूत सुविधाएं प्राप्त थीं कि वह नाभिकीय भौतिकी (Nuclear physics) के क्षेत्र में होनेवाले अधुनातन अनुसंधान से परिचय प्राप्त करती रहे और हैन तथा अन्य सहयोगियों की सहायता से अपने उस ज्ञान का उपयोग प्रायोगिक अनुसंधान में करती रहे। उन दोनों का सहयोग दोनों के ही लिए लाभदायक रहा। उस संयुक्त अनुसंधान में हैन एक प्रतिभाशाली कार्बनिक रसायनज्ञ की पृष्ठभूमि और ज्ञान का उपयोग करता था तो मेट्नर एक वरद सैद्धांतिक भौतिकशास्त्री की पृष्ठभूमि और ज्ञान का प्रयोग करती थी। सन् १९१७ में उन्होंने संयुक्त रूप से घोषणा की कि उन्होंने एक विरल रेडियधर्मी तत्त्व प्रोटेक्टिनियम का अनुसंधान कर लिया है।

इस बीच उसने बीटा किरणों का अध्ययन जारी रखा और सर्वप्रथम यह व्यक्त किया कि जब रेडियधर्मी पदार्थों का विच्छेदन (Disintegration) होता है तब पहले उनके कणों का उत्सर्जन होता है और बाद में उनके विकिरण (Radiation) का। सन् १९२० में मेट्नर ने विशेष ख्याति अर्जित की और सन् १९२४ में बर्लिन विज्ञान अकादमी की ओर से लेबनित्ज़ पुरस्कार और सन् १९२५ में आस्ट्रियन विज्ञान अकादमी की ओर से लीवर पुरस्कार प्रदान करके उसकी विद्वता को मान्यता प्रदान की गई। अगले साल उसे बर्लिन विश्वविद्यालय में असाधारण प्रोफेसर बनाया गया। हिटलर के यहूदी-विरोधी आदेशों के कारण अंततः उसे यह पद छोड़ना पड़ा।

चूंकि वह आस्ट्रिया की नागरिक थी इसलिए नाजी आदेशों का उसकी स्थिति पर इतना घातक प्रभाव नहीं पड़ा जितना जर्मन नागरिकों पर पड़ा। आगे चल-

कर सन् १९३८ में उसकी स्थिति पर भी यह घातक प्रभाव पड़ा क्योंकि तब तक नाज़ी आस्ट्रिया पर अधिकार कर चुके थे। वे यहूदी वैज्ञानिक और 'आर्य' जिन्होंने सन् १९३४ में हिटलर के सत्तारूढ़ होने के बाद उसकी यहूदी-विरोधी नीति का खुल्लमखुल्ला विरोध किया था, जर्मन विश्वविद्यालयों से गायब होने लगे। फिर भी, कुछ समय तक सत्ता के इस हस्तान्तरण से हैन के सहयोग में चलनेवाले उसके काम पर फर्क नहीं पड़ा—एक ऐसा काम, जो अब ऐसा रुख लेता जा रहा था जिसकी सन् १९३० के मध्य में अपना काम शुरू करते समय उन दोनों में से किसीको भी आशा नहीं थी।

अन्ततः उनके इस काम की नाटकीय परिणति परमाणु-विखंडन में हुई। यह एक ऐसी सफलता थी कि यदि हैन और मेट्नर चाहते तो परमाणु बम पहले हिटलर के पास होता, फिर किसी दूसरे के। मगर उनके इस काम को भलीभांति समझने के लिए यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि यूरेनियम के परमाणु को वे इसलिए कदापि नहीं तोड़ना चाहते थे कि उससे हिटलर या और कोई परमाणु बम बना सके। वे रेडियधर्मी पदार्थों की शोध इसलिए कर रहे थे कि वे विभिन्न प्रयोगशालाओं में विभिन्न प्रयोग-विधियों के द्वारा शोध-रत वैज्ञानिकों द्वारा रेडियधर्मी पदार्थों में किए गए परिवर्तनों को समझना चाहते थे। मेट्नर और हैन रेडियम और थोरियम के अन्वेषण तो पहले ही कर चुके थे; बरसों पहले उन्होंने जिस रेडियधर्मी पदार्थ प्रोटैक्टिनियम की खोज की थी उसकी छानबीन भी वे पूरी तरह कर चुके थे। डा० मेट्नर ने रेडियधर्मिता और नाभिकीय भौतिकी पर एक पुस्तक लिखी थी और भौतिकी के उस क्षेत्र-विशेष में उसकी गणना विश्व के अधिकारी विद्वानों में होती थी। हैन की ही भांति उसमें भी एक सच्चे अन्वेषक की अधिक से अधिक ज्ञान उपार्जित करने की अगाध पिपासा थी। सन् १९३० के मध्य के उन दिनों में वैज्ञानिकों का एक छोटा-सा वर्ग परमाणु का नाभिक (Nucleus) बदलकर एक तत्त्व को दूसरे तत्त्व में परिणत करने के प्रयत्नों में लगा हुआ था—हैन और मेट्नर भी इसी वर्ग में शामिल थे।

एक तत्त्व की दूसरे तत्त्व में परिणति को निम्नलिखित तीन अवस्थाओं में समझा जा सकता है, यद्यपि निम्न व्याख्या को वैज्ञानिक व्याख्या नहीं कहा जा सकता :

१. जैसाकि पहले भी कहा जा चुका है, एक परमाणु में ये तीन चीज़ें होती

हैं—प्रोटोन (धनात्मक विद्युत्-चार्ज), इलेक्ट्रोन (ऋणात्मक चार्ज), और न्यूट्रोन (जिनमें कि कोई चार्ज नहीं होता)। परमाणु के प्रोटोन एक कड़े पिंड (Mass) के रूप में उसके नाभिक या क्रोड (Core) में जमा रहते हैं जोकि उस परमाणु के पूर्ण आकार का अंश-मात्र होता है।[1]

२. परमाणु-भारों की तालिका में किसी तत्त्व का जो नम्बर होता है उसके एक परमाणु के प्रोटोनों की भी वही संख्या होती है। उदाहरण के लिए हाइड्रोजन का इस तालिका में पहला नम्बर है, इसका अर्थ हुआ कि उसके एक परमाणु में सिर्फ एक ही प्रोटोन होता है। ऑक्सीजन का इस तालिका में आठवां नम्बर है, इसका अर्थ हुआ कि ऑक्सीजन नामक तत्त्व के एक परमाणु में आठ प्रोटोन होते हैं। पारा इस तालिका में गिनाए गए तत्त्वों में बहुत नीचे आता है। तालिका में उसका नम्बर ८० है, इससे पता चला कि पारे के एक परमाणु में ८० प्रोटोन होते हैं। इस प्रकार तालिका के तत्त्वों का नम्बर बढ़ने के साथ-साथ यह भी समझते रहना चाहिए कि जिस तत्त्व का नम्बर सौ से अधिक तत्त्वों की इस तालिका में जितना अधिक है उसके एक परमाणु के प्रोटोनों की संख्या भी उतनी ही अधिक है।

३. प्रयोगशाला में अणुओं पर प्रयोग किस विधि से किए जाएं, इस बात की खोज करते-करते वैज्ञानिकों ने देखा कि कुछ तत्त्वों में से प्रोटोन को निकाला जा सकता है। जब उन्होंने किसी एक तत्त्व में से उसका प्रोटोन निकाला तो वह तत्त्व परमाणु-भारों की तालिका में अपने से नीचे के खाने में दिए गए तत्त्व में परिणत हो गया। जब उन्होंने ऑक्सीजन (नं० ८) में से प्रोटोन निकाल दिया तो ऑक्सीजन

---

१. डा० मेट्नर ने परमाणु के आकार का इन शब्दों में वर्णन किया है : "साबुन के एक बुलबुले का अर्द्धव्यास मापकर हम उसके गोल तल (Spherical surface) के क्षेत्र का हिसाब लगा सकते हैं। उस बुलबुले को फोड़कर हम उसका भार मालूम कर सकते हैं और उसकी झिल्ली की मोटाई को भी माप सकते हैं। इस प्रकार की गणना करने से पता चला है कि कभी-कभी साबुन के बुलबुलों की मोटाई एक सेंटीमीटर के दस-लाखवें भाग से कुछ कम होती है। चूंकि इस बुलबुले में साबुन के अणुओं की कम से कम एक सतह होनी अनिवार्य है, इसलिए इन अणुओं का व्यास एक सेंटीमीटर के दस-लाखवें भाग से कम होना जरूरी है। और क्योंकि एक अणु में अनेक परमाणु होते हैं इसलिए इन परमाणुओं का अपने अणुओं से कहीं छोटा होना अनिवार्य है।

ऑक्सीजन न रहकर, नाइट्रोजन (नं० ७) में परिणत हो गई। जब उन्होंने लीथियम (नं० ३) में से प्रोटोन निकाल दिया तो लीथियम हीलियम (नं० २) में परिणत हो गया। जब उन्होंने पारे (नं० ८०) में से एक प्रोटोन निकाल दिया तो वह सोने (नं० ७९) में परिणत हो गया। कुछ तत्त्व (जिसमें सोना भी शामिल है) परिणत होने के बाद कुछ देर तो अपने नये रूप में रहते हैं और फिर अपने आप ही किसी और चीज़ में परिणत हो जाते हैं। कुछ तत्त्व एक बार परिणत हो जाने के बाद अपने नये रूप में ही बने रहते हैं।

अब हम मेट्नर-हैन कार्य की बात करें। अभी तक न्यूट्रोनों की खोज नहीं हो सकी थी और यह माना जाता था कि परमाणु में प्रोटोन और इलेक्ट्रोन ही होते हैं, किन्तु फिर भी वैज्ञानिक एक तत्त्व को (उसमें से प्रोटोन निकालकर) दूसरे तत्त्व में परिणत करने में सफल हो गए थे। सन् १९३२ में न्यूट्रोनों का अन्वेषण हो जाने के बाद प्रायोगिक कार्य में नई तकनीकें अपनाना संभव हो सका। सन् १९३४ में एनरिको फर्मी के नेतृत्व में इटली के कुछ वैज्ञानिकों ने यूरेनियम (तालिका में नं० ९२ का तत्त्व जो तब तक ज्ञात पदार्थों में सबसे भारी था) के परमाणुओं का न्यूट्रोनों से विस्फोट किया। फलस्वरूप एक ऐसे तत्त्व की प्राप्ति हुई जो अब तक के ज्ञात तत्त्वों में सबसे भिन्न था। फर्मी का विचार था कि यह एक नया तत्त्व है जो यूरेनियम से भारी है और संभवतः यह वही तत्त्व है जिसे परमाणु भारों की तालिका के ९३ नं० पर दिया गया है मगर जिसे प्रकृति में से अभी प्राप्त नहीं किया जा सका है। उनके परीक्षणों से यह रेडियधर्मी तत्त्व इतने अल्प परिमाण में प्राप्त होता था कि इसका पूर्ण रासायनिक विश्लेषण करके इस बात का निर्णय करना कठिन था कि फर्मी का यह विचार कहां तक ठीक है, और वैज्ञानिक इस संबंध में शंका रहित नहीं थे। फिर, अगर फर्मी का ही विचार ठीक उतरता, तो साधारणजन भी यह समझ सकता है कि परमाणु के नाभिक में से प्रोटोनों की संख्या कम करने के बजाय उसने उनकी संख्या में वृद्धि ही की होगी —उन दिनों यह बात विज्ञान-जगत् के लिए नई और चौंका देनेवाली थी।

जब फर्मी के इन प्रयोगों की खबर बर्लिन पहुंची तो डा० हैन के शब्दों में, "प्रोटैक्टिनियम के रासायनिक गुणों से पहले से ही परिचित होने के कारण लाइज़ मेट्नर ने और मैंने फर्मी के प्रयोगों को दुहराने का निश्चय कर लिया।" तालिका के अनुसार यह नं० ९१ पर दिया गया तत्त्व था और यदि फर्मी द्वारा तत्त्व तालिका

में यूरेनियम और प्रोटैक्टिनियम के आस-पास होता तो इस बात की काफी संभावना थी कि प्रोटैक्टिनियम के ये दोनों अन्वेषक अपने अनुभव और ज्ञान की सहायता से इस तत्त्व का विश्लेषण कर पाते।

उन्होंने अपना काम शुरू किया, और जल्दी ही, डा० मेट्नर के शब्दों में "रेडियधर्मी पदार्थों का एक पूरा नवीन वर्ग खोज निकाला गया। इस वर्ग के तत्त्व परमाणु-भारों की आवर्ती तालिका में यूरेनियम से एकदम नीचे दिए गए तत्त्वों से भिन्न थे। ये तत्त्व यूरेनियम से ऊंचे हो सकते हैं—यही एक संभावना शेष थी।" कुछ समय बाद फ्रिट्ज़ स्ट्रासमान ने भी उनके साथ ही काम शुरू कर दिया। डा० मेट्नर का कहना है, "अनुसंधान की प्रगति के साथ-साथ हमें पता चला कि हम एक सर्वथा नवीन कार्य-विधि अपना रहे हैं।" इसी समय जबकि ये तीनों वैज्ञानिक इन नवीन परिवर्तनों को लेकर परेशान हो रहे थे, सन् १९३८ की वसन्त ऋतु आ गई और उसके साथ ही आस्ट्रिया पर नाज़ियों का अधिकार हो गया। इससे पहले कि नाज़ियों के हाथों उसे कोई हानि पहुंचे लाइज़ मेट्नर को उसके मित्रों ने जर्मनी से बाहर पहुंचा दिया। वह कुछ समय के लिए कोपेनहेगन चली गई जहां उसकी बहन का लड़का ओटो फ्रिस्ख रहता था। उसका यह वैज्ञानिक भानजा नील्स बोर की प्रयोगशाला में काम करता था जिन्हें प्रायः 'परमाणु का पिता' कहा जाता है और जो उन दिनों आधुनिक वैज्ञानिक जगत् के सर्वाधिक श्रद्धेय वैज्ञानिकों में परिगणित किए जाते थे, आज भी उनकी यही ख्याति है और भविष्य में भी रहेगी।

मेट्नर के जर्मनी से चले आने के बाद हैन और स्ट्रासमान ने अपना काम जारी रखा। शीघ्र ही (मेट्नर के जाने के कुछ ही महीनों बाद) उन्होंने अपना रासायनिक विश्लेषण पूर्ण कर लिया। इस विश्लेषण से वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उनकी 'सर्वथा नवीन कार्य-विधि' 'बेरियम उत्पन्न कर रही थी। सन् १९३९ के आरम्भ में हैन ने इस तथ्य को विज्ञान की एक पत्रिका में प्रकाशित कराया। वह बहुत परेशान हो उठा था क्योंकि स्वयं उसीके शब्दों में उनकी इस कार्य-विधि के ये परिणाम 'आज तक नाभिकीय भौतिकी के क्षेत्र में घटी सभी घटनाओं के विरोध में पड़ते थे।' लाइज़ मेट्नर को स्वीडन में हैन की परेशानी का पता चला। वह उन दिनों स्टॉकहोम में विज्ञान अकादमी के भौतिकी-संस्थान में काम कर रही थी। हैन की परेशानी से उसे ज्यादा परेशानी नहीं हुई। उसे बर्लिन में हैन के साथ

किए कार्य का ज्ञान था, और एक प्रतिभाशाली नाभिकीय वैज्ञानिक की आतुरता के साथ परमाणु की रचना के बारे में वोर के सिद्धान्त को भी उसने समझ लिया था। इसलिए उसकी समझ में वह रहस्य आ गया जिसने हैन को चकमा दे दिया था। वेरियम का प्रकट होना वहुत हद तक इस संभावना की ओर संकेत करता था कि "यूरेनियम (नं० ९२) के अणु का नाभिक खंडित हो गया है।" उसे निश्चित रूप से प्रतीत हो रहा था कि अगर वेरियम (तालिका में जिसका नं० ५६ है) उत्पन्न हुआ है तो गैसीय तत्त्व क्रिप्टन (नं० ३६) भी उत्पन्न हुआ है। वह अपनी इस धारणा को वैज्ञानिक तर्कों से पुष्ट कर सकती थी।

उसने अपनी यह धारणा कोपेनहेगन में फ्रिस्श को वताई, और फ्रिस्ख ने यह वात वोर को वता दी जो वैज्ञानिकों की गोष्ठियों आदि में सम्मिलित होने अमरीका आने ही वाले थे। १६ जनवरी को मेट्नर और फ्रिस्ख ने ब्रिटेन की वैज्ञानिक पत्रिका 'नेचर' के लिए एक पत्र लिखा जिसमें हैन व स्ट्रासमान के कार्य को यूरेनियम के अणु का खंडन कहकर पुकारा गया था (मेट्नर ने इसे 'परमाणु विखंडन' की संज्ञा दी थी और इसे यह नाम सबसे पहले उसीने दिया था) और इसके वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर प्रकाश डालते हुए यह कहा गया कि इस भांति का विखंडन उच्चतम परमाणु-नाभिकों में होने की ही संभावना विशेष रूप से है। उन्होंने गणना करके वताया कि इस विखंडन से लगभग २०,००,००,००० इलेक्ट्रोन वोल्ट ऊर्जा उत्पन्न हुई है।

जिस दिन यह पत्र लिखा गया था उसी दिन नील्स वोर ने अमरीका में पदार्पण किया और उन्होंने कोलंबिया और प्रिंसटन में अपने वैज्ञानिक मित्रों को मेट्नर और फ्रिस्ख के विचारों से अवगत कराया। दस दिन वाद वाशिंगटन में अमरीकन भौतिकशास्त्रियों के एक सम्मेलन में यह वात सार्वजनिक रूप में वताई गई। इन वैज्ञानिकों में शायद किसी और समाचार ने कभी ऐसी उत्तेजना नहीं फैलाई थी। लोगों ने सोचा कि यूरेनियम के विखंडन में सफलता प्राप्त की जा चुकी है या नहीं और मेट्नर और फ्रिस्ख द्वारा उससे निःसृत ऊर्जा की गणना ठीक है या गलत, इस तथ्य का अमरीका की अनेक प्रयोगशालाओं में वैज्ञानिक उपकरणों (और मस्तिष्कों!) द्वारा परीक्षण किया जा सकता है। वैज्ञानिकों के टेलीफोन खटकने लगे कि इस तथ्य का परीक्षण किया जाए। कोपेनहेगन में वोर की प्रयोगशाला में फ्रिस्ख इस काम पर पहले से ही डटा हुआ था और सबसे पहले उसीने इस धारणा

के समर्थन में प्रमाण उपस्थित किया। शीघ्र ही अमरीकी प्रयोगशालाओं ने उसके निष्कर्षों का समर्थन किया और इस बात की होड़ लग गई—यद्यपि एक लम्बे अरसे तक सरकार ने इसमें कोई मदद नहीं दी—कि देखें सबसे पहले परमाणु-विखंडन की शृंखला-अभिक्रिया (Chain reaction) का अनुसंधान कौन करता है और इस प्रकार बमों में परमाणु ऊर्जा भरने का श्रेय प्राप्त करता है। फरवरी सन् १९४० में, यानी परमाणु-विखंडन की घोषणा के तेरह महीने बाद, अमरीका सरकार ने कोलंबिया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों को पहली बार आर्थिक सहायता दी। यह अनुदान ६,००० डालर का था। अंततः इन्हींमें से कुछ वैज्ञानिक शृंखला-अभिक्रिया का पता लगाने में सफल हुए।

कुछ वर्षों के समय और दूसरे विश्व-युद्ध के बाद डा० मेट्नर ने लिखा था : "यह एक दुर्भाग्यपूर्ण संयोग है कि (परमाणु-विखंडन की) यह खोज युद्ध-काल में हुई।" लेकिन क्योंकि यह खोज वाकई युद्ध-काल में हुई और जर्मनी में हुई, अमरीका और मित्र-राष्ट्रों का यह सौभाग्य था कि नाभिकीय भौतिकी की यह तीक्ष्ण अंतर्दृष्टि लाइज़ मेट्नर नामक महिला भौतिकशास्त्री में थी और उसने जो कुछ किया वह उनके हितों के अनुकूल ही पड़ा। जो वैज्ञानिक जर्मनी में ही रह गए थे उनमें से कुछ को तो शत्रु-राष्ट्रों के वैज्ञानिकों से सम्पर्क स्थापित करने नहीं दिया जाता था और दूसरे स्वयं ये सम्पर्क नहीं स्थापित करना चाहते थे। अलबत्ता हैन अपने कार्य को युद्धकालीन आवश्यकताओं से अछूत रखने में बहुत कुछ सफल हो सका था। मगर न जर्मनी के सब वैज्ञानिक जर्मनी में मौजूद थे और न इटली के सब वैज्ञानिक इटली में थे। जर्मनी और इटली की यहूदी-विरोधी नीतियों का अमरीका और मित्रराष्ट्रों को बड़ा लाभ पहुंचा; इन देशों की वैज्ञानिक उपलब्धियों में जर्मनी व इटली से भागे हुए वैज्ञानिक का बहुत बड़ा योगदान है। सच तो यह है कि यह सोचकर हैरानी होती है कि अगर क्षणिक विजय के मद में पागल इन तानाशाहों की यहूदी-विरोधी नीति के कारण इनके शत्रुओं को वे महान प्रतिभाशाली वैज्ञानिक न मिल पाते, जो अंततः इन्हीं मदांध तानाशाहों के विनाश का कारण बने, तो आज दुनिया का क्या हाल होता ?

लाइज़ मेट्नर स्थायी रूप से स्टॉकहोम में ही रहने लगी। युद्ध के दौरान स्वीडन की नागवार तटस्थता और जर्मनी में अपने मित्रों की विपन्न अवस्था से वह प्रायः खिन्न हो उठती थी। उसके एक परिचित ने, जिसने उसे स्टॉकहोम

में आने के कुछ ही दिन बाद देखा था, उसका वर्णन इन शब्दों में किया है, "वह एक चिंतित और थकी हुई महिला है और उसके मुख पर आम शरणार्थियों का सा तनाव है।" वे दिन गए और सुख के दिन आए, यद्यपि जर्मनी के वन्दी-शिविरों में कैद प्रियजनों की यातना से उत्पन्न वेदना बनी ही रही।

एक वर्ष अमरीका में अतिथि के रूप में रहने के बाद और विश्वयुद्ध समाप्त हो जाने के बाद वह स्वीडन चली गई और वहीं की नागरिकता ग्रहण कर ली। स्टॉकहोम विश्वविद्यालय में परमाणु-शोध विभाग के एक सदस्य के रूप में वह एक ऐसी अवस्था में भी अपना काम करती रही जबकि अधिकांश वैज्ञानिक काम करना बन्द कर देते हैं। उसे सिर्फ स्वीडन ने ही समादृत नहीं किया, जिसने कि उसे अपनी विज्ञान अकादमी का एकमात्र जीवित महिला सदस्य बनाया, बल्कि जर्मनी और उसके मूल देश आस्ट्रिया ने भी उसका सम्मान किया। संन् १९४७ में उसे 'दी सिटी ऑफ वियनाज़ प्राइज़ इन साइंसेज़' दिया गया और सन् १९४९ में उसे मैक्स प्लैंक पदक प्रदान किया गया! साइराक्यूज़, रटगर्स, स्मिथ और एडेल्फी—इन चार अमरीकी शिक्षा-संस्थानों ने उसे विज्ञान में सम्मानार्थ डाक्टरेट की उपाधियां प्रदान कीं।

हेलेन सॉयर हौग

कॉलेज जूनियर होने से पहले-हेलेन सॉयर ने यह कल्पना भी न की थी कि एक दिन वह ज्योतिर्विद् बनेगी। उस साल उसने पहली बार खगोलविज्ञान को अपना विषय चुना और अचानक उसे तारों में इतनी अधिक रुचि उत्पन्न हो गई कि उसके भावी जीवन का यही मार्ग निर्धारित हो गया। इस विषय में उसपर अपनी शिक्षिका का काफी प्रभाव पड़ा जोकि आकाश के अध्ययन को ही अपना जीवन-लक्ष्य बना चुकी थी। जब उसके विद्यालय माउंट होलयोक ने उसे दो प्रमुख विषय लेने से टोक दिया तो हेलेन सॉयर ने रसायन को छोड़कर खगोल-विज्ञान को अपना प्रमुख विषय चुन लिया, और इस परिवर्तन के लिए उसे कभी पछताना नहीं पड़ा। जीवन-भर उसने तारों पर ही काम किया है। उसने विवाह किया, तीन बच्चों को जन्म दिया और पैंतालीस वर्ष की अवस्था में वह विधवा हो गई। उसके कार्य का महत्त्व स्वीकार करते हुए उसे खगोल विज्ञान में ऐनी जम्प कैनन पुरस्कार प्रदान किया जा चुका है। तब से अपने समकक्ष वैज्ञानिकों में उसका महत्त्व निरन्तर बढ़ता ही गया है।

अपने बचपन में हेलेन सॉयर ने अपनी मां से तारों के बारे में सुन रखा था। जाड़ों के दिनों में शाम के समय प्रायः वे लॉवेल, मैसाच्यूसैट्स, अपने मकान के यार्ड में आ जातीं और वहां अपनी बेटी को मृग (Orion) के दर्शन करातीं। विनीपेक झील के किनारे अपने मकान में गर्मियों की छुट्टियां बिताते हुए वे हेलेन को दूसरे तारा-मण्डलों तथा आकाश के बारे में बताती थीं। इन सब अनुभवों से बच्ची के अन्दर कोई विशेष उत्तेजना या प्रेरणा जागती हो, ऐसी बात न थी। वह एक सम्पन्न परिवार की लड़की थी और उसका पिता न्यू इंग्लैंड में बैंकर था, इसलिए ये तथा दूसरे अनुभव उसके लिए स्वाभाविक ही थे। जब हेलेन पांच या छः वर्ष की थी तभी उसकी बड़ी बहन का विवाह हो गया था, और तब से संतान

के नाम पर वह घर में अकेली ही रह गई थी। तारों की तरह ही वह अपनी मां के चट्टानों के संग्रह, फूलों के पौधों और न्यू इंग्लैंड के कवियों की प्रकृति-सम्बन्धी कविताओं में भी रुचि लेती थी। हेलेन ने खुद भी विरल पर्णांगों (Fern) और संकरों (Hybrid) का एक संग्रह तैयार किया था। कई वार गर्मियों की छुट्टियों में वह वरमौंट-स्थित अपने रिश्ते के भाई के फार्म पर चली जाती थी। उपर्युक्त संग्रह उसने वहीं किया था।

वह इतवार की वड़ी वेचैनी से प्रतीक्षा करती थी। इतवार के दिन दोपहर के वाद वह अपने पिता के साथ मैरीमैक नदी या पॉटेकट प्रपात के किनारे सैर करने जाती थी। वाद में उसके पिता ने गाड़ी खरीद ली और वे उसमें वैठकर घूमने जाते थे। कभी-कभी वे पुराने कब्रिस्तानों की खोज में निकलते थे ताकि वे अपने अमरीकी पूर्व पुरुषों की कब्रों का पता लगा सकें। ग्रोटन का स्मारक देखना हेलेन के जीवन का अविस्मरणीय अनुभव था। यह स्मारक विलियम और डेली-वरेंस लौंगले व उनके आठ में से पांच बच्चों के वध की याद दिलाता था, और उसे वताया गया था कि उसके वंश का आदि पुरुष इस हत्याकांड से वच निकले तीन बच्चों में से एक था।

वह वारह वर्ष की ही थी कि उसका पिता चल बसा। उसकी मृत्यु के वाद भी उसकी शिक्षा लॉवेल के पब्लिक स्कूलों में यथापूर्व चलती रही। उसकी एक दूर की रिश्तेदार मिस ल्योनार्डा वैटिल्स वहुत वर्षों तक उनके ही यहां रहती थी। एक दिन यही मिस ल्योनार्डा वैटिल्स नगर की अन्यतम स्कूल-अध्यापिका मानी जाने लगी। हेलेन की शिक्षा-दीक्षा में उसके मां-वाप के अलावा 'आंटी' वैटिल्स का भी काफी हाथ था। इस वच्ची को वचपन में ही शिक्षा के प्रति आदर-भाव रखना सिखाया गया था और उसे सदैव शिक्षा के लिए सुविधाएं भी मिलती रहीं। हर वर्ष गर्मी की छुट्टियों में वह अपने झीलवाले मकान में चली जाती थी और एकदम वेफिक्री के साथ छुट्टियों का आनन्द उठाती थी। स्कूल के दिन भी वड़े मजे में कटते थे, भले ही वहां इतनी वेफिक्री न थी। सभी विषयों के अध्ययन में हेलेन की वड़ी रुचि थी और जब सोलह साल से भी कम उम्र में, सन् १९२१ में वह लॉवेल हाई से स्नातक हुई तो उसका नाम अपनी कक्षा के कई सौ छात्रों में से प्रथम छः सफल छात्रों की सूची में था।

अब वह कॉलेज जाने काबिल हो गई थी, पैसे की कमी नहीं थी, और उसने

माउंट होलयोक में पढ़ने का फैसला किया। लेकिन अभी उसकी उम्र कम थी। यही अच्छा समझा गया कि अभी एक साल उसे घर से बाहर न भेजा जाए। वह लॉवेल हाई में पांच वर्ष का अध्ययन करने लगी और अगले साल सितम्बर में कॉलेज में पढ़ने के लिए उसने घर छोड़ा तो "मुझे ऐसा लगा जैसे माउंट होलयोक दुनिया के दूसरे छोर पर है।" उस दिन वह सोच भी नहीं सकती थी कि छत्तीस वर्ष बाद उसे सोवियत सरकार के आमंत्रण पर रूस की यात्रा के लिए हवाई जहाज़ में सवार होना पड़ेगा, और उसे अपने घर से रूस का फासला इतना अधिक नहीं लगेगा जितना कि उस दिन लॉवेल और दक्षिण हैडले का लग रहा था, गोकि दोनों नगर मैसाच्यूसैट्स में ही थे।

और न सन् १९२२ के उस सितम्बर में वह यही सोच सकती थी। एक दिन दूरी की उसकी धारणा का इतना विस्तार हो जाएगा कि कुछ ही वर्षों में वह तारकीय दूरियों को दस लाख प्रकाश—वर्षों की इकाइयों में मापा करेगी। यदि उस दिन कोई उससे कहता कि सिर्फ चार साल के अंदर ही वह हारवर्ड वेधशाला के नव-नियुक्त निदेशक डा० हारलो शेपले की सहायक बन जाएगी तो यह बात उसे शेखचिल्ली के मनसूबों जैसी लगती। घर से कॉलेज के लिए रवाना होते हुए खगोलविज्ञान की बात उसके दिमाग में बिलकुल नहीं थी। कॉलेज के प्रथम वर्ष में उसने रसायन लिया जोकि उसने हाई स्कूल के पांच वर्षों के अध्ययन में नहीं पढ़ा था। वर्ष के अन्त में उसने रसायन को ही अपना प्रमुख विषय चुना, और वह अपने चुनाव से पूरी तरह संतुष्ट थी। इसी समय उसका संपर्क डा० ऐनी सैवेल यंग से हुआ, और इस संपर्क ने उसकी जीवनधारा ही बदल दी।

जैसाकि इस पुस्तक में अन्यत्र बताया गया है, माउंट होलयोक का रसायन विभाग बड़ा ही सुयोग्य था। इसका खगोलविज्ञान विभाग भी बड़ा श्रेष्ठ था और उसकी अध्यक्ष डा० चार्ल्स ऑगस्टस यंग की भतीजी थीं। डा० चार्ल्स ऑगस्टस यंग २५ वर्ष से अधिक से प्रिंसटन विश्वविद्यालय के खगोलविज्ञान विभाग के प्रख्यात प्रोफेसर थे और सूर्य-किरीट (Corona) के वर्णक्रम (Spectrum) के अध्ययन की नींव डालनेवाले ज्योतिर्विद् थे। ऐनी सेवेल यंग हेलेन सॉयर के कॉलेज प्रवेश के समय माउंट होलयोक में जॉन पेसन विलिस्टन वेधशाला की निदेशक थीं और बहुत-कुछ अपने चाचा के अनुरूप ही ढली थी। तारे ही जीवन थे और उसका आकर्षण इतना प्रबल था कि वह अपने संपर्क में आनेवाले उन विद्यार्थियों के मन

में तारों के लिए वही आकर्षण उत्पन्न कर देती थी जिनमें आकाश का वैज्ञानिक अध्ययन करने की जन्मजात क्षमता होती थी।

हेलेन सॉयर अभी बीस वर्ष की भी नहीं हुई थी। वह कॉलेज जूनियर थी और उसने पहली बार खगोलविज्ञान को अपना विषय चुना था। वह इस बात से सर्वथा अनभिज्ञ थी कि विषय का यह चुनाव उसे क्या से क्या बना देगा। इसी समय वह डा० यंग के संपर्क में आई। डा० यंग का उसपर बहुत प्रभाव पड़ा— वेधशाला में भी जहांकि एक श्रेष्ठ दूरबीन रखी हुई थी जिससे वह मृग को, बचपन में अपने यार्ड के मुकाबले, कहीं अच्छी तरह देख सकती थी; और कक्षा में भी जहांकि डा० यंग एक प्रेरणादायक अध्यापिका थीं।

उस वर्ष बड़े दिन की छुट्टियों के कुछ सप्ताह पता चला कि सूर्य का पूर्ण ग्रहण होनेवाला है। संसार-भर के ज्योतिर्विद् इस घटना को सर्वाधिक महत्त्व देते हैं, और कुछ वैज्ञानिक तो आधी दुनिया पार करके ऐसे स्थानों पर पहुंचते हैं जहां से उन्हें ग्रहण स्पष्ट रूप से दिखाई दे सके। सन् १९२५ के उस सूर्यग्रहण में खगोल-विज्ञान के छात्रों के अलावा जन-साधारण की भी रुचि थी, यद्यपि दक्षिण हैडले से पूर्ण ग्रहण नहीं दिखाई दे सकता था। वहां से दक्षिण दिशा में केवल सौ मील दूर पर केन्द्रीय कनैक्टीकट था जहां से पूर्ण ग्रहण देखा जा सकता था। डा० यंग ने कॉलेज के अधिकारियों को इस बात के लिए राज़ी कर लिया कि भोर से पहले ही वहां से केंद्रीय कनैक्टीकट के लिए एक विशेष ट्रेन रवाना हो जो सब छात्रों को वहां पहुंचा दे। जनवरी के उस शीतल प्रभात में उनकी ट्रेन एक उजाड़ मैदान में रुकी, और वहां घुटनों तक बर्फ में खड़े होकर माउंट होलयोक के छात्रों और साहसी शिक्षकों ने वह भव्य दृश्य देखा। उस उजाड़ मैदान में उनके और सूर्य-ग्रहण के बीच में पेड़ की एक टहनी तक नहीं थी, और दिन के साफ मौसम में सूर्य का पूर्ण ग्रहण देखना मानव-जीवन के विरल और अमूल्य अनुभवों में से एक माना जाता है।

माउंट होलयोक की उस पीढ़ी की स्त्रियों के मन में आज भी न केवल उस पूर्ण-ग्रहण की याद ताज़ा है, बल्कि उन्हें यह भी याद है कि उस वर्ष हार्वर्ड विश्व-विद्यालय के अंडरग्रेजुएट तथा दूसरे छात्र कई कारणों से (यह बाद में बताया गया था) वह दृश्य देखने से वंचित रह गए थे। वे ठीक समय पर ठीक स्थान पर पहुंचने में 'असफल रहे थे', उन्हें यह बताने में भी बड़ा आनन्द आता है कि इस

असंभव को उनके लिए संभव बना दिया गया था मगर इसके परिणामस्वरूप उनमें से कोई भी निमोनिया से मरा नहीं, यद्यपि डा० हौग ने स्वीकार किया है कि, "उस दिन पहली बार मुझे पता चला कि सर्दी किसे कहते हैं।"

सीनियर वर्ष में उसके जीवन की एक और महत्त्वपूर्ण घटना घटित हुई। डा० ऐनी जम्प माउंट होलयोक पधारीं और उन्हें कॉलेज खगोलविज्ञान विभाग के कुछ छात्रों का कार्य दिखाया गया। डा० कैनन हार्वर्ड विश्वविद्यालय की प्रख्यात ज्योतिर्विद् थी जिसने लगभग ४,००,००० तारों का वर्गीकरण किया था, और जिनके योगदान को डा० शेप्ले ने "एक ऐसा कार्य जिसका गुण या परिमाण की दृष्टि से कोई एक व्यक्ति मुकाबला नहीं कर सकता" बताया था। उनके आने का परिणाम यह निकला कि अगले वर्ष मिस सॉयर को रैडक्लिफ विश्वविद्यालय में एडवर्ड सी० पिकरिंग छात्रवृत्ति दिलाने की व्यवस्था हो गई ताकि वह वहां अनुसंधान कर सके और उस कार्य पर वहां से खगोलविज्ञान में पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त कर सके।

'फाई बीटा कैम्पा' की सदस्यता के साथ, सन् १९०६ में स्नातक होने के पूर्व ही हेलेन सॉयर आकाश-गंगा के तारा-गुच्छों में विशेष रुचि लेने लगी थी। इन तारा-गुच्छों को गोल तारक-गुच्छ कहा जाता है। संयोगवश डा० हार्लो शेप्ले की विशेष रुचि भी इस विषय में थी। इसलिए उस शरद के दिनों में जब मिस सॉयर को छात्रवृत्ति मिली और उसने रैडक्लिफ विश्वविद्यालय में अपना काम शुरू किया तो उसे हार्वर्ड वेधशाला के निदेशक के साथ करने का अवसर मिला। हार्वर्ड कॉलेज वेधशाला पत्रिका के सन् १९२७ के अंक में उस वर्ष के अध्ययन के कुछ निष्कर्ष प्रकाशित हुए थे। पत्रिका का पहला लेख था, "पिचानवे गोल तारा-गुच्छों के फोटोग्राफिक कांतिमान", जिसके लेखक-द्वय थे हेलेन सॉयर और हार्लो शेप्ले, और लेखकों में हेलेन सॉयर का नाम पहले था।

यह बड़ी दिलचस्प बात है कि उस अंक का अंतिम लेख हार्वर्ड की स्नातक कक्षा के एक कनाडियन छात्र फ्रैंक एस० हौग द्वारा लिखा गया था जो पिछले वसंत में ही टारेंटो विश्वविद्यालय से स्नातक होकर यहां आया था, मिस्टर हौग की विशेष रुचि तारकीय वर्णक्रम ज्योतिर्मिति (Spectrophotometry) के क्षेत्र में थी, और इसी नौजवान को सन् १९२९ में हार्वर्ड से खगोलविज्ञान में सर्वप्रथम पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त करने का गौरव मिलनेवाला था।

स्वाभाविक था कि हेलेन सॉयर और फ्रैंक हौग मिले। शीघ्र ही उन दोनों को पता चला कि व्यक्तिगत जीवन और व्यवसाय—दोनों की काफी बातों में वे एक-दूसरे का साथ निभा सकते हैं।

यद्यपि उन दोनों को ही पोस्ट ग्रेजुएट उपाधियां सन् १९२८ में मिल गई थीं, किन्तु फ्रैंक हौग ने मिस सॉयर से दो वर्ष पूर्व ही डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त कर ली। उसने डाक्टरेट की उपाधि हार्वर्ड से ली थी। जबकि मिस सॉयर ने रैडक्लिफ से। जितने समय उसने रैडक्लिफ में अध्ययन किया उस बीच उसे बराबर कोई न कोई फेलोशिप मिलती रही। एक बार कुछ महीनों के लिए उसने अपना अध्ययन स्थगित करके स्मिथ कॉलेज में प्रशिक्षक के पद पर नौकरी कर ली थी। पी-एच० डी० करने के बाद फ्रैंग हौग को एक फेलोशिप मिल गई और वह एक वर्ष के लिए कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय, इंग्लैंड चला गया, जबकि मिस सॉयर ने कैम्ब्रिज अमरीका, में अपना शोध-कार्य जारी रखा, कैम्ब्रिज में उसने गोल तारा-गुच्छों के चरकांति तारकों पर विशेष अध्ययन प्रारम्भ किया और इसमें उसे विशेष सफलता भी मिली। इंग्लैंड से लौटकर डा० फ्रैंक हौग ने एक साल के लिए एमहर्स्ट कॉलेज में नौकरी कर ली और मिस हेलेन सॉयर से शादी कर ली। इस एक वर्ष में मिसेज हौग माउंट होलयोक में खगोलविज्ञान विभाग में पढ़ाती रही और उसने अपना अनुसंधान-कार्य भी पूरा कर लिया जिसपर उसे रैडक्लिफ से पी-एच० डी० की उपाधि मिली।

विवाह के पूर्व तारों पर जो अनुसंधान उसने किया था वह इतना सार्थक रहा कि उसका नाम चरकांति तारों व गोल तारक-गुच्छों की खोज के क्षेत्र में प्रतिष्ठित हो गया था। यही कारण है कि विवाह के बाद भी डा० हेलन सॉयर हौग ने विज्ञान के इस क्षेत्र-विशेष में जो काम किया उसमें उसने अपने विवाह-पूर्व नाम हेलेन सॉयर का ही प्रयोग किया, यद्यपि अपने शेष व्यावसायिक एवं सामाजिक में वह अपने विवाहित नाम का ही प्रयोग करती थी। इस मामले में समाज-चिह्न लगाकर सॉयर-हौग लिखने से सारी समस्या सुलझ सकती थी और यह इंग्लैंड के रीति-रिवाज के अनुरूप भी था।

सन् १९३१ में दोनों डाक्टर हौग ब्रिटिश कोलंबिया गए, जहां कि डा० फ्रैंक हौग को विक्टोरिया में डोमिनियम ज्योति-भौतिकी वेधशाला में नियुक्ति मिल गई थी। उसकी पत्नी को कोई नौकरी तुरन्त नहीं दी जा सकी, किन्तु उसे प्रति-

वर्ष कुछ शर्तों के लिए उस वेधशाला की उस ७२ इंची परावर्ती (Reflecting) दूरबीन का प्रयोग करने की अनुमति प्रदान की गई जो उस समय संसार की सबसे बड़ी दूरबीनों में दूसरे नम्बर पर मानी जाती थी। आगे के तीन साल बड़े घटना-पूर्ण रहे, इन तीन वर्षों में डा० हेलेन हौग का 'वेतन' लगभग २५० डालर प्रति वर्ष पड़ जाता था। उसके लिए यह रकम अनुसंधान-अनुदान के रूप में उस वेध-शाला के निदेशक डा० जे० एम प्लेसकट जुटाते थे। इन्हीं वर्षों में उनकी पहली बच्ची सैली ने जन्म लिया और शिशु के आगमन से उसकी मां के कामों में कुछ उलझन-सी पैदा हो गई। मगर यह उलझन स्वागत के योग्य थी क्योंकि ये दोनों आकाश के रहस्यों में इतनी बुरी तरह नहीं खो गए थे कि गृहस्थी और समाज के उत्तरदायित्वों और अपने पूर्णतर जीवन की ओर से उदासीन हो जाते। सैली के बाद उनके दो पुत्र और उत्पन्न हुए। जब बीस वर्ष के विवाहित जीवन के बाद, ४६ वर्ष की उम्र में डा० फ्रैंक हौग का तेजस्वी जीवन-दीप बुझ गया तब पति के शोक-सिंधु में डूबती हेलेन हौग के लिए ये तीन बच्चे ही सहारे सिद्ध हुए।

यह ७२ इंची परावर्तक (Reflector) सन् १९१८ से प्रयोग में आ रहा था किन्तु अभी तक उसे अनुसंधान में प्रत्यक्ष फोटोग्राफी के लिए प्रयुक्त नहीं किया गया था, यद्यपि इससे यह काम लिया जा सकता था। अपने पति तथा वेधशाला के दूसरे लोगों की सहायता से सन् १९३१ की शरद में डा० हौग ने अपने प्रिय क्षेत्र में अपना अनुसंधान स्वयं ही प्रारम्भ कर दिया। उसने विक्टोरिया से दिखाई देने-वाले आठ चुनीदा गोल तारा-गुच्छों के चित्र लिए। इन गुच्छों में से कुछ के बारे में यह माना जाता था कि इनमें चरकांति तारे हैं, जबकि बाकी के गुच्छों का अभी तक सम्यक् अध्ययन नहीं किया गया था।

आगे बढ़ने से पहले यह समझ लेना अच्छा रहेगा कि गोल तारा-गुच्छ क्या हैं, और ज्योतिर्विद् उनमें क्यों रुचि रखते हैं। गोल तारा-गुच्छ लाखों तारों के सममित समुच्चय (Symmetrical Aggregations) हैं जो गुरुत्वाकर्षण के कारण एक-दूसरे को साधे रहते हैं, और उनका आकार एक गुच्छे की तरह लगता है, वे हमारी आकाशगंगा के लगभग १०,००,००० लाख तारों के अंश हैं। अब तक एक सौ से अधिक स्वतंत्र तारा-गुच्छों का पता लगाया जा चुका है। इनमें से एक गुच्छे में कुछ हजार से लेकर एक लाख या इससे भी अधिक तारे होते हैं।

इन गोल तारा-गुच्छों में चरकांति तारे वे हैं जो एक नियमित अंतर से कांति-

मय और मंद होते रहते हैं। उनका विशेष महत्त्व इसलिए है कि उनका उपयोग तारकीय दूरियों की गणना में होता है। पृथ्वी तथा अंतरिक्ष की वस्तुओं के बीच की दूरी मापने के लिए ज्योतिर्विद् एक गणितीय पद्धति से काम लेते हैं जो चर-कांति तारक द्वारा सर्वाधिक कांतिमय तथा सर्वाधिक मंद होने के क्षणों में विकिरण होनेवाले प्रकाश के अंश (जिसे कांतिमान कहते हैं) और इन दोनों अवस्थाओं के बीच बीतनेवाले समय पर आधारित है। इसलिए चरकांति तारों का अनुसंधान ही नहीं बल्कि (इससे कहीं अधिक कठिन) उनके कांतिमानों की माप का भी खगोलविज्ञान में बहुत अधिक महत्त्व है।

इसलिए डा० हौग जिस तरह का काम हाथ में ले रही थीं उसके लिए एक ऐसे ज्योतिर्विद् की अपेक्षा थी जो प्रकाश का हिसाब रखते हुए आकाश के सफल और क्रमिक चित्र ले सके, फिर उन प्लेटों का सम्यक् अध्ययन और विश्लेषण कर सके और नई प्लेटों का, उसी तारा-गुच्छ की पुरानी प्लेटों के साथ, अध्ययन करके तर्कपूर्ण निष्कर्ष निकाल सके। इस तरह के काम के लिए उच्चतर गणित में भी विशेष योग्यता अपेक्षित है।

डोमिनियन वेधशाला में हौग-दम्पती तीन वर्ष रहे। इन तीन वर्षों में डा० हौग ने अपने पति व दूसरों की सहायता से गोल तारा-गुच्छों के लगभग ३५०-४०० प्रत्यक्ष चित्र लिए। मैसियर २ (Messier 2) नामक ज्ञात तारा-गुच्छ में उसने छः नये चरकांति तारों का पता लगाया। इस तारा-गुच्छ की २८ प्लेटें तो माउंट विल्सन वेधशाला में पहले ही ले ली गई थीं, और १०७ नई प्लेटें उसने खुद तैयार कीं। इन सभी प्लेटों का प्रयोग करते हुए उसने इस गुच्छे के सभी ज्ञात चरकांति तारों (जिनकी संख्या १७ थी) के कांतिमान एवं उनके कांतिमय और मंद होने के बीच का समय निर्धारित किया तथा इसपर लेखादि प्रकाशित कराए। अपने अध्ययन के लिए उसने जिन पांच दूसरे गुच्छों को चुना था उनमें उसने १३२ नये चरकांति तारों की खोज की, इससे पहले से ज्ञात चरकांति तारों की संख्या में १० प्रतिशत वृद्धि हो गई। वास्तव में, इन गुच्छों में से चार के बारे में इससे पहले यह सर्वथा अज्ञात था कि इनमें चरकांति तारे हैं।

इस पहले शोध-कार्यक्रम के परिणाम ज्योतिर्विदों के लिए बहुमूल्य सिद्ध हुए। यदि कोई किसी कार्य-व्यस्त ज्योतिर्विद् के चित्र की कल्पना कर सके तो एक ज्योतिर्विद् की क्रिया-पद्धति से सर्वथा अनजान आदमी को भी यह सब समझने

में बड़ा ग्रानंद ग्रा सकता है। इसलिए, ज़रा इस चित्र की कल्पना कीजिए कि डा० हौग एक गुंवद के ऊपरी सिरे पर एक चल प्लेटफॉर्म पर बैठी हैं, हर प्लेट के उद्भासन-काल (Exposure) में उसकी ग्रांख दूरवीन से सटे हुए कैमरे के ग्राई पीस से चिपटी रहती है, वह ग्रपनी ग्रांखों से एक तारा-गुच्छ विशेष की गति का ग्रध्ययन करती जाती है ग्रौर ग्रपनी उंगलियों से एक सूक्ष्म यंत्र का नियंत्रण करती जाती है ताकि कैमरे से वह उस तार-गुच्छ के चित्र भी साथ-साथ लेती चले।

चित्रों की इस प्रथम शृंखला में उद्भासन-काल एक या दो मिनट से लेकर पच्चीस से तीस मिनट कर रहा। वाद में उसने ऐसे चित्र भी लिए जिनका उद्भासन-काल एक घंटा था—६० मिनट तक उसकी ग्रांख ग्राई-पीस से चिपकी रहती थी। "हां, मुझे पलकें तो झपकानी पड़ती थीं," वह क्षमा-याचना के से स्वर में वताती है।

इस प्रकार की फोटोग्राफी सूर्यास्त ग्रौर सूर्योदय के वीच के समय में ग्रौर वर्ष के उन थोड़े-से महीनों में ही संभव थी जिनमें इस दृष्टि से तारों की स्थिति ठीक होती है ग्रौर रातें इतनी स्वच्छ होती हैं कि ज्योतिर्विद् तारों का सम्यक् ग्रध्ययन कर सके ग्रौर इनके चित्र भी ले सके। इसके ग्रलावा एक वर्ष, गर्मियों में, तो उनके सामने तक नई समस्या उठ खड़ी हुई। यह समस्या नन्ही सैली को दूध पिलाने की थी। वे लोग वच्ची को कपड़ों की एक गुदगुदी डलिया में वेधशाला ले जाते थे। वहां डा० हेलेन हौग तो गुंवद के ऊपरी सिरे पर पहुंचकर ग्रपने काम में लग जाती थी ग्रौर डा० चार्ल्स हौग गुंवद के फर्श पर से दूरवीन ग्रौर गुंवद को घुमानेवाले यंत्र का नियंत्रण करते थे ग्रौर पास ही निश्चित सोई सैली की देख-रेख भी करते रहते थे। एक चित्र ले लेने के वाद वच्ची की मां विजली का एक वटन दवाती ग्रौर उनकी प्लेटफॉर्म फर्श से ग्रा लगता था। नीचे ग्राकर वह बच्ची को दूध पिलाती ग्रौर उसकी दूसरी ज़रूरतों को पूरा करती थी, ग्रौर इसके बाद सैली को उसकी डलिया में लिटा दिया जाता था ग्रौर उसकी मां ऊपर ग्रपने काम पर वापस चली जाती थी। सव मिलाकर, गर्मियों के ये दिन खगोलविज्ञान के ग्रतिरिक्त दूसरे क्षेत्रों में भी रचनात्मक थे। उन्हीं दिनों एक बार राजज्योतिर्विद् उस वेधशाला को देखने पधारे। जव वे उस तारों-भरी रात में वेधशाला के निदेशक के साथ सीढ़ियां उतरकर गुंवद के फर्श की तरफ ग्रा रहे थे तो उन्होंने

नन्ही सैली के रोने की आवाज़ सुनी और वे चौंक पड़े। "यह क्या है!" उनके मुख से निकला।

"ओह, यह हौग-दंपती का शिशु है" सैली के मां-बाप के कानों में वेधशाला के निदेशक डा० प्लैस्केट के ये शब्द पड़े।

जब टोरंटो विश्वविद्यालय की नई चौबुर्जी डेविड डनलैप वेधशाला का निर्माण लगभग पूरा हो चुका था तब डा० चार्ल्स हौग को इस विश्वविद्यालय के खगोल-विज्ञान विभाग में नियुक्त किया गया। उनकी पत्नी को उसी वेधशाला में सहायक के पद पर नियुक्त कर दिया गया। पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त करने के बाद पहली बार डा० हेलन हौग को एक ऐसी नियुक्ति मिली थी जिसमें उसे वेतन मिलना था। इस वेधशाला के ७४ इंची परावर्तक से वह अपना वह शोध-कार्य अत्यन्त सुगमतापूर्वक आगे बढ़ा सकती थी जिसमें उसका नाम 'सायर' प्रतिदिन मान्यता प्राप्त करता जा रहा था। इसी प्रकार उसके पति को वर्णक्रमविज्ञान (Spectroscopy) के क्षेत्र में अधिकाधिक मान्यता प्राप्त होती जा रही थी। टोरंटो आकर फ्रैंक हौग ने बड़ी तेज़ी से तरक्की की। वे एक अत्यन्त मेधावी ज्योतिर्विद थे और दिल की बीमारी के कारण हुई उनकी असामयिक मृत्यु सत्य ही एक दुःखपूर्ण घटना थी। ४१ वर्ष की उम्र में वे उस वेधशाला के निदेशक नियुक्त हुए थे और ४६ वर्ष की उम्र में उनका स्वर्गवास हो गया। किन्तु जब वे दोनों इस विश्वविद्यालय में आए थे तब सत्रह वर्ष का सहयोगी गार्हस्थ्य एवं व्यावसायिक जीवन उनके सामने था। एक बार आ जाने के बाद हेलेन सॉयर हौग का व्यावसायिक केन्द्र सदैव यहां विश्वविद्यालय रहा। सन् १९३७ तक उनके दो पुत्र और हो चुके थे, तथा अगले वर्ष डा० हेलेन हौग की वेधशाला में अनुसंधान-सहयोगी के पद पर तरक्की कर दी गई। यह उसके अभ्युदय का प्रारंभ था जो सन् १९५७ में पूर्ण प्रोफेसर हो जाने के साथ पूर्ण हुआ। यह एक ऐसा सम्मान था जो कुछ दूसरे विश्वविद्यालयों की तरह इस विश्वविद्यालय में अब भी नारियों के लिए दुर्लभ है।

डेविड डनलैप वेधशाला में नियुक्त होने से पहले, और नियुक्ति के पहले पांच वर्षों तक भी, हेलेन सॉयर ने गोल तारा-गुच्छों का अध्ययन अमरीका के उत्तरी भागों या दक्षिणी कनाडा की दूरबीनों की ही सहायता से किया था। चूंकि कुछ गोल तारा-गुच्छा के चित्र दक्षिणी आकाश में ही ज्यादा अच्छे लिए जा

सकते हैं, इसलिए वह ऐसे चित्र भी लेना चाहती थी जो अब तक न ले पाई थी। सन् १९३९ में राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी ने उसे इस कार्य के लिए एक अनुदान दिया, एरिज़ोना विश्वविद्यालय ने और उसकी वेधशाला के निदेशक ने सहयोग का वचन दिया, और इस प्रकार ३६ इंची स्टीवार्ड परावर्तक का प्रयोग करके वह दक्षिणी आकाश में तारों के चित्र लेने की अपनी साध पूरी कर सकी।

चित्रों की इस नवीन शृंखला को प्रारंभ करने के कुछ ही पहले उसने 'गोल तारक-गुच्छों के १११६ चरकांति तारकों का सूचीपत्र' प्रकाशित कराया। उसके इस योगदान का ज्योतिर्विदों ने सोत्साह स्वागत किया। सन् १९३९ में प्रकाशित इस व्यापक शोध-कृति का महत्त्व इस बात से और भी बढ़ जाता है कि इसके रचनाकाल में डा० हौग के दोनों लड़के छोटे थे और उनकी मां के लिए उनका ध्यान रखना परमावश्यक था। खगोलविज्ञान में इन सूचीपत्रों का बहुत अधिक महत्त्व होता है। सन् १९३० तक गोल तारक-गुच्छों में चरकांति तारकों के कई संक्षिप्त विवरण तो प्रकाशित हो चुके थे (ऐसा एक विवरण डा० शैप्ले ने भी प्रकाशित कराया था) किंतु एक पूर्ण सूचीपत्र पहली बार डा० हेलेन हौग ने ही प्रकाशित कराया था। इस सूचीपत्र से इस विषय में रुचि रखनेवाले किसी भी शोधकर्ता को ठीक-ठीक पता चल सकता था कि अब तक सभी गोल तारा-गुच्छों या किसी एक तारा-गुच्छ-विशेष, के सभी ज्ञात चरकांति तारों के सम्बन्ध में क्या कुछ हो चुका है। सन् १९३९ में केवल ६५६ चरकांति तारों के कांतिमय और मंद होने के बीच का समय निर्धारित हो सका था। इस सूचीपत्र को पढ़ने पर पता चलता है कि उसमें दिए गए चरकांति तारों में से आधे से अधिक तारों का पता तो हेलेन सॉयर के जन्म के भी पूर्व ही लगा लिया गया था। पहले चरकांति तारे की खोज सन् १८६० में ही की जा चुकी थी। उसके जन्म के बाद जिन ५०० से ६०० तारों की खोज की गई थी उनमें से १४२ तारों की खोज स्वयं उसने की थी।

सन् १९३९ की गर्मियों में वह ऐरिज़ोना विश्वविद्यालय गई। और वहां उसने २७९ प्रत्यक्ष चित्र लिए। वहां की वेधशाला की स्टीवार्ड दूरबीन से दक्षिणी आकाश को देखते हुए उसे एक नया ही अनुभव हुआ। इस समय तक वह भली भांति समझ चुकी थी कि नये-नये चित्र लेते जाने से उसका काम कितना अधिक बढ़ा जा रहा है। फोटोग्राफिक प्लेटों की परीक्षा एवं अध्ययन द्वारा, जिसमें वह सभी सम्भव तरीकों का प्रयोग करती थी, ब्रह्मांड के बारे में मानवीय ज्ञान में

वृद्धि करना बड़ा ही कठिन और समयसाध्य काम है, जिसमें चित्र-वृत्तियों को केन्द्रित करना अनिवार्य है। वह विशेष रूप से इन दो तरीकों का प्रयोग करती थी: (१) एक पोज़िटिव एक नेगेटिव का अध्यारोपण (Superposition); (२) निमीलन सूक्ष्मदर्शी (Blink microscope) से परीक्षा। एक चरकांति तारे के लिए शब्दशः सैकड़ों तारों की छानबीन करनी पड़ सकती है। इसके बाद इसकी कांति, मंदता और (कांतिमय और मंद होने के) समय के अन्तराल को मापना पड़ता है। और अक्सर ऐसा होता है कि ज्योतिर्विद् जब समय-अन्तराल के रहस्य को समझनेवाले मार्ग पर कदम रखता है तो चांद का प्रकाश इतना उजला हो जाता है कि उसमें इस सुदूरवर्ती तारे का मद्धम प्रकाश छिप जाता है और काम वहीं रुक जाता है।

चरकांति तारकों के अध्ययन में कठोरतम परिश्रम आवश्यक होता है फिर यह ऐसा क्षेत्र या जिसके प्रति हेलेन सॉयर ने स्वयं को समर्पित कर दिया था। सन् १९३०–१९४० तक उसने अपना समय व्याख्यान देने, विश्वविद्यालय में पढ़ाने, वेधशाला की दूरबीन से नवीन चित्र लेने और अपने घरेलू और सामाजिक उत्तर दायित्वों को पूरा करने में लगाया, किन्तु उस समय का अधिकांश भाग चरकांति तारकों के अध्ययन में ही बीता। इनमें से एक वर्ष उसने माउंट होलयोक में खगोल-विज्ञान विभाग के कार्यकारी अध्ययक्ष के रूप में भी बिताया। माउंट होलयोक की वेधशाली की निदेशक दक्षिण अमरीका में ग्रहण देखने चली गई थी और वहां के अधिकारियों ने डा० हेलेन हॉग को उसके स्थान पर आमन्त्रित किया था। माउंट होलयोक में अपने नियमित उत्तरदायित्वों को निभाना और जल्दी से जल्दी टोरंटो लौट आना टेढ़ी खीर थी। लेकिन, "डा० फार्न्सवर्थ का काम संभालने के लिए बहुत कम लोग तैयार थे, और यदि मैं उसकी सहायता न करती तो वह उस ग्रहण को शायद ही देख पाती," डा० हॉग का कहना है। ज्योतिर्विदों के लिए ग्रहणों का महत्त्व बहुत अधिक होता है, और यह तथ्य डा० हेलेन हॉग भला कैसे भूल सकती थी जो घुटनों-घुटनों बर्फ में धंसकर भी ग्रहण देखने का अवसर नहीं चूकी थी।

कनाडा, अमरीका और कभी-कभी विदेशी वैज्ञानिक पत्रिकाओं में भी हेलेन सॉयर के नाम से एक के बाद एक लेख प्रकाशित होने लगे। प्रायः इन लेखों में या तो उन नये चरकांति तारकों से सम्बन्धित आंकड़े होते थे, अथवा उन चरकांति

तारकों के कांतिमान का निर्धारण होता था जिनका निर्धारण तब तक नहीं हो सका था। सन् १९४७ में उसने 'पृथक् गोल तारा-गुच्छों की सन्दर्भ ग्रंथसूची' प्रकाशित कराई। इस सूची से ज्योतिर्विदों को यह पता चल सकता था कि इस क्षेत्र में तब तक क्या कुछ किया जा चुका था। कहीं-कहीं उसने उन गलतियों का संशोधन भी कर दिया था जो ज्योतिर्विदों ने चरकांति तारों के कांतिमय और मंद होने के बीच के समय की गणना में की थीं। सन् १९५० में उसे खगोलविज्ञान के और विशेष रूप से गोल तारा-गुच्छों के अध्ययन के क्षेत्र में अपने असाधारण योगदान पर ऐनी जप कैनन पुरस्कार प्राप्त हुआ तो उसके बारे में कहा गया कि उसने "इस दुर्गम क्षेत्र में शीर्षस्थान प्राप्त कर लिया है।" चार साल पहले ही अपने कृतित्व के कारण उसे कनाडा की रॉयल सोसायटी का फेलो निर्वाचित किया जा चुका था—भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में यह सम्मान पानेवाली वह एकमात्र महिला है।

हमेशा ऐसा लगता था जैसे जितना काम किया जा चुका है, उससे कहीं ज्यादा अभी और करने को पड़ा है, विश्व की दूरबीनों की बढ़ती हुई शक्ति के साथ नवीन चरकांति तारा-गुच्छों का अनुसंधान हुआ। लेकिन सिर्फ यही अनुसंधान नहीं हुआ। ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाण जुटे जा रहे थे, जिनसे सिद्ध होता था कि नवीन तारों का सृजन होता रहता है। युगों से प्रचलित यह मान्यता तिरस्कृत कर दी गई कि सभी तारों का सृजन एक ही समय में हुआ था। ब्रह्माण्ड को सृजन-प्रक्रिया-रत पाया गया।

खगोलविज्ञान के मूल चिंतन में यह एक क्रांतिकारी परिवर्तन था और हेलेन सॉयर ने इसका स्वागत किया। उसकी प्रवृत्ति इटली के उस राजपुरुष की भांति नहीं थी जिसने गैलीलियो की दूरबीन में देखने से इसलिए इनकार कर दिया था कि कहीं वह उसमें से दिखाई देनेवाली चीज़ों पर यकीन न करने लगे। वह एक ज्योतिर्विद् के इस कथन में विश्वास रखती थी: "श्रद्धाहीन ज्योतिर्विद् पागल होता है।" सन् १९५१ की नये साल की सुबह को नाश्ते के लिए वह अपने तीनों बच्चों के साथ डा० चार्ल्स हौग का इंतज़ार कर रही थी जो ऊपर वाले कमरे में सोए हुए थे। जब नियत समय पर वे न आए तब वह ऊपर उन्हें जगाने गई और वहां उन्हें मृत पाया।

पति की मृत्यु के बाद उसका जीवन और भी अधिक व्यस्त हो गया। विश्व-

विद्यालय ने उसकी पदोन्नति और वेतन-वृद्धि कर दी। विश्वविद्यालय के क्षेत्र से बाहर अपने पति के अधूरे कामों को पूरा करने के लिए जब भी उससे कहा गया तो यथासंभव उसने उसे स्वीकार ही किया। 'जरनल ऑफ द रॉयल एस्ट्रोनोमिकल सोसाइटी ऑफ कनाडा' में 'दि ओल्ड बुक्स' शीर्षक जो स्तम्भ वह पहले से लिखती आ रही थी, वह एक बार भी अनियमित या स्थगित नहीं हुआ। इसके अलावा मृत्यु से पहले उसका पति जिन पत्रों आदि के लिए लिखता था उनमें भी अब उसके स्थान पर वह खुद लिखने लगी। सैली वापस कॉलेज जाने लगी, लड़कों ने हाई स्कूल किया और कॉलेज में पढ़ना शुरू कर दिया। एक ने अपना विषय खगोलविज्ञान चुना और दूसरे ने रसायन। जब हेलेन सॉयर तारों के चित्र लेने गुंबद के ऊपर चली जाती तो फर्श पर से उसे नियन्त्रित करने के लिए हौग की जगह पर एक नया सहायक आ गया। उसकी प्लेटों की संख्या बढ़ती ही गई और इसके साथ ही उसका काम भी। सन् १९५५ में जब उसने 'गोल तारा-गुच्छों के चरकांति तारों का दूसरा सूचीपत्र' प्रकाशित कराया तो उसमें पहले सूचीपत्र की अपेक्षा ३२९ चरकांति तारे नये थे और इनमें से ३० प्रतिशत अर्थात् ९९ तारे स्वयं हेलेन सॉयर ने खोज निकाले थे।

सन् १९५७ में पूर्ण प्रोफेसर के पद पर नियुक्त करके टोरंटो विश्वविद्यालय ने तो हेलेन सॉयर को सम्मानित किया ही था, उसे और भी अनेक प्रकार से सम्मानित किया गया। सन् १९५५ में राष्ट्रीय विज्ञान-संस्थान ने उससे अपने खगोलविज्ञान-कार्यक्रम का निदेशन करने के लिए कहा। यह एक ऐसा सम्मान था जिसे प्राप्त करनेवाली वह एकमात्र महिला है। सन् १९५७ में कनाडा की रॉयल एस्ट्रोनोमिकल सोसाइटी ने उसे अपना अध्यक्ष निर्वाचित किया। सन् १९५८ में माउंट होलयोक ने उसे विज्ञान में सम्मानसूचक डाक्टरेट की उपाधि प्रदान की। सन् १९५८ में वह दो हफ्तों के लिए सोवियत विज्ञान अकादमी की अतिथि बनकर मास्को गई। वहां वह अंतर्राष्ट्रीय एस्ट्रोनोमिकल यूनियन के प्रतिनिधि और सदस्य के रूप में गई थी, और गोल तारा-गुच्छों के चरकांति तारकों के उपआयोग की अध्यक्ष भी बनाई गई थी। उसने वहां सभा-सम्मेलनों व दौरों में भाग लिया।

इस सबके बावजूद हेलेन हौग अपने लेखन-कार्य के लिए समय निकाल लेती है। टोरंटो से निकलनेवाले 'डेली मेल' वह 'सितारों के साथ' शीर्षक स्तम्भ में

नियमित रूप से लिखती है। वह अपने बच्चों के बच्चों से हेल-मेल बढ़ाने के लिए भी समय निकाल लेती है, जो उसके ५० वर्ष की आयु प्राप्त करते ही होने शुरू हो गए थे। वह खाली समय में बुनाई करती है और उसमें 'हेलेन हौग की सलाई से' जैसे पेशेवर बिल्ले लगाती है। वह एक ऐसी वैज्ञानिक महिला है जिसने घर-गृहस्थी और मित्र बनाने की कला का अपने वैज्ञानिक कार्य के साथ बड़ा सुन्दर गठबन्धन करने में सफलता प्राप्त की है। उसका जीवन अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण रहा है जिससे उसमें एक ऐसी मानवीय परिपक्वता आ गई है जो बाल पक जाने-भर से या वैज्ञानिक कार्य-कलाप से नहीं आती बल्कि तभी आती है जब शरीर, मस्तिष्क और हृदय—या आत्मा—परस्पर सक्रिय सहयोग देते हैं।

एलिज़ाबेथ शुल रसेल

आनुवंशिकी आनुवंशिकता के वैज्ञानिक अध्ययन का नाम है, और जब हम एलिज़ाबेथ शुल के परिवार पर गौर करते हैं तो यह देखकर आश्चर्य होता है कि इसे आनुवंशिकीविज्ञ बनाने में इस आनुवंशिकता का कितना बड़ा हाथ है। उसका पिता आनुवंशिकीविज्ञ था और फार्मिंग करनेवाले उसके परिवार के छः लड़कों में से पांच लड़के जीव-वैज्ञानिक थे। उसकी मां (कुमारी बकले) ने प्राणिविज्ञान में एम० ए० किया था और डा० शुले से विवाह करने के पूर्व कई वर्षों तक यह विषय पढ़ाया भी था। उनके दोनों बच्चों में, एलिज़ाबेथ तो प्राणिविज्ञ हो गई और आगे चलकर अपने पिता की तरह आनुवंशिकीविज्ञ बनी, और उसका भाई अपने मामा ओलीवर की तरह भौतिकीविद् बना। बकले और शुल परिवारों को देखने पर साफ पता चल जाता है कि वैज्ञानिक प्रतिभा की 'परिवार में प्रचुरता थी।'

फिर भी आनुवंशिकीविज्ञों का कहना है कि आनुवंशिकता के अलावा पर्यावरण का भी हमारे भविष्य-निर्धारण में बहुत हाथ रहता है। एलिज़ाबेथ शुल का प्रारम्भिक पर्यावरण कुछ ऐसा था कि उसे प्राणिविज्ञान की बजाय वनस्पतिविज्ञान की ओर जाना चाहिए था। वनस्पतिविज्ञान और प्राणिविज्ञान जीवविज्ञान के दो मुख्य भेद हैं जिनमें से आनुवंशिकीविज्ञ प्रायः पहले को ही चुनता है। जब वह दस-ग्यारह वर्ष की थी और स्कूल में पढ़ती थी तब वह पौधों और जीवों—दोनों में ही रुचि लेती थी। इन्हीं दिनों एक बार गर्मियों की छुट्टियों में उसने अपने घर से नज़दीक हा एक वनभूमि में फूलनेवाले सभी पौधों का सर्वेक्षण किया था और हर पौधों का परीक्षण करते हुए उनकी जातियों की पहचान भी की थी। तब उसने अपनी मां की कुशल देख-रेख में हर पौधों को दबाकर आरोपित कर दिया। इस प्रकार, उसके पास एक प्रदर्शनीय उद्भिजालय (Herbarium) हो गया, जिसकी ज़रूरत उसे कुछ साल बाद पड़ी जबकि वह हाई स्कूल जूनियर छात्रा थी, और

पहली बार उसने जीव-विज्ञान को अपना विषय चुना था।

एलिज़ाबेथ का हाई स्कूल तक का छात्र-जीवन ऊंचे स्तर के अमरीकी हाई स्कूलों की अन्य छात्राओं के समान ही था। कोई विशेषता थी तो यह कि वह अपने सहपाठियों से उम्र में एकाध साल छोटी थी, उसका जन्म एन आरबर में हुआ था। उसके पिता मिशिगन विश्वविद्यालय में प्राणिविज्ञान के प्रोफेसर थे। इस विश्वविद्यालय के कर्मचारियों के बच्चे प्रायः इसकी ओर से चलनेवाले एक हाई स्कूल में पढ़ते थे। एलिज़ाबेथ का सौभाग्य था कि इस स्कूल में उसे एक ऐसे शिक्षक से पढ़ने का अवसर मिला, जो विषय-ज्ञान के साथ-साथ अपने विद्यार्थियों को ज्ञान-प्राप्ति का तरीका भी सिखाते थे। जीव-विज्ञान पढ़ाते समय प्रोफेसर फ्रैंसिस डी० कर्टिस अपने छात्रों में विषय के प्रति एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने की आदत डालने का प्रयत्न करते थे। होता यह था कि पहले एक परिकल्पना ले ली जाती और फिर उसमें निहित उपादानों के बारे में अपने-अपने ज्ञान के आधार पर हर विद्यार्थी अनुमान लगाता कि परिणाम क्या होगा ? तब उस समस्या का क्रमिक अध्ययन किया जाता ताकि हर विद्यार्थी दी गई परिकल्पना को सिद्ध या खण्डित करना सीख सके, उदाहरणार्थ :

प्रश्न पूछा जाता था—रोटी पर फफूंद क्यों आती है ? अपने अनुभव के आधार पर एक विद्यार्थी बताता कि फफूंद के लिए सीलन आवश्यक है, कोई दूसरा विद्यार्थी कहता कि तापमान में परिवर्तन आए बिना रोटी नहीं फफूंद सकती। तीसरा सोचता कि रोटी पर फफूंद आने का कारण यह है कि वह खुली रह गई थी। इसी प्रकार चौथा छात्र कहता कि रोटी तभी फफूंद सकती है जबकि बाहर ले आए फफूंद के ऑरगेनिज़्म उसमें पहले से ही मौजूद हों। छात्रों के ये सब सुझाव एक परिकल्पना-शृंखला का रूप धारण कर लेते, और तब प्रयोगात्मक परीक्षण शुरू हो जाते।

रोटी के यथासंभव बराबर-बराबर टुकड़े कर लिए जाते थे। उनमें से कुछ टुकड़ों को सूखा रखा जाता था, इन सूखे टुकड़ों में से कुछ को प्रकाश में खुला रख दिया जाता था, और कुछ को अंधकार में; कुछ टुकड़ों को गीला कर लिया जाता था और उनमें से कुछ को प्रकाश में रख दिया जाता था, कुछ को अंधकार में; दूसरे सूखे और गीले टुकड़ों को पहले एक फफूंदी हुई रोटी के पास, और फिर प्रकाश या अंधकार में खुला रख दिया जाता था। इन्हींके बराबर सूखे या गीले

प्रकाश या अन्धकार में खुले रखे हुए टुकड़ों को वन्ध्या स्थिति में रखा जाता था—और इसी प्रकार अन्य स्थितियों में रखा जाता था। इस प्रकार के परीक्षणों से अन्त में छात्रों को ठीक-ठीक पता चल जाता था कि रोटी पर फफूंद क्यों आती है। और फिर, प्रो० कर्टिस बराबर इसी बात की कोशिश करते थे कि जहां तक मुमकिन हो उनके छात्र अपनी शंकाओं का समाधान खुद ही करें।

इस प्रकार, चौदह-पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ही एलिज़ाबेथ शुल ने जीव-विज्ञान की कक्षा में वैज्ञानिक पद्धति की एक बुनियादी तकनीक सीख ली थी—कि पहले एक परिकल्पना ले लो और तब उसे सही या गलत साबित करो। जर्मनी से स्वीडन भाग आने के बाद लाइज़ मेट्नर ने भी नाभिकीय भौतिकी के अपने अनुभव के आधार पर ऑटो हैन की प्रयोगशाला में हुई परमाणु-विखण्डन-संबंधी घटना का विश्लेषण करते हुए इसी तकनीक का विशद उपस्थापन किया था। डा० मेट्नर ने यह परिकल्पना की थी कि परमाणु का विखण्डन हो चुका है, और फिर अपनी परिकल्पना की पुष्टि में अनेक वैज्ञानिक तर्क भी उपस्थित किए थे। तब अमरीका की अनेक प्रयोगशालाओं में प्रायोगिक परीक्षण किए गए, और उसकी परिकल्पना को सही सिद्ध करनेवाले अनेक प्रमाण मिल गए। प्रो० कर्टिस द्वारा अपने छात्रों को सिखाया गया यह तरीका आज की शिक्षा-प्रणाली के सही या गलत, सच या झूठ का अनुमान के खेलों से बिलकुल भिन्न था। आजकल छात्र तर्कना-शक्ति को बढ़ानेवाली प्रक्रियाओं को सीखे बिना ही अनुमान लगाने लगता है, और उसके पचास फीसदी अनुमान सही भी निकल आते हैं, चाहे विषय के बारे में उसका ज्ञान कितना ही अधूरा क्यों न हो।

जब वह सिर्फ सोलह वर्ष की थी, और कॉलेज जाने की तैयारी में थी, तभी एलिज़ाबेथ शुल ने किसी माध्यमिक स्कूल में अध्यापन-कार्य करने का निश्चय कर लिया था। छुट्टियों में ग्रीष्म-शिविरों में प्रकृति के अध्ययन ने पौधों और जीवों में उसकी रुचि को न केवल बनाए रखा, बल्कि इस विषय में उसकी रुचि को बढ़ाया भी। प्रकृति का यह अध्ययन उसके कार्यक्रम का एक अंग था। हाईस्कूल में एक ऐसी घटना घटी जिसने प्राणिविज्ञान में उसकी रुचि और भी बढ़ा दी। प्रो० कर्टिस के पर्यवेक्षण में उसने जीवविज्ञान से संबद्ध एक प्रयोग के लिए तालाब के रुके हुए पानी में ऊपर से कुछ काई (Scum) जमा की। इस काई से उसने एक संवर्धन (Culture) तैयार किया ताकि वह उसमें पाए जानेवाले विभिन्न जीवों का

अध्ययन कर सके। उसे ज्ञात था कि तालाब की काई में पौधों और प्राणियों—दोनों के ही ऑरगेनिज़्म होते हैं। इस संवर्धन को उसने ज्ञावल और मांड खिलाया। एक महीने बाद उसमें बहुत-से पैरामीशिया उत्पन्न हो गए। पैरामीशिया एककोशीय ऑरगेनिज़्म है जो दो भागों में विभक्त होकर जनन करता है। हर घंटे के बाद वह इन सूक्ष्म ऑरगेनिज़्मों को अपने अणुवीक्षण-यंत्र से देखती रहती थी। अंत में वह पुलक-भरा क्षण भी आया जबकि उसने एक पैरामीशिया को दो भागों में विभक्त होते देखा। जो पहले एक जीवित कोश था अब दो जीवित कोशों में परिणत हो गया था। स्कूल में पढ़नेवाली एक बालिका के लिए यह एक चमत्कार से कम नहीं था। वह इसे कभी नहीं भूली।

इस अनुभव ने विषय-चयन के मामले में उसकी रुचि को कहां तक प्रभावित किया, यह तो कहना कठिन है, लेकिन जब वह मिशिगन विश्वविद्यालय में दाखिल हुई तो उसने प्राणिविज्ञान और सामान्य विज्ञान को प्रमुख और रसायन और गणित को गौण विषयों के रूप में लिया। हाई स्कूल की ही भांति आगे भी वह खूब मन लगाकर पढ़ती रही और सभी विषयों में अच्छे अंक प्राप्त करती रही। उसने वनस्पतिविज्ञान में भी दो कोर्स पास किए और दोनों वर्ष गर्मियों की छुट्टियों में एक शिविर में कॉन्सलर की हैसियत से 'प्रकृति का अध्ययन' विषय को पढ़ाया भी। विश्वविद्यालय के जीवविज्ञान-केंद्र में दो वर्ष गर्मियों में और रहने पर उसे पता चला कि जीवों पर काम करना कितना आकर्षक हो सकता है; पौधों की अपेक्षा जीवों की गतिविधियां कहीं अधिक हैं, और उनके भेद-उपभेद भी बहुत अधिक हैं। वह जीवों को इसलिए प्यार करती थी कि उनमें जीवन है। संभवतः इसी कारण जीवन-भर प्रयोगशाला में इन जीवों का अध्ययन करने का निर्णय लेने में वह सकुचाती थी। वह एक करुणार्द्र मानवी है और कोई आश्चर्य नहीं यदि उसके अवचेतन में जीवंत जीवों की प्रयोगशाला में चीर-फाड़ करने में इतनी अधिक झिझक रही हो कि उसके कारण जल्दी ही वह इस बात का निर्णय न कर पाई हो कि उसकी रुचि किस विषय में सबसे अधिक है।

जो हो, सन् १९३३ में जब कुमारी शुल 'फाई बीटा कैप्पा' की सदस्यता, और प्राणिविज्ञान में विशेष योग्यता, के साथ मिशिगन विश्वविद्यालय से स्नातक हुई तब भी उसका विचार जीवविज्ञान पढ़ाने का ही था। अपने पिता की सलाह मानकर उसने कोलंबिया विश्वविद्यालय में प्राणिविज्ञान में एक वर्ष स्नातकोत्तर

अध्ययन के लिए मिलनेवाली एक छात्रवृत्ति के लिए प्रार्थनापत्र भेज दिया, और वह स्वीकृत भी हो गया। इस छात्रवृत्ति से कोलंबिया विश्वविद्यालय में उसके रहने व खाने की मुफ्त व्यवस्था हो गई। इस एक वर्ष के अरसे में कुछ ऐसी बात हुई जो सामान्यतया विज्ञान के छात्र के जीवन में कुछ पहले हो जाती है—ऐसी बात जिसके होने पर भावी वैज्ञानिक तुरंत पहचान लेता है कि उसकी रुचि का क्षेत्र कौन-सा है, कौन-सा नहीं। कोलंबिया में पहली बार कुमारी शुल ने सैद्धान्तिक आनुवंशिकी पर कार्य किया। जब वह मिशिगन विश्वविद्यालय में पढ़ती थी तो उसने आनुवंशिकता का कुछ अध्ययन किया था, जिसमें उसने पढ़ा था कि आनुवंशिक विशेषताओं को संचरित करने में जीनें (Genes) क्या कुछ कर सकती हैं। यह विषय उसे अपनी रुचि के अनुकूल प्रतीत हुआ था किन्तु ऐसा नहीं लगा था जिसे छोड़ा ही न जा सके। कोलंबिया में अपने अध्ययन-काल में उसका ध्यान आनुवंशिक विशेषताओं के पीढ़ी दर पीढ़ी संचरण पर नहीं, बल्कि किसी एक जीव के जीवकाल में "प्रभाव उत्पन्न करने में जीनों द्वारा अपनाई गई शरीर क्रियात्मक प्रक्रियाओं" पर केंद्रित रहा।

यह सब कैसे हुआ, यह उसीके शब्दों में सुनिए: "मैंने शिकागो विश्वविद्यालय के सैवल राइट द्वारा लिखित कुछ लेख पढ़े, जिनमें उन्होंने उन शरीर-क्रियात्मक प्रक्रियाओं का पता लगाने का प्रयत्न किया था जिन्हें कुछ जीनें आनुवंशिकता से निर्धारित होनेवाली विशेषताओं को उत्पन्न करने में अपनाती हैं। इस विषय ने मुझे जकड़ लिया, इससे पहले किसी और विषय में मेरी इतनी रुचि कभी नहीं हुई थी। उस वर्ष वसंत में एम० ए० करते-करते मैं निश्चित रूप से समझ गई कि मुझे एक आनुवंशिकीविज्ञ बनना है, और इसी ध्येय की प्राप्ति करने मैं डा० राइट के पास शिकागो के लिए चल पड़ी।"

अगले तीन वर्षों में उसने शिकागो विश्वविद्यालय में अध्ययन किया और साथ ही डा० राइट के विभाग में शोध-सहायक के रूप में काम भी किया। वह इन तीन वर्षों के अनुभव को 'अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अनुभव' बताती है। उसके शब्दों में यह एक ऐसा काल-खंड था जिसने उसके जीवन को उचित दिशा दी। डा० राइट गिनी पिग (Guinea pig) की रंजकता (Pigmentation) का अध्ययन कर रहे थे, और उन प्रक्रियाओं का निरूपण करने का प्रयत्न कर रहे थे जिनके द्वारा जीनें उन सुअरों के चर्म में विभिन्न रंग पैदा कर देती हैं। ये सभी रंग—काला, भूरा,

गहरा (कुछ चंपई छटा लिए हुए) लाल, मीठा, पीला, चितकबरा आदि तथा वर्णहीन जीवों जैसा सफेद आदि—कुछ जीनों के कारण उत्पन्न होते हैं, और ये सब जीनें संतान को अपने जननी-जनक से मिलती हैं। वह इस बात का पता लगाने की कोशिश कर रहे थे कि जीनें रंग पैदा करने का अपना यह काम कैसे संपन्न करती हैं, अर्थात् ऐसा करते समय वे किन शरीरक्रियात्मक प्रक्रियाओं से गुज़रती हैं।

एलिज़ाबेथ शुल के यहां आकर अपना काम शुरू करने से पहले इतना तो मालूम हो चुका था कि जीनें रंग के मूल रूप का निर्माण करती हैं, और उसे वहीं जमा कर देती हैं, क्योंकि गिनी पिग के बालों के झड़ने और नये बालों के उगने के बावजूद रंग के निशान ज़िन्दगी-भर ज्यों के त्यों रहते हैं। यह भी पता लगाया जा चुका था कि यदि किसी चित्तीदार गिनी पिग की काली खाल काटकर सफेद खाल पर और सफेद खाल काटकर काली खाल पर लगा दी जाए, तो भी काली खाल से काले और सफेद से सफेद बाल उगते रहते हैं, यद्यपि इस प्रतिरोपित खाल के हर टुकड़े के चारों तरफ विरोधी रंग के बाल उपजानेवाली खाल रहती है। इतना तो पता था कि यह होता है, लेकिन यह किन प्रक्रियाओं से संभव होता है, यह अभी तक एक रहस्य बना हुआ था, और इस रहस्य ने शीघ्र ही एलिज़ाबेथ शुल को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया।

जब यह सवाल उठा कि वह किस विषय पर काम शुरू करे और डाक्टरेट की उपाधि के लिए किस विषय पर शोध-प्रबन्ध लिखे, तो उसने रंजकता की एक समस्या पर शोध करने का निर्णय किया। उसने अपना काम डा० राइट के निर्देशन में किया। इस कार्य में उसे रॉकफैलर संस्थान की ओर से कुछ आर्थिक सहायता भी मिल गई। उसके शोध-कार्य का उद्देश्य गिनी पिग के चर्म-रंगों में कुछ जीनों के प्रभाव की ठीक-ठीक माप-तौल करना था। उसके इस शोध-कार्य को समझना सामान्य-जन के वश के बाहर की बात है, किन्तु इसमें एलिज़ाबेथ शुल को इतना काम करना पड़ा—गिनी पिग के बालों से मैलेनिन (रंगोत्पादक पदार्थ) का रासायनिक पृथक्करण; इसे तोलना; अनेक विभिन्न वर्ण-प्रगाढ़ताओंवाले सीपिया, हल्के सीपिया, लाल और पीले गिनी पिग के बालों में मौजूद मैलेनिन के परिणामों की तुलना करना; और इस प्रकार, अनेक विभिन्न जीवों के प्रभावों का निर्धारण करना जो रंजकता की स्थानीय प्रक्रिया में परस्पर मिथ:क्रियाशील (Interacting)

रहती हैं। इस अध्ययन के निष्कर्षों के आधार पर उसने जो शोध-प्रबंध प्रस्तुत किया उसपर सन् १९३७ में उसे पी-एच० डॉ० की उपाधि प्रदान की गई। इस प्रबंध को पढ़ने पर पता चलता है कि यह शोध-ग्रंथ वास्तव में सम्मान के योग्य है।

शोध-कार्य का यह लंबा सिलसिला चल ही रहा था कि एलिज़ावेथ शुल ने अपने एक सहपाठी प्राणिवैज्ञानिक-आनुवंशिकीविज्ञ से शादी कर ली। उसका शोध-प्रबंध एलिज़ावेथ शुल के शोध-प्रबन्ध से कुछ ही महीने पूर्व पूरा हुआ था, और वह वार हारवर चला गया था जहां उसकी नियुक्ति रॉस्को बी०जैक्सन मेमोरियल लैबोरेटरी में अनुसंधान-वैज्ञानिक के पद पर हो गई थी। यह संस्थान अभी नया ही था और उस समय इसकी आर्थिक स्थिति थोड़े से ही वैज्ञानिकों को नियुक्त करने योग्य थी। उन दिनों, और आज भी इस संस्थान का मुख्य उद्देश्य स्तनधारियों के आचरण और वीमारियों में आनुवंशिकता के योगदान का अध्ययन था। उन दिनों इस संस्थान के वजट में इतनी गुंजाइश नहीं थी कि डा० एलिज़ावेथ शुल रसेल को भी तनख़्वाह पर काम दे सके, लेकिन जब एलिज़ावेथ ने पी-एच० डी० कर लिया तब उसे उसी प्रयोगशाला में एक स्वतंत्र अनुसंधाता के रूप में शोध-कार्य करने की सब सुविधाएं प्रदान कर दी गईं जिसमें उसका पति साधारण वेतन पर काम कर रहा था।

जैक्सन लैबोरेटरी अर्बुदों की ग्रहणशीलता के आनुवंशिक पक्षों के अनुसंधान पर विशेष बल देती थी। वहां पहुंचने के कुछ ही दिन वाद एलिज़ावेथ रसेल को एलिज़ावेथ पैम्बरटन नर्स फेलोशिप मिल गई। उसे यह फेलोशिप अमेरिकन एसोशिएशन ऑफ यूनिवर्सिटी वीमैन ने फल-मक्खी में अर्वुद-उत्पत्ति की शरीर-क्रियात्मक आनुवंशिकी का अध्ययन करने के लिए दी थी, जीनों के बारे में मनुष्य जो कुछ जान सका है वह वहुत कुछ इसी मक्खी के अध्ययन के कारण संभव हो सका है। स्वाभाविक था कि उसने अपने अध्ययन के लिए 'मेले नॉटिक' नामक अर्वुद चुना। इस अर्वुद को यह नाम इसलिए दिया गया क्योंकि यह मैलेनिन के असा-मान्य परिमाण में जमा होने से संभव होता है।

इस फेलोशिप से मिलनेवाली १२५० डालर की रकम से वह इन अर्बुदों की दुर्दम्य अथवा अदुर्दम्य प्रवृत्ति के बारे में स्थापित कुछ परिकल्पनाओं को सिद्ध और कुछ को खंडित करने में सफल हुई। इसके अलावा उसने फल-मक्खी में होने-

वाले इन अर्बुदों की उत्पत्ति पर प्रभाव डालनेवाली कुछ जीनों के स्थान का भी पता लगाने में सफलता प्राप्त की। इस शोध-कार्य के पूरे होने व प्रकाशन-योग्य होने के बीच के समय में एलिज़ाबेथ रसेल की रुचि चूहों के चर्म के रंग में हो चुकी थी। इसके अलावा वह जैक्सन लैबोरेटरी में अनुसंधान के लिए पलनेवाले चूहों के विभिन्न अंतःप्रजात प्रभेदों (Inbred strains) की दूसरी विशेषताओं के अध्ययन में भी रुचि लेने लगी थी। लेकिन उन दिनों उसके सामने इससे भी कहीं अधिक ज़रूरी एक और काम आ पड़ा था—स्वयं अपने परिवार का लालन-पालन। सन् १९४०–४६ के अरसे में वह तीन लड़कों और एक लड़की को जन्म दे चुकी थी, और इस अरसे में प्रयोगशाला के लिए वह बहुत कम समय निकाल सकी थी। फिर भी एक स्वतन्त्र अनुसंधाता के रूप में वह यत्किंचित वैज्ञानिक शोध-कार्य करती ही रही, और अपने चौथे और अंतिम बच्चे के जन्म के बाद फिनलो हॉविल रिसर्च फेलोशिप की ओर से मिलनेवाली २५०० डालर की रकम की सहायता से सन् १९४७ में उसने उत्परिवर्ती (Mutant) चूहों के ३६ विभिन्न प्रकारों की रंजकता-कणिकाओं का अपना व्यापक अध्ययन-कार्य पूरा कर लिया। इस अध्ययन के दौरान रंजकता की प्रक्रियाओं पर कुछ जीनों के प्रभाव का अपेक्षाकृत स्पष्ट चित्र उभरकर उसके सामने आया।

तब उसे लगातार दो महान विभीषिकाओं का सामना करना पड़ा—एक पारिवारिक संकट, जिसके कारण छोटे-छोटे चार बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा करने के लिए वह अकेली रह गई, और दूसरी माउंट डेज़र्ट का दावानल जिसने रोस्को बी० जैक्सन मेमोरियल लैबोरेटरी को बिलकुल नेस्तोनाबूद कर दिया। इस समय इस लैबोरेटरी में वेतन-भोगी अनुसंधान-सहयोगी के पद पर उसकी नियुक्ति हुई थी। सन् १९४७ के इस भयंकर अग्निकांड में सब कुछ जलकर नष्ट हो गया, सिर्फ वे कुछ उपकरण और उस समय चल रहे अनुसंधान-कार्य के वे रिकार्ड बच सके जो लैबोरेटरी के कर्मचारियों के घरों में थे।

लैबोरेटरी को सबसे बड़ी क्षति अपने जीवों के जल जाने से पहुंची। एक भी चूहा नहीं बचा: ९०००० चूहे आग में जल मरे। इनमें से अधिकांश चूहे मानकित (Standerdized) प्रभेदों के थे। जिनकी अधिकांश वंशावली सावधानीपूर्वक सुरक्षित रखी गई थी। इस अग्निकांड से उन दूसरे सैकड़ों संस्थानों को भी अपार क्षति पहुंची जहांकि चूहों और मनुष्यों में पाई जानेवाली अनेक समानताओं के

कारण इन चूहों का प्रयोग आयुर्विज्ञान-अनुसंधान (Medical research) के लिए किया जा रहा था। चूहे स्तनधारी जीव हैं जो मनुष्यों की भांति अपने बच्चों को दूध पिलाते हैं। वे कशेरुकी (Vertebrate) जीव हैं जिनकी अस्थि-संरचना बहुत कुछ मनुष्यों जैसी होती है। उनका रक्त गरम होता है और लाल रुधिर कोशाणु भी मनुष्यों जैसे ही होते हैं; उनके अंतःस्रावी तन्त्र मानवीय तंत्रों जैसी ही क्रियाएं करते हैं। इन सब समानताओं के कारण वैज्ञानिकों के लिए अनुसंधान की दृष्टि से चूहों का बहुत अधिक महत्त्व है।

इसके अलावा कुछ ऐसी बीमारियां हैं जिनके प्रति ये नन्हे जीव और मनुष्य समान रूप से ग्रहणशील हैं, मनुष्यों की ही भांति ये भी इन बीमारियों के प्रति अपनी ग्रहणशीलता या कड़ा प्रतिरोध अपने बच्चों, और उनके भी बच्चों, को विरासत में दे जाते हैं। जैक्सन लैबोरेटरी घरों में पाए जानेवाले चूहों के अंतः-प्रजात प्रभेदों को उत्पन्न करके विज्ञान के क्षेत्र में विशेष योगदान दे रही थी। इन प्रभेदों में से प्रत्येक चूहे में कैंसर, रक्तक्षीणता, अत्यधिक स्थूलता, या अन्य ऐसी कोई बीमारी पैदा कर दी जाती थी जो प्रयोगशाला के वैज्ञानिक चाहते थे। प्रयोगशाला में स्थित सभी प्रभेदों का हर चूहा अपने दूसरे सैकड़ों भाई-बहनों से मिलता-जुलता था, जैसे समरूप जुड़वां (Identical Twins) होते हैं। संसार के अनेक भागों में अनेक वैज्ञानिक पहलेवाले चूहे के समरूप जुड़वां मंगाने के लिए जैक्सन लैबोरेटरी पर ही निर्भर रहते थे। वे जानते थे कि लैबोरेटरी से उन्हें ऐसे चूहे मिल सकते हैं जो उन चूहों के समरूप हैं जिनसे उन्होंने अपना अनुसंधान प्रारंभ किया है। और अचानक, चन्द घण्टों के भीतर ही, इस लैबोरेटरी में यत्नपूर्वक रक्षित, वंशावली-सहित, विधिवत लेबिल लगे चूहों में से एक भी नहीं बचा। अब ऐसे चूहे कहां से मंगाएं—संसार के सभी भागों में इस अपार क्षति को महसूस किया गया।

नई लैबोरेटरी की इमारत बनने से भी पहले लैबोरेटरी के इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग के पुनर्निर्माण की शुरुआत की गई और यह काम एलिज़ावेथ रसेल को सौंपा गया। संसार के विभिन्न भागों में स्थित शोध-केन्द्रों से वंशावली-युक्त, लेबिल-सहित चूहे बार हारबर वापस आने लगे ताकि जैक्सन लैबोरेटरी का पुनर्निर्माण हो सके। सौभाग्य से चूहे जल्दी ही, और तेजी से, पैदा होते हैं—गर्भाधान के सिर्फ १९ दिन बाद चूहे पैदा हो जाते हैं। एक साल की उम्र तक एक

चुहिया प्रायः आठ बार, और एक बार में कई-कई बच्चे दे देती है। लेकिन अंतः-प्रजात प्रभेदों का पुनर्निर्माण ऐसे चूहों की कमी के कारण बहुत छोटे पैमाने पर शुरू करना पड़ा, और इतने बड़े पैमाने पर इन चूहों का उत्पादन करने में एक वर्ष से भी अधिक का समय लग गया कि इन्हें अनुसंधान-कार्य के लिए भेजा जा सके। हां, सन् १९५० के अंत तक लैबोरेटरी में अंतःप्रजात चूहों की संख्या आग से पहले की संख्या से भी अधिक हो गई।

डा० एलिज़ाबेथ रसेल ने इस दिशा में आग के बाद के दस वर्षों में जो काम किया और जिसे वह सामान्यतः विज्ञान के क्षेत्र में सेवा-कार्य समझती है, और अपने निजी वैज्ञानिक कार्य से बाहर की चीज़ मानती है, उसका कुछ अन्दाज़ इन कुछ आंकड़ों से लगाया जा सकता है : सन् १९५७ में जैक्सन लैबोरेटरी में ३,००० चूहे प्रतिदिन उत्पन्न किए जाते थे—हर चूहे की आनुवंशिकता का पता लगाकर उसका विस्तृत रिकार्ड रखा जाता था; ६७ विभिन्न प्रभेद थे, इनमें से २८ अंतःप्रजात प्रभेद थे; हर प्रभेद के चूहे मानकित और समरूप थे; हर सप्ताह ७,५०० और इस प्रकार, प्रतिवर्ष लगभग ४,००,००० चूहे लैबोरेटरी से बाहर भेजे जाते थे। इनमें से बहुत-से चूहे केनिया से लेकर कोरिया और दक्षिण अर्जेण्टाइना से लेकर उत्तर यूरोप के २२ देशों की छः सौ प्रयोगशालाओं में हवाई जहाज़ द्वारा भेजे जाते थे। बार हारबर-स्थित इस लैबोरेटरी में चूहों की आबादी लगभग दस लाख थी, और इन चूहों की इतनी अधिक मांग थी कि इस आबादी को दुगुना कर देने की तैयारी की जा रही थी।

डा० रसेल यह सब काम कर ज़रूर रही थी किन्तु मूलतः वह शरीर-क्रियात्मक आनुवंशिकीविज्ञ थी और जैसे ही नई इमारत में जगह मिली, उसने अपनी खोज नये सिरे से शुरू कर दी, जिसका उद्देश्य उन शरीर-क्रियात्मक प्रक्रियाओं पर प्रकाश डालना था जिनसे गुज़रकर जीनें अपना प्रभाव डालती हैं। उसने रंजकता पर नये सिरे से शोध-कार्य प्रारम्भ किया। इनमें से कुछ खोजों में डा० विल्लीस के० सिल्वर्ज़ नामक एक युवा शरीर क्रियात्मक आनुवंशिकीविज्ञ ने उसका साथ दिया। इन खोजों में चूहों के भ्रूण की एक विशेष रंग के बाल उगानेवाली खाल एक ऐसे नवजाति चूहे को लगा दी गई जिसकी खाल से एक दूसरे ही रंग के बाल पैदा होते थे। तब यह देखा गया कि रंग पैदा करनेवाले 'ट्रिगरिंग मेकेनिज़्म' रंजकता उत्पादक कोशाणुओं में नहीं बल्कि बालों के कूपों (Follicle) में काम

करते हैं। इस खोज से जीनों की क्रिया पर नया प्रकाश पड़ा।

चूंकि चर्म की रंजकता को प्रभावित करनेवाली कुछ जीनें रुधिर की रचना और जनन-कोशिकाओं की वृद्धि को भी प्रभावित करती हैं, इसलिए स्वाभाविक था कि डा० रसेल का ध्यान आनुवंशिक रक्तक्षीणता, और चूहों की अनुर्वरता पर गया। सामान्य चूहों का रुधिर बनानेवाला ऊतक (Tissue) ऐसे चूहे को लगा दिया गया जिसमें रक्तक्षीणता का रोग उत्पन्न किया गया था। इस प्रकार पता चला कि रक्तक्षीणता उत्पन्न करनेवाली जीनों का प्रत्यक्ष प्रभाव शरीर के अन्य भागों के कोशाणुओं पर न पड़कर रुधिर बनानेवाले कोशाणुओं पर पड़ता है। डा० रसेल ने यह खोज डा० कर्ट आर्टमन के सहयोग में की थी। अब उसने एक और खोज की जिसने लगभग सौ वर्षों से वैज्ञानिकों में अनुर्वरता की एक समस्या को लेकर चले आ रहे विवाद को प्रायः अंतिम रूप से निबटा दिया। यह खोज उसने एक भ्रूण वैज्ञानिक डा० बीट्रिस मिंट्स के सहयोग में की थी। यह समस्या इतनी अधिक वैज्ञानिक है कि इसके बारे में खुलासा तौर पर यहां नहीं लिखा जा सकता, मगर इसका सम्बन्ध उन जनन-कोशिकाओं के जन्म-स्थान और संक्रमण-मार्ग से है जो सामान्य भ्रूण के आरम्भिक दिनों में तो संख्या में बड़ी तेजी से बढ़ती हैं, किन्तु दोषयुक्त भ्रूणों में इनकी संख्या-वृद्धि नहीं होती।

आज भी साधारणजन को सबसे अधिक आनन्द डा० रसेल के उस काम में आता है जो उसने पेशियों के दुष्पोषण (Dystrophy) के क्षेत्र में किया। गर्मियों की छुट्टियों में जैक्सन लैबोरेटरी प्रतिवर्ष अपरेंटिसों के दो वर्गों को दाखिल करती है। पहला वर्ग कॉलेज के विद्यार्थियों का होता है और दूसरा कॉलेज-पूर्व छात्रों का। इन अपरेंटिसों को विज्ञान और उसकी तकनीकों में प्रशिक्षित किया जाता है। चूंकि डा० रसेल को अध्यापन में विशेष आनन्द आता है, इसलिए प्रतिवर्ष गर्मियों की छुट्टियों में वह इन लोगों के प्रशिक्षण-कार्य में भाग लेती है। ऐसे ही एक वर्ष गर्मियों की छुट्टियों में उसने 'फनीफुट' की खोज की। यह एक ऐसा जीव है जो आनुवंशिक पेशी-दुष्पोषण का ठीक उसी प्रकार शिकार होता है, जैसे मनुष्य। इस प्रकार, पहली बार एक ऐसा जीव खोज निकाला गया जिसपर इस दिशा में परीक्षण किए जा सकते थे।

सन् १९५१ में वह इन अपरेंटिसों के साथ गर्मियों की छुट्टियां बिता रही थी कि एक दिन उसकी नज़र चूहे के एक बार में उत्पन्न हुए कई बच्चों पर पड़ी।

उसने गौर किया कि उनमें से एक बच्चा अपना पांव घसीटकर चल रहा था—स्वाभाविक था कि उसे देखते ही डा० रसेल के मुंह से 'फनीफुट' निकल पड़ा। आनुवंशिकीविज्ञ बराबर ऐसे जीवों की खोज में रहते हैं जो अपने सहजात जीवों से किसी कदर भिन्न हों, लेकिन जब उन्हें ऐसा कोई जीव मिलता है तो अधिकतर उसकी भिन्नता का कारण संभवतः पर्यावरण का विक्षोभ (अल्प पोषक आहार या शरीर-तंत्र की कोई क्षति जो वैज्ञानिक शब्दावली में 'बॉक्स-टॉप डैविएंट्स' को जन्म देती है, या किसी अन्य रोग को) होता है। ऐसा बहुत ही कम होता है कि कोई जीन अपना सही अनुकरण न कर पाए और एक नई तरह के, या उत्परिवर्ती जीव को जन्म दे जो इस भिन्नता या परिवर्तन को आनुवंशिक रूप से अपने बच्चों में संचरित कर दे। आनुवंशिकीविज्ञ यह नहीं जानते कि यह 'क्यों' और 'कैसे' होता है, मगर वे इतना जानते हैं कि उत्परिवर्ती जीव जीन के सिर्फ एक जोड़े में होनेवाले परिवर्तन के कारण उत्पन्न होते हैं, जबकि ऐसे जीव जो किसी विशेष बीमारी (या ग्रहणशीलता) का शिकार बनने के लिए पाले जाते हैं उन जीनों के संयोग से उत्पन्न होते हैं जो आनुवंशिक प्रवृत्ति को जन्म देती हैं। इसलिए जब आनुवंशिकीविज्ञों की दृष्टि में कोई उत्परिवर्ती जीव आ जाता है तब वे उसका अध्ययन करके उत्परिवर्तन (Mutation) की प्रवृत्ति और परिणामों के बारे में अधिक से अधिक जान लेने की कोशिश करते हैं।

उस वर्ष गर्मियों की छुट्टियों में जब फनीफुट का अभ्युदय हुआ तो डा० रसेल ने अपनी एक एप्रेंटिस और स्मिथ कॉलेज की छात्रा ऐन माइकलसन को यह पता लगाने का भार सौंपा कि इस चूहे में यह विकार क्यों आया। बाद में देखा गया कि उस प्रभेद में जन्म लेनेवाले हर तीसरे-चौथे बच्चे में यह विकार मौजूद है। जल्दी ही वे इस नतीजे पर पहुंचे कि फनीफुट में आए इस विकार का आधार निश्चित रूप से आनुवंशिक है। डा० रसेल के निर्देशन में मिस माइकलसन ने पहले तो यह निश्चय किया कि इन चूहों में स्नायविक विकार तो नहीं है। परीक्षण करने पर पता चला कि ऐसा नहीं है। लैबोरेटरी के अन्य विशेषज्ञों की सहायता से उसने इन चूहों के न्यूरोएनाटॉमिकल व रोग-विज्ञान-सम्बन्धी परीक्षण भी किए, और स्मिथ कॉलेज में अपने सीनियर ईयर का अध्ययन पूर्ण कर लिया। इस अध्ययन का निष्कर्ष यह निकला कि फनीफुट एक आनुवंशिक पेशीगत रोग का शिकार है, और उसका यह रोग मनुष्यों को पंगु बना देनेवाले दुष्पोषण से

वहुत अधिक समानता रखता है।

यह सिद्ध होते ही कि फनीफुट के विकार और मानवों के पेशीगत दुष्पोषण में समानता है, इस रोग पर अनुसंधान करनेवाले वैज्ञानिकों ने फनीफुट और उसके सहजात सामान्य बच्चों की मांग शुरू कर दी। लेकिन दुर्भाग्य से फनीफुट की वहुत कमी थी। एक तो फनीफुट जल्दी ही मर जाते थे (फनीफुट एक से छः महीने तक का होकर मर जाता था, जबकि उसके सामान्य सहजात डेढ़ से दो वर्ष तक जीते थे), दूसरे उनमें प्रजनन-क्षमता नहीं थी। यह समस्या फनीफुट चुहियों की वच्चेदानी सामान्य चुहियों में लगाकर दूर की गई। ऐसा करने से सामान्य चुहियों से उत्पन्न बच्चों में फनीफुट की संख्या अनुपातत: काफी बढ़ गई। आज-कल, आयुर्विज्ञान शोध-केन्द्रों में इन जीवों का प्रयोग हो रहा है, और इन प्रयोगों से इस बीमारी को भली भांति समझ लेने की आशा तो है ही, इस बात की भी आशा है कि एक दिन इस रोग का उपचार ढूंढ लिया जाएगा। डा० रसेल पर विभिन्न शोध-संस्थानों में इन जीवों के भेजने की जिम्मेदारी तो थी ही, साथ ही वह यह भी पता लगा लेना चाहती थी कि जीनें इस बीमारी को संचरित कैसे करती हैं। जैक्सन लैबोरेटरी में जो अनुसंधान-कार्य हुआ, और जिसमें उसने स्वयं एक प्रमुख भूमिका निभाई, उससे पता चलता है कि पेशीगत दुष्पोषण अप्रवल (Recessive) जीनों के एक जोड़े के प्रभाव के कारण जनक से जन्य में संचरित होता है।

सन् १९५४ में वार हारबर-स्थित इस लैबोरेटरी ने अपना पच्चीसवां वार्षिकोत्सव मनाया, उस समय डा० रसेल इस लैबोरेटरी के विज्ञान-निदेशक के पद पर थी, और उसने 'पिछले पच्चीस वर्षों में स्तनधारी-आनुवंशिकी और कैंसर के क्षेत्र में हुई प्रगति' विषय पर एक परिसंवाद का आयोजन किया। आनु-वंशिकी तथा इससे संबद्ध अन्य वैज्ञानिक विषयों में रुचि रखनेवाले २०० से भी अधिक वैज्ञानिकों ने इसमें भाग लिया, उनमें से बहुतों ने निबन्ध भी पढ़े जिन्हें आगे चलकर डा० रसेल ने सम्पादित किया। इस परिसंवाद से उसकी यह इच्छा और भी बलवती हो उठी कि स्तनधारियों की शरीर-क्रियात्मक आनुवंशिकी से संबद्ध सारी सामग्री किसी एक व्यापक ग्रंथ में संकलित होनी चाहिए। सितम्बर सन् १९५८ में जगनहीम फेलोशिप से मिलनेवाली सहायता से उसकी यह साध पूरी हुई।

इस तरह के काम को हाथ में लेनेवाले वैज्ञानिक को, अपनी प्रयोगशाला के

अतिरिक्त, दूसरी प्रयोगशालाओं में क्या कुछ हो रहा है, किन विचारों और तकनीकों को अपनाया जा रहा है—इस बात का भी पता लग जाता है। इससे उसे अपना भावी शोध-कार्यक्रम निर्धारित करने में सुविधा रहती है, जब डॉ० रसेल का यह नया काम पूरा हो जाएगा तो यह उसके अपने निजी प्रयोजन के लिए भी लाभप्रद सिद्ध होगा। इसकी सहायता से जैक्सन लैबोरेटरी में इस क्षेत्र में स्नातक शोधकर्ताओं के लिए एक कोर्स निर्धारित किया जा सकेगा; लेकिन इसका प्रभाव बहुत दूरगामी होगा। उसने अपने क्षेत्र के बाहर के जिन जीव-रसायनज्ञों और दूसरे वैज्ञानिकों से सहयोग लिया है, उनके सम्पर्क में आकर वह इस नतीजे पर पहुंची है कि मानवीय चिकित्सा-समस्याओं के समाधान में स्तनधारियों की शरीरक्रियात्मक आनुवंशिकी का अध्ययन बहुत कुछ योगदान दे सकता है।

एलिजाबेथ रसेल ने एक आनुवंशिकीविज्ञ के रूप में अभी आधा काम ही किया है; अभी लगभग चौथाई सदी का सक्रिय जीवन उसके सामने है। उसका नाम सुप्रसिद्ध है और उसके काम का आदर उसके पूर्ववर्ती शीर्षस्थ सहकर्मी भी करते हैं। बैठकों में निबन्ध पढ़ने और वाद-विवाद में भाग लेने के लिए उसे प्रायः निमंत्रित किया जाता है, और इन बैठकों में मौलिक विचार प्रकट करने के लिए वह विख्यात है। वह अमरीकी विज्ञान और कला अकादमी की सदस्या है। यह सम्मान कुछ गिनी-चुनी महिला वैज्ञानिकों को ही नसीब है। वह बर्कले और शुल परिवारों की सन्तान है और अमरीका की वैज्ञानिक प्रगति में सहयोग देने की अपनी वंश-परम्परा को सफलतापूर्वक निभा रही है। फिर भी, जब उससे पूछा जाता है कि आपके विषय-निर्वाचन में आपकी जीनों का कितना योग है, तो वह ज़ोर देकर कहती है, "ध्यान देने की बात है कि वैज्ञानिक मां-बाप की सन्तान अक्षर-ज्ञान से भी पहले यह सीखती है कि विज्ञान एक नितान्त मनोरंजक विषय है, और इस बात का उसके विषय-निर्वाचन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।"

राशेल फुलर ब्राउन

जब राशेल ब्राउन अपने विगत जीवन पर दृष्टिपात करती है तो इस बात पर उसे हमेशा आश्चर्य होता है कि वह कॉलेज में पढ़ कैसे पाई ? उसने एक ऐसे परिवार में जन्म लिया था जिसकी इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि उसकी शिक्षा पर व्यय करने के लिए पैसे जुटा पाता। जब वह छोटी थी तभी उसकी मां अपने दो बच्चों का पालन-पोषण करने के लिए अकेली छोड़ दी गई, और जल्दी ही यह प्रकट हो गया था कि वह अपनी बेटी राशेल और उसके छोटे भाई की कॉलेज की पढ़ाई का व्यय वहन नहीं कर सकेगी। फिर भी, मिसेज़ ब्राउन अपने बच्चों के भविष्य के बारे में बहुत महत्त्वाकांक्षी थीं और जिन दिनों राशेल ब्राउन हाई स्कूल से ग्रेजुएट हो रही थी उन दिनों वे जी-जान से अपनी बेटी के प्रयत्नों को सफल बनाने की कोशिश में लगी हुई थीं। राशेल प्रयत्न कर रही थी कि किसी ऋण, छात्रवृत्ति, पार्ट टाइम काम, या और किसी तरीके से वह माउण्ट होलयोक में अध्ययन कर सके। अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होने पर उसे एक छात्रवृत्ति मिल गई, इससे उसे सुविधा हुई। तब राशेल की पढ़ाई का उत्तम रिकार्ड देखकर, और कॉलेज में अध्ययन करने के उसके प्रयत्नों एवं दृढ़ निश्चय से प्रभावित होकर, मिसेज़ ब्राउन की मां की एक धनी सहेली ने राशेल की कॉलेज-शिक्षा की पूरी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। इस भद्र महिला ने राशेल की शिक्षा पर व्यय करने में इतनी अधिक उदारता से काम लिया कि राशेल माउंट होलयोक में पढ़नेवाले अपने सहपाठियों से कम संपन्न या सन्तुष्ट नहीं नज़र आती थी। उसे किसी चीज़ की कमी नहीं थी—बल्कि वह अपने अनेक सहपाठियों से अधिक सम्पन्न थी।

डा० ब्राउन को यह सब एक चमत्कार-सा लगता है, जैसे किसी करुणार्द्र देवी ने अपनी छड़ी घुमाई हो और उसके घुमाते ही उसके सिर पर पैसे की बौछार हो गई हो जिससे वह कॉलेज की पढ़ाई पूरी कर सकी, मगर इससे भी बड़ा अजूबा

अतिरिक्त, दूसरी प्रयोगशालाओं में क्या कुछ हो रहा है, किन विचारों और तकनीकों को अपनाया जा रहा है—इस बात का भी पता लग जाता है। इससे उसे अपना भावी शोध-कार्यक्रम निर्धारित करने में सुविधा रहती है, जब डॉ० रसेल का यह नया काम पूरा हो जाएगा तो यह उसके अपने निजी प्रयोजन के लिए भी लाभप्रद सिद्ध होगा। इसकी सहायता से जैक्सन लैबोरेटरी में इस क्षेत्र में स्नातक शोधकर्ताओं के लिए एक कोर्स निर्धारित किया जा सकेगा; लेकिन इसका प्रभाव बहुत दूरगामी होगा। उसने अपने क्षेत्र के बाहर के जिन जीव-रसायनज्ञों और दूसरे वैज्ञानिकों से सहयोग लिया है, उनके सम्पर्क में आकर वह इस नतीजे पर पहुंची है कि मानवीय चिकित्सा-समस्याओं के समाधान में स्तनधारियों की शरीरक्रियात्मक आनुवंशिकी का अध्ययन बहुत कुछ योगदान दे सकता है।

एलिज़ाबेथ रसेल ने एक आनुवंशिकीविज्ञ के रूप में अभी आधा काम ही किया है; अभी लगभग चौथाई सदी का सक्रिय जीवन उसके सामने है। उसका नाम सुप्रसिद्ध है और उसके काम का आदर उसके पूर्ववर्ती शीर्षस्थ सहकर्मी भी करते हैं। बैठकों में निबन्ध पढ़ने और वाद-विवाद में भाग लेने के लिए उसे प्रायः निमंत्रित किया जाता है, और इन बैठकों में मौलिक विचार प्रकट करने के लिए वह विख्यात है। वह अमरीकी विज्ञान और कला अकादमी की सदस्या है। यह सम्मान कुछ गिनी-चुनी महिला वैज्ञानिकों को ही नसीब है। वह बर्कले और शुल परिवारों की सन्तान है और अमरीका की वैज्ञानिक प्रगति में सहयोग देने की अपनी वंश-परम्परा को सफलतापूर्वक निभा रही है। फिर भी, जब उससे पूछा जाता है कि आपके विषय-निर्वाचन में आपकी जीनों का कितना योग है, तो वह ज़ोर देकर कहती है, "ध्यान देने की बात है कि वैज्ञानिक मां-बाप की सन्तान अक्षर-ज्ञान से भी पहले यह सीखती है कि विज्ञान एक नितान्त मनोरंजक विषय है, और इस बात का उसके विषय-निर्वाचन पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।"

राशेल फुलर ब्राउन

जब राशेल ब्राउन अपने विगत जीवन पर दृष्टिपात करती है तो इस बात पर उसे हमेशा आश्चर्य होता है कि वह कॉलेज में पढ़ कैसे पाई ? उसने एक ऐसे परिवार में जन्म लिया था जिसकी इतनी सामर्थ्य नहीं थी कि उसकी शिक्षा पर व्यय करने के लिए पैसे जुटा पाता। जब वह छोटी थी तभी उसकी मां अपने दो बच्चों का पालन-पोषण करने के लिए अकेली छोड़ दी गई, और जल्दी ही यह प्रकट हो गया था कि वह अपनी बेटी राशेल और उसके छोटे भाई की कॉलेज की पढ़ाई का व्यय वहन नहीं कर सकेगी। फिर भी, मिसेज ब्राउन अपने बच्चों के भविष्य के बारे में बहुत महत्त्वाकांक्षी थीं और जिन दिनों राशेल ब्राउन हाई स्कूल से ग्रेजुएट हो रही थी उन दिनों वे जी-जान से अपनी बेटी के प्रयत्नों को सफल बनाने की कोशिश में लगी हुई थीं। राशेल प्रयत्न कर रही थी कि किसी ऋण, छात्रवृत्ति, पार्ट टाइम काम, या और किसी तरीके से वह माउण्ट होलयोक में अध्ययन कर सके। अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होने पर उसे एक छात्रवृत्ति मिल गई, इससे उसे सुविधा हुई। तब राशेल की पढ़ाई का उत्तम रिकार्ड देखकर, और कॉलेज में अध्ययन करने के उसके प्रयत्नों एवं दृढ़ निश्चय से प्रभावित होकर, मिसेज ब्राउन की मां की एक धनी सहेली ने राशेल की कॉलेज-शिक्षा की पूरी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। इस भद्र महिला ने राशेल की शिक्षा पर व्यय करने में इतनी अधिक उदारता से काम लिया कि राशेल माउंट होलयोक में पढ़नेवाले अपने सहपाठियों से कम संपन्न या सन्तुष्ट नहीं नज़र आती थी। उसे किसी चीज़ की कमी नहीं थी—बल्कि वह अपने अनेक सहपाठियों से अधिक सम्पन्न थी।

डा० ब्राउन को यह सब एक चमत्कार-सा लगता है, जैसे किसी करुणार्द्र देवी ने अपनी छड़ी घुमाई हो और उसके घुमाते ही उसके सिर पर पैसे की बौछार हो गई हो जिससे वह कॉलेज की पढ़ाई पूरी कर सकी, मगर इससे भी बड़ा अजूबा

यह है कि एक दिन वह स्वयं अनेक सिरों पर धन बरसानेवाली छड़ी घुमानेवाली जादूगरनी बन सकी। "मैं कभी इस स्थिति को प्राप्त कर सकूंगी, इसका स्वप्न भी नहीं देखा था," उसका कहना है। उसका यह कथन वास्तव में सही है। अमरीका में राजकीय स्वास्थ्य विभाग में सिविल सर्विस का यह पद स्वीकार करने और उसी-पर बने रहनेवाला विज्ञान का ग्रेजुएट कभी सम्पन्न या खुशहाल नहीं हो सकता। डा० ब्राउन के जीवन को देखने पर ऐसा लगता है जैसे दौलत उसके लिए इतनी नगण्य चीज़ थी कि जब उसने उसके दरवाज़े पर दस्तक दी तो डा० ब्राउन ने दरवाज़ा खोलकर उससे 'बैठ जाने' के लिए भी नहीं कहा।

यह अवसर तब आया जब डा० ब्राउन ने एक नये प्रकार के प्रतिजीवाणु (Antibiotic) का अनुसंधान किया। यह नया प्रतिजीवाणु मनुष्यों के लिए इतना अधिक उपादेय था कि इसका अनुसंधाता मालामाल हो सकता था। इस अनुसंधान के समय वह पचास वर्ष की हो चुकी थी और पिछले पचीस वर्षों से अपनी तथा दूसरों की आर्थिक और दूसरी तरह की भारी ज़िम्मेदारियां निभाती चली आ रही थी। उसकी तनख्वाह सिविल सर्विस के काफी निचले वेतनमान से शुरू हुई थी, मगर अब काफी ऊपर आ चुकी थी, फिर भी यह वह ज़माना था जबकि सिविल सर्विस में नियत सबसे अधिक वेतन पानेवाले वैज्ञानिक भी कम वेतन पानेवाले सरकारी कर्मचारी माने जाते थे। फिर भी वह अपनी तनख्वाह से सन्तुष्ट थी और सुखपूर्वक रहती थी। जब यह अनुसंधान हुआ तो उसे महसूस हुआ कि उसे अपने लिए और पैसा नहीं चाहिए।

राशेल ब्राउन का दृष्टिकोण यह है कि "यदि तुम्हारे पास पर्याप्त है तो तुम्हें और अधिक की इच्छा क्यों हो?" भली भांति समझ-बूझकर और अपने मित्रों और परिचितों के परामर्श का विरोध करते हुए उसने यह फैसला किया कि नाइस्टाटिन को पेटेण्ट कराने के अधिकारों से प्राप्त रायल्टी में से वह अपने लिए एक भी पैसा नहीं लेगी। वह नाइस्टाटिन की सह-अनुसंधाता थी, दूसरी सह-अनु-संधाता एलिज़ाबेथ हाज़ेन थी, उसने भी रायल्टी से प्राप्त रक़म न लेने का फैसला किया।

इसका मतलब यह नहीं कि डा० ब्राउन या डा० हाज़ेन ने इस विषय में लापरवाही बरती कि नाइस्टाटिन के उत्पादन से होनेवाले उस मुनाफे का क्या हो जो सामान्यतया इस प्रकार की भेषजीय वस्तुओं के अनुसंधाता और पेटेंट

अधिकारों के मालिक के हिस्से में आता है। उन्होंने इस अनुसंधान को पेटेंट कराने, रायल्टी के आधार पर फार्मेस्युटिकल कम्पनियों को नाइस्टाटिन का उत्पादन करने का लाइसेंस देने, व रायल्टी से प्राप्त धनराशि को विज्ञान की सम्यक् प्रगति के लिए खर्च करने का काम रिसर्च कारपोरेशन को सौंप दिया। इस प्रकार के काम के लिए रिसर्च कारपोरेशन की सहायता लेने में कोई विचित्रता नहीं थी। इस कारपोरेशन की स्थापना सन् १९१२ में हुई थी, जबकि फ्रेडरिक जी० कौटरेल ने लाखों डालर मूल्य के पेटेंट अधिकार इसे भेंट कर दिए थे। तब से आज तक इस कारपोरेशन ने सैकड़ों वैज्ञानिकों और आविष्कारकों के व्यक्तिगत पेटेंट अधिकारों की व्यवस्था की है, साथ ही इसने उन आविष्कारों के पेटेंट अधिकारों की व्यवस्था भी की है जिनके आविष्कारक किन्हीं शिक्षण-संस्थानों के कर्मचारी थे और जो उन संस्थानों की संपत्ति बन गए हैं। फिर भी, जब किसी अनुसंधान या आविष्कार के पेटेंट अधिकार कोई वैज्ञानिक खुद अपने पास रख लेता है. तो उसे रायल्टी से प्राप्त धनराशि में एक निश्चित भाग दिया जाता है। यद्यपि कभी-कभी यह प्रतिशत बहुत कम होता है। हाज़ेन-ब्राउन ने नाइस्टाटिन के पेटेंट अधिकारों से प्राप्त होनेवाली रायल्टी में से अपना भाग लेने से इनकार कर दिया।

राशेल ब्राउन की कहानी अमरीकी सफलता की ऐसी कहानी है जिससे मानवों के गुणों पर प्रकाश पड़ता है और मानव-जाति की संभावनाओं के बारे में आशा बंधती है। उसका जन्म स्प्रिंगफील्ड, मैसाचुसेट्स में हुआ। उसके पिता का व्यवसाय वैब्स्टर ग्रोव्स में था। उसकी आरम्भिक शिक्षा-दीक्षा यहीं हुई थी। प्रथम ग्रेड से लेकर ग्रामर स्कूल तक के विद्यार्थी-जीवन में वह अपने अन्य सह-पाठियों जैसी ही थी, और उसमें किसी असाधारण प्रतिभा के दर्शन नहीं हुए थे। उसे व उसके कुछ और नन्हे सहपाठियों को एक भूतपूर्व प्रिंसिपल के संपर्क में आने का अवसर मिला। इन महाशय का नाम मि० ओंडरडोंक था और ये एल्बानी, न्यूयार्क, से रिटायर होकर वैब्स्टर ग्रोव्स में बस गए थे। मि० ओंडरडोंक के पास एक सूक्ष्मदर्शी था और विज्ञान तथा नन्हे-मुन्नों में उनकी विशेष रुचि थी। अन्य अनगिनत बच्चों की भांति राशेल खटमलों में रुचि लेने लगी। वैब्स्टर ग्रोव्स में या उसके आस-पास पाए जानेवाले सभी प्रकार के खटमलों में उसकी दिलचस्पी हो गई। उसने इन खटमलों का एक संग्रह तैयार किया, और मि० ओंडरडोंक ने

उसे यह सिखाया कि उन्हें सूक्ष्मदर्शी-स्लाइड पर कैसे लगाया जाता है। उन्होंने उसे अपने पास से सायनाइड की एक बोतल भी दी, और उसे बताया कि अपने नमूनों पर प्रयोग करते हुए "इसे सूंघना मत।" इस काम में उसे बड़ा मजा आया, और प्रो० ओंडरडोंक के सूक्ष्मदर्शी के तले की तरह-तरह की चीज़ें देखने में भी उसे बड़ा आनन्द आता था। मगर यह अनुभव बच्चे का खिलवाड़ था और समय के लिए उसकी बाल-बुद्धि को विज्ञान की तरफ मोड़ने के अलावा उसके मस्तिष्क पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ सका।

इसके बाद वह अपनी मां और भाई के साथ स्प्रिंगफील्ड वापस चली आई और सैंट्रल हाई में फ्रैशमैन क्लास में दाखिला ले लिया। उसकी सभी विषयों में समान रुचि थी और किसी एक विषय-विशेष की ओर उसका अधिक रुझान नहीं था। सामान्य विज्ञान के एक सीमेस्टर्स कोर्स (अर्धवार्षिक पाठ्यक्रम) के अलावा उसके पास रसायन या भौतिकी विषय नहीं थे, यद्यपि उसे घर पर रसायन के कुछ प्रयोग करने में बड़ा मजा आता था जो वह अपने एक सम्बन्धी से उपहारस्वरूप प्राप्त बंसन बर्नर की सहायता से करती थी। जब माउंट होलयोक में विषय चुनने का अवसर आया तो उसने अपने प्रमुख विषय के रूप में इतिहास को चुना।

लेकिन, कुछ ही दिन बाद, कुछ ऐसा हुआ कि राशेल ब्राउन ने अपना विचार बदल दिया और एक प्रमुख विषय और ले लिया। उसने महसूस किया कि रसायन में उसकी रुचि बढ़ती जा रही है, और वह उसमें इतिहास से अधिक नहीं तो उसके बराबर ही आनन्द लेने लगी है। निश्चय ही "यह मुझे पसन्द था, भले इस पसन्द का कारण क्या था, यह बताना मेरे लिए आज भी कठिन है, हो सकता है कि मैं रसायन को उसके व्यवस्थित पैटर्न और सुतथ्यता (Precision) के कारण पसन्द करने लगी होऊं।"

उन दिनों माउंट होलयोक का रसायन विभाग श्रेष्ठ था जैसाकि आज भी है। इसकी अध्यक्ष डा० एम्मा कार थीं, जो एक असाधारण प्राध्यापिका थीं। रसायन विभाग की प्राध्यापिकाओं से प्रभावित होकर राशेल ब्राउन ने रसायन को भी अपना प्रमुख विषय चुन लिया और सन् १९२० में इतिहास व रसायन में ए० बी० की डिग्री प्राप्त की। डा० कार ने उसे शिकागो विश्वविद्यालय जाकर एम० एस० करने को प्रेरित किया, और उसी जादू की छड़ी ने एक साल के इस उच्चतर अध्ययन के लिए फिर पैसा जुटा दिया। लेकिन मिस ब्राउन ने इस बार खुद भी

अपनी मदद की। शिकागो विश्वविद्यालय से एम० एस० करते समय वह प्रयोग-शाला सहायक के रूप में नौकरी भी करती रही।

इसके बाद वह अपने पैरों पर खड़ी हो गई, यद्यपि फिलहाल उसके ऊपर सिर्फ अपनी जिम्मेदारी थी। अपने ज़माने की अन्य बहुत-सी उच्च शिक्षित महिलाओं की भांति वह अध्यापिका बनने की तैयारी कर रही थी। वह फ्रैंसिस शिमर स्कूल में अध्यापिका हो गई। यह स्कूल शिकागो के समीप था और प्रैपरेटरी स्कूल था और उन दिनों लड़कियों का जूनियर कॉलेज भी था। किंतु शीघ्र ही उसने अनुभव किया कि वह इस प्रकार के अध्यापन या रहन-सहन को आजीवन अपनाए नहीं रह पाएगी। इस स्कूल में तीन वर्ष पढ़ाने के बाद वह शिकागो विश्वविद्यालय लौट आई। उसे एक फेलोशिप मिल गई थी और अपनी समझ से उसके पास इतना धन था कि वह उससे आँर्गेनिक रसायन में पी-एच० डी० के दो वर्ष निकाल सके। यद्यपि उसके चाहने पर जादू की वह छड़ी उसके लिए बड़ी खुशी से रुपया जुटा सकती थी, मगर अब मिस ब्राउन समझदार हो गई थी और उसने अपने ही पैरों पर खड़ा होना अधिक पसन्द किया।

इस बिन्दु पर आकर उसे अपने जीवन की एक बड़ी बाधा का सामना करना पड़ा। उसके पास जो पैसा था वह अधिक से अधिक दो वर्ष चल सकता था, लेकिन दो वर्षों में डाक्टरेट का सारा काम किया नहीं जा सकता था। वास्तव में, उससे जितना काम करने के लिए कहा गया था, वह रसायन में पी-एच० डी० करने-वाले आम शोधार्थी से कहीं अधिक था, क्योंकि उसने जीवाणु-विज्ञान (Bacteriology) को भी अपना गौण विषय चुना था, और इस विषय में उसे लगभग उतना ही श्रम करना पड़ा जितना इस विषय में एम० एस० का छात्र करता है। उन दो वर्षों में उसने कठोर परिश्रम किया, और यह अवधि समाप्त होने तक, अपना सारा काम पूरा कर लिया। उसने सभी कोर्स लिए और उनमें उत्तीर्ण हो गई और अपना शोध-प्रबन्ध भी बाकायदा प्रस्तुत कर दिया। अब सिर्फ उसके शोध-प्रबन्ध की स्वीकृति और उसके बाद की कठिन मौखिक परीक्षा बाकी थी। किन्तु कुछ कारणों से, जिन्हें वह आज तक नहीं जान पाई, उसके शोध-प्रबन्ध की स्वीकृति में विलम्ब हो गया और जब तक स्वीकृति नहीं मिल जाती, मौखिक परीक्षा कैसे हो सकती थी।

उसे खुद अपना कोई शैक्षिक या अन्य किसी तरह का दोष न नज़र आता

था। लेकिन जिस बीच वह अपने प्रोफेसर के निर्णय की बेताबी से प्रतीक्षा कर रही थी। उन्हीं दिनों दो बातें हुईं। उसका पैसा खत्म हो चला था, और अनति-दूर भविष्य में उसे अपनी मां और दादी के निर्वाह के लिए भी पैसा जुटाना था। एक मित्र की सहायता से उसे एल्वनी-स्थित न्यूयार्क राज्य के स्वास्थ्य विभाग के प्रयोगशाला और अनुसंधान विभाग में सहायक केमिस्ट का पद प्राप्त हो सकता था। इस पद के लिए पी-एच० डी० होना अनिवार्य नहीं था। परिस्थितियों के दबाव के कारण उसे अपना बोरिया-बिस्तर बांधकर शिकागो को अलविदा कहना पड़ा। और इस प्रकार उस समय ऐसा लगा कि उसकी पी-एच० डी० का सिल-सिला इसी विन्दु पर समाप्त हो जाएगा।

सात साल बाद की बात है। तब तक वह काफी महत्त्वपूर्ण कार्य कर चुकी थी और शिकागो में वैज्ञानिकों की एक बैठक में भाग लेने आई हुई थी कि उसकी मुलाकात उस प्रोफेसर से हो गई जिसकी वजह से उसके शोध-प्रबन्ध की स्वीकृति में विलम्ब हुआ। इन प्रोफेसर महोदय ने उससे एक हफ्ते शिकागो में रहकर, मौखिक परीक्षा के लिए वह क्षेत्र चुन लेने का सुझाव दिया जिसमें वह पहले से ही शोध कर रही थी, और उसकी तैयारी अच्छी थी। यह सुझाव मानकर वह शिकागो में रुक गई, मौखिक परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गई, उसका पूर्व प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध स्वीकृत हुआ, और इस प्रकार, अपनी आशा से सात वर्ष बाद वह पी-एच० डी० हो पाई।

एल्वनी में वह सूक्ष्म जीवों (Microorganisms) के रसायन पर काम कर रही थी। स्वास्थ्य विभाग की इस प्रयोगशाला में किए जानेवाले वैज्ञानिक कार्य में ये दो काम भी शामिल थे : रोग का उपयुक्त निदान करने में डाक्टरों की सहायता करने के उद्देश्य से उनके द्वारा भेजे गए नमूनों की जांच करना; और बीमारियों पर काबू पाने के लिए वैक्सीन, जीव-विषहर (Antitoxins) तथा सीरम तैयार करना। तब तक पैंसिलीन का आविष्कार नहीं हुआ था और न्युमो-निया एक प्राणघातक रोग माना जाता था। उन दिनों न्युमोनिया का इलाज प्रति-सीरम (Antiserum) के इंजेक्शन लगाकर किया जाता था, और इससे अधि-कांश रोगी ठीक हो जाते थे। इस काम के विभिन्न प्रकार की सीरमें अपेक्षित थीं क्योंकि न्युमोनिया को उत्पन्न करनेवाले जीवाणु, जिन्हें न्यूमोकॉक्सी (Pneu-mococci) कहते हैं, कई प्रकार के होते हैं, और जो सीरम एक प्रकार के

न्यूमोनिया को ठीक कर सकती थी वही दूसरे प्रकार के न्यूमोनिया में एकदम बेकार साबित हो सकती थी। डाक्टर चाहते थे कि यह प्रयोगशाला उन्हें यह बताए कि उनके किस मरीज़ को किस प्रकार का न्युमोनिया है, और फिर उसी हिसाब से वे हर प्रकार के न्युमोनिया को ठीक कर सकनेवाली मानकित सीरम भी प्राप्त करना चाहते थे।

डा० ब्राउन का काम उस कार्बोहाइड्रेट-विशेष को खींचना था जिससे हर प्रकार के न्यूमोकॉक्सस पहचाने जा सकते थे। इसकी मदद से वह डाक्टरों को दी जानेवाली न्युमोनिया की विभिन्न सीरमों को मानकित करती थी। एल्वनी में अपने पिछले १५-२० वर्षों में उसका प्रकाशित शोध-कार्य इन न्यूमोकॉक्सी के रसायन से सम्बन्धित है। नीचे के संक्षिप्त विवरण से समझा जा सकता है कि वह किस प्रकार का काम करती थी :

जिस प्रकार के न्यूमोकॉक्सस का अध्ययन करना होता था उसी किस्म के जीवाणु घोड़ों या खरगोशों के शरीर में इंजेक्शन से पहुंचा दिए जाते थे। एक निश्चित समय के बाद इन प्रतिरक्षित (Immunized) जानवरों के शरीर में से खून लेकर उसका सीरम बनाया जाता था। इस सीरम को, मानकित रूप में इंजेक्शन के द्वारा उन मनुष्यों के शरीर में पहुंचाया जाता था जिनका न्युमोनिया उसी प्रकार के जीवाणुओं के कारण होता था जो इंजेक्शन द्वारा उन घोड़ों या खरगोशों में पहुंचाए गए थे। इंजेक्शन द्वारा मनुष्य के शरीर में पहुंची सीरम के प्रतिपिण्ड (Antibody) उन न्यूमोकॉक्सी के विरुद्ध संघर्ष करते हैं जो मनुष्य के जीवन के लिए खतरा पैदा करनेवाले होते हैं। डा० ब्राउन का काम मरीज़ों के लिए तैयार की जानेवाली विभिन्न सीरमों के मानकीकरण से सम्बद्ध अनेक रासायनिक समस्याओं में से कुछ को सुलझाना था।

इस सारे का असली मकसद यह था कि इस प्रयोगशाला में कोई भी डाक्टर अपने मरीज़ के खून आदि के नमूने का शीघ्र ही विश्लेषण करा सकता था, और तब उस मरीज़ के न्यूमोकॉक्सस १, २, या ८ या जिस किस्म के भी होते (ये न्यूमोकॉक्सस ४० किस्मों के होते हैं और इनके अन्य उपभेद भी ज्ञात हैं) उसी किस्म के न्युमोनिया का उपचार करनेवाली वैज्ञानिक पद्धति से तैयार, और मानकित सीरम, जिसपर खुराकों की मात्रा भी ठीक-ठीक लिखी होती थी, उसे प्रयोगशाला से अविलंब मिल जाती थी। जब पेनिसिलिन का अनुसंधान हो

गया और उससे न्युमोनिया के अधिकांश (सब तो नहीं) रोगी ठीक होने लगे तो ये न्युमोनिया सीरमें महत्त्वशून्य हो गईं। लेकिन पेनिसिलिन सन् १९४० के पहले जन-साधारण को उपलब्ध नहीं हो पाया—जबकि इस समय तक डा० ब्राउन को एल्बनी प्रयोगशाला में काम करते-करते १५ वर्ष हो चुके थे।

इस काल में उसका कार्य न्यूमोकॉक्सी तक ही सीमित नहीं रहा। यहां रहते हुए सिविल सर्विस में उसकी दो बार पद-वृद्धि हुई। सन् १९३६ में वह वरिष्ठ जीवरसायनज्ञ के पद पर नियुक्त की गई, और इसके १५ वर्ष बाद उसकी नियुक्ति उसके वर्तमान पद, सहयोगी जीवरसायनज्ञ, पर हुई। प्रयोगशाला में उसके दैनिक कार्य में दूसरे सूक्ष्म जीवों की रासायनिक समस्याएं भी उसके सामने आती थीं, और इन समस्याओं का उसने जो अध्ययन किया था उसका विवरण सन् १९३० और ४० के दशकों में कुछ वैज्ञानिक पत्रिकाओं, आदि में प्रकाशित भी हुआ था। अपने प्रतिदिन के काम के अलावा उसे अपनी रुचि की समस्याओं का अध्ययन करने की भी पूरी छूट थी। इसी आज़ादी के कारण वह अन्ततः मानवता को एक परम कल्याणकारी पदार्थ भेंट कर सकी और उसकी मिसाल देखकर दूसरे वैज्ञानिकों को भी अपने नियत कार्य के अलावा अपनी रुचि की अन्य समस्याओं का अध्ययन करने की आज़ादी मिल सकी।

अपनी रुचि की समस्याओं पर काम करने की आज़ादी मिलने के बाद जिस प्रकार का अनुभव डा० ब्राउन का था वैसे अनुभववाले वैज्ञानिक के लिए यह स्वाभाविक ही था कि उसकी रुचि प्रतिजैविकी (Antibiotics) में हो जाए। उसका वास्तविक कार्यक्षेत्र सूक्ष्म जीवों का रसायन था और प्रतिजीवाणु सूक्ष्म जीवों से प्राप्त रासायनिक पदार्थ हैं। पेनिसिलिन (१९४१) वास्तव में रामबाण सिद्ध हुआ था, और बहुत कुछ यही स्थिति स्ट्रैप्टोमाइसीन (१९४४) की थी। इसके बाद क्लोरोमाइसीन और ऑरियोमाइसीन का अनुसंधान हुआ, और इन सबके अभ्युदय के साथ-साथ मनुष्यों को अधिकाधिक रोगों से मुक्ति मिलती गई। दुर्भाग्य से जैसे-जैसे ये प्रतिजीवाणु आसानी से उपलब्ध होते गए व डाक्टरों द्वारा अधिक व्यवहृत होते गए, वैसे-वैसे चमत्कारी रोग-मुक्ति के साथ-साथ दुखद परिणामों की सूचनाएं भी मिलती रहीं—कभी-कभी तो ये परिणाम इतने दुखद होते थे कि मरीज़ शिकायत करता था कि इस इलाज से तो उसकी तकलीफ ही अच्छी थी।

इन प्रतिजीवाणुओं के भारी मात्रा में सेवन के कारण होनेवाले दुष्परिणामों में से एक तो ऐसा है जिसे शायद हममें से कुछ लोगों ने भी अपने परिवार या मित्रमंडली में देखा हो—इसमें मुंह में छाले पड़ जाते हैं और भयंकर वेदना होती है। ऐसा श्लेष्म झिल्ली (Mucoüs Membrane) में फफूंदों (Fungi) की अबाध प्रगति के कारण होता है। बात यह है कि हमारे शरीर में कुछ बैक्टीरिया ऐसे होते हैं जो फफूंदों की प्रगति पर नियंत्रण रखते हैं। चूंकि प्रतिजीवाणु अनेक प्रकार के बैक्टीरिया को नष्ट कर देते हैं किंतु फफूंदों को नष्ट नहीं करते, इसलिए वे ईन बैक्टीरिया को भी नष्ट कर देते हैं जो फफूंदों के नियंत्रण के लिए शरीर में रहने आवश्यक हैं। ऐसा होने पर फफूंदें आश्चर्यजनक रूप से बढ़ सकती हैं और एक बीमारी को जन्म दे सकती हैं जिसे डाक्टर लोग मोनिलियासिस कहते हैं; मरीज़ यही समझते हैं कि उनके मुंह में छाले पड़ गए हैं, और उनके लिए कुछ भी खाना दुःस्वप्न की विभीषिका हो जाता है।

यह उन अनेक उदाहरणों में से एक है कि फफूंदें बीमारी को किस प्रकार जन्म देती हैं। प्रतिजीवाणुओं को भारी मात्रा में दिए जाने के बाद इस तरह के इतने अधिक उदाहरण सामने आने लगे कि वैज्ञानिक किसी ऐसे प्रतिजीवाणु की खोज करने लगे जो फफूंदों को मार सके, जैसे दूसरे प्रतिजीवाणु बैक्टीरिया को नष्ट करते हैं, और साथ ही मनुष्यों के लिए हानिरहित भी हो।

सन् १९४० के दशक के उत्तरार्द्ध में डा० ब्राउन और डा० हाज़ेन ने, जोकि इस राजकीय प्रयोगशाला में सूक्ष्म जीव-वैज्ञानिक थी, फ़फूंदों को नष्ट करनेवाला एक प्रतिजीवाणु खोज निकालने का संयुक्त प्रयास करने का निश्चय किया। तब तक हुए काम को सावधानीपूर्वक दोहराते हुए उन्होंने अपने अनुसंधान की एक स्पष्ट रूपरेखा बनाई। डा० हाज़ेन एक्टिनोमाइसिटीज़ (Actinomycetes) पर पहले भी कुछ काम कर चुकी थीं। ये सूक्ष्म जीव कुछ-कुछ फफूंद जैसे होते हैं, और मिट्टी में पाए जाते हैं, और तब तक इनसे कई प्रतिजीवाणु प्राप्त किए जा चुके थे। उसने ऐसी मिट्टी के बहुत-से नमूने इकट्ठे किए जिनमें इन सूक्ष्म जीवों के मिलने की आशा थी। फिर उस मिट्टी से एक्टिनोमाइसिटीज़ अलग किए और परीक्षण करके देखा कि इनमें से कोई मनुष्यों को रोगी बनानेवाली फफूंदों का विरोधी है या नहीं। इस काम में उसे कई ऐसे सूक्ष्म जीव दिखाई दिए जिनसे उसे सफलता की आशा बंध चली। लेकिन अभी इन सूक्ष्म जीवों में से किसी एक

से प्रतिजीवाणु प्राप्त करने, और फिर यह निश्चय करने का काम बाकी था कि इस प्रतिजीवाणु का उपयोग मनुष्यों के हित में किया जा सकता है या नहीं ? दरअसल, डा० हाज़ेन जो काम कर चुकी थीं उसके आगे का काम करने के लिए एक अनुभवी जीव वैज्ञानिक की अपेक्षा थी।

इस प्रकार के सहयोग को ध्यान में रखकर फफूंदों को नष्ट करनेवाले एक प्रतिजीवाणु की खोज शुरू की। अलग-अलग स्थानों में जमा किए गए मिट्टी के नमूनों में वर्जीनिया के पशुओं के चरागाह से लिए गए नमूने में ऐसे एक्टिनो-माइसीट मिले जो उन्हें अपने काम के सर्वाधिक उपयुक्त लगे। परीक्षणों से पता चला कि इस मिट्टी में पाए जानेवाले ये सूक्ष्म जीव फफूंद-विरोधी तो थे ही, अन्य ज्ञात एक्टिनोमाइसीट से भिन्न गुण रखनेवाले भी थे। डा० हाज़ेन ने तो इन सूक्ष्म जीवों को मिट्टी से सफलतापूर्वक अलग कर लिया, अब यह देखना था कि डा० ब्राउन इन एंटिनीमाइसीट से प्रतिजीवाणु अलग कर सकती हैं या नहीं। इस बिन्दु पर आकर दोनों वैज्ञानिक यह तो समझ गई थीं कि एक प्रतिजीवाणु उनके सामने हाज़िर है, लेकिन यह ज़रूरी नहीं था कि उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता मिल ही जाए। अक्सर ऐसा होता है कि वैज्ञानिक जिस प्रतिजीवाणु पर अपनी आशाएं केन्द्रित किए हुए हैं वह शोधन-प्रक्रिया में अपनी सक्रिय क्षमता खो बैठे, और व्यर्थ हो जाए। दूसरे, फफूंद-विरोधी प्रतिज़ीवाणु पहले जब कभी अलग भी किए गए तो देखा गया कि वे इतने अधिक विषैले हैं कि मानव के हित की बजाय उसका अहित ही कर सकते हैं।

डा० ब्राउन ने प्रतिजीवाणु प्राप्त करने के लिए जो पद्धति अपनाई, उसकी खास-खास बातें इस प्रकार हैं: उसने एक्टिनोमाइसीट का मांसरस-संवर्द्धन (Broth culture) तैयार किया। हर पांच या छः दिन के बाद वह सतह पर जमा हुई कोमल झिल्ली (Pellicle) को निकाल देती थी, जिससे बहुत-सी अशुद्धियां दूर हो जाती थीं। जो परीक्षण किए गए उनसे पता चला कि फफूंद-विरोधी कारण (Agent) एक नहीं बल्कि दो हैं—एक मांसरस में और दूसरा कोमल झिल्ली में। बाद में चलकर उन्हें पता चला कि यदि इस अवस्था में परीक्षणों में उनसे ज़रा भी चूक हो जाती तो उन्हें अपने काम में सफलता कभी न मिलती। उन्होंने यह काम यहीं रोक दिया। इसे रोककर डा० ब्राउन काफी दिनों तक इसी बात का पता लगाती रहीं कि इन दोनों कारकों में क्या भेद है।

अन्ततः उन्होंने कोमल झिल्ली में पाए जानेवाले कारक पर ही काम करने का निश्चय किया। अब इससे आगे का, यानी फफूंद-विरोधी कारक को प्राप्त करने का, काम एक उच्चतर योग्यताप्राप्त जीव वैज्ञानिक के लिए भी कठिन था। प्रयोग के तौर पर, एक विलायक (Solvent) मैंथेनौल का प्रयोग किया, जिसमें प्रतिजीवाणु तो घुल गया किन्तु बाकी तत्त्व ज्यों के त्यों रहे। इस प्रकार डा० ब्राउन को एक महीन पीले चूर्ण की प्राप्ति हुई, और अन्ततः उन्हें छोटे-छोटे स्फटिक (Crystal) प्राप्त हुए, जिनका नाम उन्होंने कुछ वक्त के लिए फंजाइ-साइडीन (Fungicidin) रख दिया, और चूहों पर उसके परीक्षण शुरू कर दिए।

सन् १९५० के पतझड़ के प्रारम्भिक दिनों में डा० हाज़ेन और डा० ब्राउन इस स्थिति में हो सकीं कि उन्होंने न्यूयार्क में होनेवाली राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी की बैठक में घोषणा की कि उन्होंने मिट्टी में होनेवाले एक्टिनोमाइसीट से फफूंद-विरोधी दो कारक उत्पन्न किए हैं, इन दोनों में से एक कारक तो ऐसा है जो आज तक ज्ञात सभी प्रतिजीवाणुओं से भिन्न है। अब तक के किए गए परीक्षणों में यह कारक बड़ी संख्या में उपस्थित फफूंदों के विरुद्ध सफल हुआ है और भारी परिमाण में दिए जाने पर भी, इसने शरीर में स्थित उन सामान्य बैक्टीरिया को क्षति नहीं पहुंचाई है जिन्हें दूसरे प्रतिजीवाणु हानि पहुंचाते हैं। मनुष्यों को हानि पहुंचाने-वाली फफूंदों से मिलती-जुलती फफूंदों पर प्रयोगशाला में किए गए प्रयोग इतने आशाप्रद सिद्ध हुए हैं कि इस बात का अध्ययन ज़रूरी हो गया है कि मनुष्यों के लिए इस प्रतिजीवाणु के चिकित्सीय गुण क्या हैं—इस प्रकार के अनुसंधान के लिए चिकित्साशास्त्रियों की अपेक्षा थी।

शैनेक्टडी में उनके यह घोषणा करते ही उनके पास उन फार्मेस्युटिकल कम्पनियों से दे-दनादन टेलीफोन व पत्रादि आने लगे जिनके पास इस दिशा में आगे अनुसन्धान करने के साधन थे, और जो इस प्रतिजीवाणु का निर्माण या उत्पादन करने के लिए तैयार थीं क्योंकि प्रतिजीवाणु बड़े-बड़े किण्वन-कुंडों (Fermentation Tanks) में उत्पन्न जीवित ऑरगेनिज़्मों से प्राप्त किए जाते हैं। ऐसा लगता था कि इन दोनों वैज्ञानिकों के हाथ एक ऐसी चीज़ लग गई है जिसे पेटेंट कराया जा सकता है, और भारी मुनाफा कमाया जा सकता है। चूंकि ये दोनों जानती थीं कि दोनों में से किसीको भी अपनी इस खोज से अपने लिए धन नहीं चाहिए, और चूंकि फार्मेस्युटिकल उद्योग की सहायता के बिना आगे का

अनुसन्धान, परीक्षण, उत्पादन और मारकेटिंग सम्भव नहीं था, इसलिए उन्होंने रिसर्च कारपोरेशन से संपर्क स्थापित किया कि इन परिस्थितियों में वह क्या-कुछ कर सकता है।

थोड़े-से ही समय में इस अनुभवप्राप्त कारपोरेशन ने इस प्रथम हानिरहित फफूंद-विरोधी प्रतिजीवाणु कोहा ज़ेन-ब्राउन के नाम से पेटेंट कराने के काम में हाथ लगाया। इस बीच इस प्रतिजीवाणु की अनुसन्धाता इसे एक स्थायी नाम भी दे चुकी थीं—नाइस्टाटिन (Nystatin) इसके पहले अक्षरों का प्रयोग न्यूयार्क राज्य को आदर देने के लिए किया गया था जिसकी प्रयोगशाला में यह कार्य सम्पन्न हुआ था। फिर, कारपोरेशन ने ई० आर० स्क्विब एण्ड सन्स को इस पेटेंट प्रतिजीवाणु का प्रयोग करने का लाइसेंस दे दिया, और जल्दी ही उसकी प्रयोग-शालाओं में इसका उत्पादन प्रारम्भ हो गया। इस काम में गम्भीर कठिनाइयां सामने आईं, जैसीकि रासायनिक पदार्थों का व्यापार के स्तर पर उत्पादन करते समय अक्सर उठा करती हैं, लेकिन स्क्विब इंस्टीट्यूट फॉर मैडिकल रिसर्च की सहायता से उनपर काबू पा लिया गया। शीघ्रातिशीघ्र डाक्टर लोग मरीज़ों पर नाइस्टाटिन का प्रयोग करके इस दिशा में सहयोग देने लगे।

नाइस्टाटिन न केवल रोगोत्पादक फफूंदों से होनेवाली अनेक बीमारियों को दूर करने में सफल सिद्ध हुआ बल्कि यह एकमात्र ऐसा प्रतिजीवाणु भी सिद्ध हुआ जो मनुष्यों के लिए निर्विष था। इस अकेले या दूसरे प्रतिजीवाणुओं के साथ मिला-कर शरीर में पहुंचाकर मरीज़ों की बीमारी को रोका या ठीक किया गया। सारांश यह कि ज्योंही यह सिद्ध हो गया कि नाइस्टाटिन का प्रयोग सर्वथा हानिरहित है वैसे ही इस प्रतिजीवाणु का बाज़ार गर्म हो उठा।

इसकी व्यापक उपादेयता का कुछ अनुमान रिसर्च कारपोरेशन द्वारा प्रका-शित अपनी वार्षिक रिपोर्ट में सन् १९५७ में (जोकि इस प्रतिजीवाणु के उत्पादन का प्रथम वर्ष था) नाइस्टाटिन के पेटेंट से प्राप्त रायल्टी के आंकड़ों से लगाया जा सकता है। पहले ही वर्ष इसकी रायल्टी से लगभग १,३५,००० डालर प्राप्त हुए। इन आंकड़ों से ऐसा लगा है कि शायद चंद वर्षों में ही रायल्टी से प्रथम दस लाख डालर प्राप्त हो जाएंगे।

रिसर्च कारपोरेशन और नाइस्टाटिन की अनुसन्धाताओं में हुए राज़ीनामे के अनुसार रायल्टी से प्राप्त धनराशि प्राकृतिक विज्ञानों के अनुसन्धान के विकास-

कार्यों पर खर्च होती है, इस धनराशि का आधा भाग तो, अन्य कोशों की तरह ही रिसर्च कारपोरेशन् द्वारा वैज्ञानिक क्षेत्रों को अनुदान के रूप में दिया जाता है। दूसरा आधा भाग ब्राउन-हाज़ेन फंड की कमेटी (जिसमें डा० ब्राउन और डा० हाज़ेन भी हैं) द्वारा जीवरसायन, प्रतिरक्षणविज्ञान और सूक्ष्म जीवविज्ञान में मौलिक अनुसन्धान-कार्य के लिए वितरित किया जाता है, इस बारे में न्यूयार्क राज्य की प्रयोगशालाओं और अनुसन्धान विभाग में काम करनेवाले कर्मचारियों को वैज्ञानिक प्रशिक्षण देने पर भी विशेष बल दिया जाता है। अब तक डा० ब्राउन नाइस्टाटिन की रायल्टी का कुछ भाग उन लोगों पर व्यय करने का सुखद अनुभव प्राप्त कर चुकी है जिनकी समस्याओं व प्रतिभाओं को वह निकट से जानती है। लेकिन इस सबसे उसके निजी जीवन में कोई अन्तर नहीं आया है। प्रयोगशाला में उसका काम अब भी बहुत कुछ पहले की ही तरह जारी है, और उसकी विशेष रुचि अनुसन्धान की समस्याओं में है।

प्रयोगशाला के बाहर भी उसका जीवन बहुत कुछ पहले जैसा ही है—उसे जीवन से कोई शिकायत नहीं है, और इसका एक प्रमुख कारण यह है कि आवश्यकता से अतिरिक्त धन जीवन में जो अतिरिक्त वृद्धि करता है, उसका मौका ही उसने नहीं आने दिया। अपनी मां और दादी का खर्चा अपने ऊपर उठाने के बाद उसने पहला काम यह किया कि अपनी एक व्यापारी मित्र के साथ मिलकर एक ऐसा मकान खरीद लिया जिसमें वे चारों सुखपूर्वक रह सकती थीं, और बाहर की तरफ वे लॉन और फूल-पौधे वगैरह लगा सकती थीं। यह इन्तज़ाम बहुत कुछ बुज़ुर्गाना था, और शायद इसी तरह चलता, लेकिन एपिस्कोपल चर्च (जिसकी वह सदस्य थी) को छोटे बालकों को पढ़ाने के लिए रविवारीय स्कूल-टीचरों की ज़रूरत पड़ी, और वह एक टीचर हो गई। इससे उसे अनेक बच्चों के सम्पर्क में आने का अवसर मिला, फलतः कई वर्षों बाद उसे नये आश्रमों के मुआयने के लिए बुलाया जाने लगा और जल्दी ही वह बपतिस्मे के समय भी उपस्थित होने लगी। आजकल उसका परिवार बहुत बढ़ गया है, और बढ़ता ही जा रहा है। पिछले कई वर्षों से वह दसवर्षीय बच्चों को पढ़ा रही है, इस आयु वर्ग में उसकी विशेष रुचि है।

राशेल ब्राउन को जानना इस सत्य का साक्षात्कार करना है कि विज्ञान एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें मानव चाहे तो ऐसे प्रतिमानों और मूल्यों को अपना सकता है

जो भौतिक मानदंड से नहीं मापे जा सकते। और न इन प्रतिमानों को अपनाने से वैज्ञानिक को अपने व्यवसाय में प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त करने में कोई बाधा होती है। लेकिन वैज्ञानिक प्रतिष्ठा, ऑनरेरी 'फाइ बीटा कैप्पा' और माउंट होल-योक की ओर से विशिष्ट वैज्ञानिक के रूप में उल्लेखनीय होने की अपेक्षा इस सहृदय और विनम्र महिला को कहीं अधिक संतोष यह सोचकर मिलता है कि उसके कार्य ने मानव-जीवन की रक्षा करने और मानव-कष्टों को कम करने में योग दिया है।

च्येन श्युंग वू

आज एक चीनी महिला की गणना अमरीका की सर्वाधिक लब्धप्रतिष्ठ महिला वैज्ञानिकों में की जाती है। इस महिला का नाम च्येन श्युंग वू है, और वह कोलंबिया विश्वविद्यालय में भौतिकी की प्रोफेसर है। श्रेष्ठतासूचक विशेषणों का प्रयोग वैज्ञानिकों के लिए करते समय सतर्कता बरतनी चाहिए। इस बात को ध्यान में रखते हुए, यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि डा० वू का स्थान निश्चित रूप से उन महिलाओं के बीच में है जिनकी गणना संसार की चोटी की महिला वैज्ञानिकों में होती है। सन् १९५८ में जब प्रिंस्टन विश्वविद्यालय ने उसे विज्ञान में ऑनरेरी डॉक्टरेट की डिग्री प्रदान की तो विश्वविद्यालय के प्रेसीडेंट ने कहा था कि च्येन श्युंग वू ने वास्तव में 'विश्व की अग्रणी महिला प्रयोक्ता भौतिकविद्' के नाम से संबोधित किए जाने का अधिकार अर्जित कर लिया है। इससे पहले इस विश्वविद्यालय ने किसी महिला को विज्ञान में ऑनरेरी डाक्टरेट नहीं दी थी।

डा० वू के श्रेष्ठ वैज्ञानिक कार्य ने उसे कोलंबिया विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बनवा दिया है। यह पद नाभिकीय भौतिकी के क्षेत्र में काम करनेवाली असाधारण अमरीकी महिलाओं के लिए भी दुर्लभ है। लेकिन इस उच्च पद पर आसीन होने के बाद डा० वू में किसी प्रकार का भी संकोच या मिथ्या गौरव नहीं आया। उसका कद बहुत छोटा है, और वह प्रायः एक प्रकार का चीनी स्कर्ट पहने रहती है जो उसपर खूब फबती है। इस पोशाक से उसके अपनी जन्मभूमि के प्रति स्थायी प्रेम का परिचय मिलता है।

और जिस अपनापे और ममता से वह हाथ मिलाता है वह जाति और राष्ट्रीयता से बहुत ऊपर की चीज़ है। उसके स्वभाव में मानवीय और नारी-सुलभ तत्त्वों की इतनी प्रचुरता है कि उससे हाथ मिलाते ही सब तरह के औपचारिक संकोच समाप्त हो जाते हैं। विज्ञान से अनभिज्ञ सामान्य जन के लिए उसका व्यवहार एक

चुनौती की तरह है कि वह अपने संकोच और पूर्वाग्रहों को त्यागकर उन्मुक्त मन से उसके वैज्ञानिक कार्य को समझने का प्रयत्न करे। यदि वह ऐसा कर सके तो उसे अपने मस्तिष्क और इस नाभिकीय भौतिकविद् के बीच संवेदना का एक पुल नज़र आएगा जिसकी मदद से वह उसके उस वैज्ञानिक कार्य को बड़ी आसानी से समझ सकेगा जिसे समझने की उसने पहले कोई कोशिश नहीं की थी।

यह सच है कि सामान्य जन के लिए नाभिकीय भौतिकी सबसे अधिक एब्स-ट्रैक्ट और पेचीदा विज्ञान है। फिर भी यह तथ्य कि आधुनिक संगीत की गणना सर्वाधिक अमूर्त और पेचीदा कलाओं में होती है, अनेक सामान्य जनों को इस संगीत में नूतन अर्थवत्ता और सौन्दर्य खोजने से नहीं रोक पाया है, जिसे वह पहले 'अर्थ-हीन आवाज़ों का हुजूम' कहकर छोड़ देता था। विज्ञान हो या कला—उसे समझने के लिए समुचित बौद्धिक प्रयास आवश्यक है। यह प्रयास करने पर हम उन्हीं क्षेत्रों में ज्यादा अधिकारपूर्वक विचरण कर सकते हैं जिनमें पहले अजनबियों की तरह भटकते थे। सामान्य जन के लिए किसी अपरिचित विषय से परिचय प्राप्त करने की शुरुआत वयस्क हो जाने के बाद करना कठिन होता है। छोटी उम्र में यह कठिनाई कम होती है। फिर भी, हर उम्र के वे लोग, जिनके दिमाग किसी निश्चित सांचे में ढल नहीं चुके हैं, जिन्होंने अपनी कल्पना का चिरकाल से दमन नहीं किया है। हमारे शरीरों, और चारों ओर फैले पदार्थों के निर्माता अदृश्य तत्त्वों को, जिन्हें परमाणु कहते हैं, समझने की शुरुआत कर सकते हैं।

आखिर हममें से अधिकांश लोग हाई स्कूल में पढ़ते समय यह अनुभव कर चुके हैं कि जैसे ही दो अदृश्य गैसों (हाइड्रोजन व ऑक्सीजन) को परीक्षण नली में मिलाया गया। वे दृश्यमान पानी में बदल गईं। इस प्रकार का अनुभव हमारी कल्पना को यह सोचने के लिए उत्तेजित कर सकता है कि हम पानी से भरे जिस गिलास को देख रहे हैं वह गिलास और उसका पानी कुछ ऐसे अदृश्य कणों से बने हैं जो किसी तरह मिल गए हैं, और दृश्यमान हो गए हैं। जब हम यह समझने की कोशिश कर रहे होते हैं कि गिलास और उसका पानी 'परमाणु' नामक अदृश्य कणों से मिलकर बने हैं, तो अपनी कल्पना की सहायता से हम परमाणु भौतिकी के क्षेत्र में पहला कदम रख चुके होते हैं।

जो सामान्य जन यह पहला कदम उठाने में सफल हो जाता है उसके लिए दूसरा कदम रखना कुछ मुश्किल नहीं होता, और यह दूसरा कदम उसे डा० वू

के विशिष्ट क्षेत्र नाभिकीय भौतिकी, यानी परमाणु के नाभिक या कोर (Core) की भौतिकी, में ले आता है। हमारा यह दूसरा कदम तब उठता है जब हम जानकर या अनजाने ही यह समझने की कोशिश करते हैं कि गिलास और उसके पानी का हर अदृश्य परमाणु[1] और भी छोटे अदृश्य कणों से मिलकर बना है, जैसे—धनात्मक और ऋणात्मक विद्युत्-चार्ज जिन्हें प्रोटोन और इलेक्ट्रान कहते हैं, चार्ज-हीन न्यूट्रोन, 'मेसन' नामक अस्थायी कण, और के-मेसन (K-meson) जिनकी खोज सन् १९५२–५३ में हुई है और जो क्षय होने पर कभी दो और कभी तीन पाइ-मेसनों (Pi-mesons) में बदल जाते हैं।

इतना समझ लेने के बाद इस तथ्य को मान लेने में विशेष कठिनाई नहीं होती कि अदृश्य परमाणुओं का निर्माण अदृश्य कणों से मिलकर होता है। किन्तु—और यह एक महत्त्वपूर्ण 'किन्तु' है—जब एक सामान्य जन उन वैज्ञानिकों के कार्य का अध्ययन आरम्भ करता है जिन्होंने इस प्रकार के उपकरणों का निर्माण किया है जिनसे ये अदृश्य कण सधे हुए करतबी पिस्सुओं की भांति दिखाई देते हैं, तब वह खो जाता है। यदि वह इस विषय में और अधिक जानने का तो इच्छुक हो किन्तु यह निश्चय न कर पाए कि इस विषय में उसमें जन्मजात क्षमता है या नहीं, तो इस बिंदु पर आकर, उसे कुछ आधुनिक लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिकों के जीवन-चरित से प्रेरणा लेनी चाहिए। कुछ ऐसे वैज्ञानिक, जिन्होंने आगे चलकर नाभिकीय भौतिकी के क्षेत्र में बड़ा नाम कमाया और स्थायी महत्त्व के कार्य किए, शुरू में बहुत दिनों तक यह निश्चय न कर पाए थे कि उनमें इस क्षेत्र में जन्मजात प्रतिभा है अथवा नहीं।

लेकिन च्येन श्युंग वू उन वैज्ञानिकों में से नहीं थी। चीन में अपने बाल्य-काल में ही वह समझ गई थी कि बड़ी होकर वह एक वैज्ञानिक बनेगा, यद्यपि उन दिनों वह कोलंबिया विश्वविद्यालय, अमरीका, की प्रयोगशाला या किसी अन्य देश के स्वप्न देखती थी, और न विज्ञान में रुचि रखनेवाली उस युग की अमरीकी लड़कियों की तरह घर पर बने रेडियो-सेट की मरम्मत करने में ही लगी रहती थी। उसका जन्म शंघाई के निकटवर्ती ल्यू हो नामक छोटे-से कस्बे में हुआ था। उसका जीवन अपने वर्ग की अन्य लड़कियों की ही भांति था

१. यदि आप परमाणु के आकार के बारे में भूल गए हैं तो पृष्ठ ३० पर पादटिप्पणी में लाइज़ मेट्नर द्वारा दिया गया विवरण देखिए।

और वह अपने चीनी घर में खुश थी। हां, एक अर्थ में उसका जीवन अपने समुदाय के बच्चों से किसी कदर भिन्न था। उसका पिता ल्यू हो में एक स्कूल का प्रिंसिपल था। वह स्वयं विद्वान था और अपनी संतान को भी योग्य बनाना चाहता था। फलतः च्येन श्युंग और उसके दोनों भाइयों के चारों ओर पुस्तकें बिखरी रहती थीं और उन्हें पढ़ने के लिए प्रेरित किया जाता था। यद्यपि इस बच्ची की रुचि खेल-कूद में विशेष थी, तथापि पढ़ने के मामले में उससे कहना नहीं पड़ता था। अपने पिता के स्कूल की छात्रा होने तथा पुस्तकों और घर के वातावरण के कारण उसने अपनी मातृभूमि की पारंपरिक संस्कृति और उसके प्रति एक स्थायी सम्मान—पुरानी रीति-नीति, पुराने लोगों, चीनी आप्तग्रंथों और प्राचीन कला और संगीत के प्रति सम्मान—सीख लिया था।

"वह जीवन कितना उल्लासपूर्ण था। मेरा शैशव सौभाग्य और सुख से परिपूर्ण था।" वह आज भी कहती है।

अपने ज़माने को देखते हुए उसका पिता बहुत अधिक प्रगतिशील था। वह अपने स्कूल के बच्चों को प्राचीन सनातन मूल्यों के साथ-साथ आधुनिक जीवन-मूल्यों और अधुनातन विचारों के प्रति सम्मान रखना सिखाता था। वह इन बच्चों को आधुनिक जीवन के लिए तैयार करता था और इस तैयारी में वह उन्हें चीनी संस्कृति के उन सनातन मूल्यों को ग्रहण करना सिखाता था जो किसी भी युग में मनुष्य के जीवन को पूर्णतर एवं समृद्धतर बनाने में सक्षम हैं। प्राचीन साम्राज्ञी व उसके उत्तराधिकारियों का ज़माना लद चुका था। वू ज़ौंग-यी पूर्व के देशों में उठनेवाली परिवर्तन की लहर को पहचानता था। वह छोटे बच्चों का इन परिवर्तनों के लिए तैयार करना चाहता था, यद्यपि यह सच है कि उसके साथ कदम से कदम मिलाकर चलनेवालों की ल्यू हो में भारी कमी थी।

वहां उपलब्ध शिक्षा पूरी कर लेने के बाद हाईस्कूल के लिए उसे सूचाऊ भेजा गया। यहां कई ऐसी बातें हुईं जो आगे चलकर उसके जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुईं। पहली बात तो यह कि उसने अंग्रेज़ी पढ़नी शुरू कर दी। यह भाषा आगे चलकर उसके लिए बड़ी सहायक, बल्कि अनिवार्य सिद्ध हुई। दूसरी बात, जो इससे भी कहीं महत्त्वपूर्ण थी, यह हुई कि उसने एक भौतिकविद् बनने का फैसला किया। वह किसी नाटकीय क्षण में या किसी ऐसी ही घटना के कारण इस फैसले पर पहुंची हो, ऐसा उसे याद नहीं आता। वह उच्च शिक्षा प्राप्त करना

चाहती थी, इस अर्थ में वह अपने बाप की सच्ची बेटी थी। पढ़ने में उसका मन रमता था, और हाईस्कूल में अध्ययन करते समय उसकी समझ में यह बात आ गई कि दूसरे विषयों की अपेक्षा कुछ खास विषयों में उसकी दिलचस्पी खास तौर पर है। निश्चय ही गणित और विज्ञान में उसकी विशेष रुचि थी। तब उसने भौतिकी पढ़नी शुरू की और, "जल्दी ही मैं समझ गई कि मुझे इसी विषय में काम करना है।" उसका कहना है कि उसकी अन्तरात्मा ने उसे यह बताया था, लेकिन उस समय वह नहीं जानती थी कि उसने सत्य को कितने निश्चयात्मक रूप में हृदयंगम कर लिया है जो उसकी किसी आभ्यंतर प्रक्रिया ने उसकी मनःचेतना के सम्मुख उपस्थित किया था।

भावी कार्य का निश्चय कर लेने के बाद स्वाभाविक रूप से, उसने सूचारू हाईस्कूल से ग्रेजुएट होने के बाद नानकिंग-स्थित सरकारी मदद से चलनेवाले राष्ट्रीय केन्द्रीय विश्वविद्यालय में नाम लिखाया। उन दिनों नानकिंग राष्ट्रवादी सरकार की राजधानी था और सम्पूर्ण पूर्वी चीन की भांति वह भी अव्यवस्थित था, किन्तु छात्र-जीवन प्रायः सामान्य रूप से ही चल रहा था। कुमारी वू ने गणित और भौतिकी का सारा पाठ्यक्रम ले लिया, और अपने सहपाठियों के साथ चीनी विश्वविद्यालय में सहजप्राप्त बौद्धिक साहचर्य का आनन्द उठाते हुए वह सन् १९३६ में विज्ञान में 'बेचलर' हो गई।

अब वह भौतिकी में ग्रेजुएट होना चाहती थी, और इसके लिए तैयार थी, मगर चीन में इस प्रकार के अध्ययन की कोई व्यवस्था नहीं थी। उसने अपने मां-बाप को इस बात के लिए राज़ी कर लिया कि वे उसे उच्चशिक्षा प्राप्त करने के लिए अमरीका भेज दें। इस प्रकार, सन् १९३६ में उसने बर्कले-स्थित कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में दाखिला ले लिया। इन्हीं दिनों डा० अर्नेस्ट लॉरेंस को विश्व-विद्यालय की विकिरण-प्रयोगशाला का निदेशक बनाया गया था। अमरीका में उत्पन्न और शिक्षित इस भौतिकविद् ने इसी विश्वविद्यालय में रहकर अपने आविष्कार एक परमाणु-भंजक साइक्लोट्रोन पर अपना काम आगे बढ़ाया, और परमाणु-रचना और तत्त्वांतरण के क्षेत्र में अपना शोध-कार्य किया जिसपर आगे चलकर उसे भौतिकी में नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ। इन दिनों मिस वू उसकी छात्रा थी। यह सच है कि उन दिनों नाभिकीय भौतिकी में रुचि रखनेवाले किसी भी विद्यार्थी के लिए डा० लॉरेंस की प्रयोगशालाओं में काम करना सौभाग्य की

बात समझा जाती थी। ग्रेजुएट विद्यार्थी के रूप में दाखिला मिल जाने के बाद सब कुछ इस बात पर निर्भर करता था कि चीनी विश्वविद्यालय में प्राप्त की गई शिक्षा और उसकी निजी योग्यताएं इस अमरीकी ग्रेजुएट केन्द्र में होनेवाले काम में कहां तक सहायक हो सकती हैं जिसमें कि नाभिकीय भौतिकी के क्षेत्र के कुछ श्रेष्ठतम मस्तिष्क काम कर रहे थे।

अमरीकी विश्वविद्यालय-जीवन के साथ ही कक्षा और प्रयोगशाला के बाहर के अमरीकी जीवन में भी अपनी संगति बिठाने की बात उसके सामने आई। वह इंटरनेशनल हाउस में रहती थी, वह रहनेवाले पूर्वी देशों और यूरोप के छात्रों में वह जल्दी ही घुलमिल गई। धीरे-धीरे उसे अमरीकी पाक कला, कम से कम उसकी कुछ चीजें पसंद आने लगीं। नृत्य के अलावा अह इंटरनेशनल हाउस में रहनेवाले छात्रों के सामाजिक जीवन को भी पसंद करने लगी। धीरे-धीरे वह पश्चिमी शास्त्रीय संगीत और पश्चिमी लोकगीतों में भी रुचि लेने लगी। उसका ग्रेजुएट-सहपाठी ल्यूक चा-ल्यू युआन, जिससे कि च्येन श्युंग ने अमरीका में आने के कुछ वर्ष बाद विवाह किया, संगीत-प्रेमी है और पूर्वीय और यूरोपीय दोनों प्रकार के वाद्ययंत्रों को वजाने और सुनने का शौकीन है। उनके घर पर अक्सर दोनों प्रकार का संगीत सुना जा सकता है।

विश्वविद्यालय से बाहर अमरीकी जीवन से अपनी संगति बैठाने में शुरू में उसे शायद थोड़ी-बहुत कठिनाई हुई हो, किन्तु उसके अध्ययन में किसी प्रकार का व्याघात नहीं पड़ा। कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय का ग्रेजुएट-पाठ्यक्रम कठोर श्रम की अपेक्षा रखता था, मगर उसने सब काम बड़ी आसानी से पूरा कर लिया और फिर उसे अध्यापन-सहायक का पद दिया गया; हर साल उसे यह पद नये सिरे से तब तक दिया जाता रहा जब तक कि उसने सन् १९४० में नाभिकीय भौतिकी में पी-एच० डी० न कर लिया। अपने शोध-प्रबंध के लिए उसने जो अनुसंधान-कार्य किया वह दो भागों में था। पहले में उसने बीटा के क्षय से होनेवाले एक्स-विकिरण (X-Radiation) पर काम किया। उसने विघटन के दौरान दो प्रकार की किरणों को अलग करने की नई विधियां निकालने में विशेष दक्षता दिखाई, और अपने सैद्धान्तिक भविष्य-कथन को परीक्षणों के परिणामों से पुष्ट करने में सफलता प्राप्त की। बर्कले में इस घोषणा के तुरन्त बाद, कि यूरेनियम के परमाणु का विखंडन हो चुका है, उसने अपना दूसरा शोध-कार्य आरम्भ किया। इस बार

उसने यूरेनियम के विखंड से होनेवाली रेडियो-एक्टिव नोवल (Noble) गैसों को अपनी शोध का विषय बनाया। डा० ई० सैग्रे के साथ काम करते हुए उसने "अर्द्ध-जीवनों, विकिरणों और समस्थानिका-अंकों (Isotope Numbers) को पूरी तरह पहचानकर रेडियधर्मी क्षय की दो पूर्ण शृंखलाओं को सिद्ध कर दिखाया। युद्ध की समाप्ति तक उसका यह शोध-प्रबंध प्रकाशित नहीं हो सका; किन्तु, प्रार्थना करने पर, इसे लॉस एलमॉस लेवोरेटरीज भेज दिया गया।

कहना न होगा कि डाक्टरेट के लिए अपना शोध-प्रबंध पूरा करने के पहले ही डा० वू नाभिकीय भौतिकी के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय देने लगी थी। ग्रेजुएट विद्यार्थी के रूप में साधारण महत्त्व का कार्य करने पर उसे 'फाइ बीटा कैप्पा' के लिए चुन लिया गया, और विश्वविद्यालय ने उसके सामने डा० लॉरेंस का रिसर्च-असिस्टेंट वन जाने का प्रस्ताव रखा। चूंकि चीन में युद्ध की स्थिति बिगड़ती ही जा रही थी, इसलिए उसने इस पद को स्वीकार कर लिया, और कुछ समय तक विशुद्ध वैज्ञानिक शोध में लगी रही। इसके वाद उस प्रयोग-शाला में प्रतिरक्षणात्मक शोध होने लगी और विशुद्ध-कार्य स्थगित कर दिया गया। सन् १९४२ में, डा० वू पूर्व की ओर स्मिथ कॉलेज में भौतिकी पढ़ाने चली आई।

स्मिथ कॉलेज में उसका पहला वर्ष पूरा होने ही वाला था कि एक ऐसी बात हुई जिससे साबित होता है कि डा० लॉरेंस के साथ काम करते हुए उसने ज़रूर कुछ ऐसे गुणों का परिचय दिया होगा जो उन दिनों भौतिकविदों के लिए विरल रहे होंगे। हुआ यह कि प्रिंसटन विश्वविद्यालय ने इस २७ वर्षीय युवती को अपने पुरुष-छात्रों को नाभिकीय भौतिकी पढ़ाने के लिए आमंत्रित किया। डा० वू का कहना है कि अमरीका में पाई जानेवाली सबसे बेतुकी बात यह है कि उच्चतर शिक्षा के कुछ सर्वश्रेष्ठ संस्थान महिला-छात्रों को दाखिला नहीं देते। इस बात पर उसे आज भी आश्चर्य होता है क्योंकि यह अमरीका के समानता के सिद्धांत के विरोध में है। डा० वू प्रिंसटन के इस निमंत्रण का कारण यह बताती है, "युद्ध चल रहा था और भौतिकी के अध्यापकों की उन दिनों भारी कमी महसूस की जा रही थी।" स्पष्टतः यह कथन उसकी स्वभावगत विनम्रता का परिचायक है। फिर भी युवा डा० च्येन श्युंग वू के पास जिसे डा० लॉरेंस की प्रयोगशाला से निकले एक ही वर्ष हुआ था, कुछ ऐसा असाधारण था जो वह प्रिंसटन विश्व-

विद्यालय को दे सकती थी। यह विश्वविद्यालय नाभिकीय अनुसंधान के लिए आवश्यक बहुमूल्य उपकरणों से सुसज्जित था।

उसने प्रिंसटन का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, किन्तु वहां वह अधिक दिन न रह सकी। कुछ ही महीनों बाद उसके पास एक और प्रस्ताव आया जिसके द्वारा उसे कोलंबिया विश्वविद्यालय में चलनेवाले मैनहटन प्रोजैक्ट पर काम करने के लिए आमंत्रित किया गया था। इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने का अर्थ था युद्ध की तैयारियों में प्रत्यक्ष योगदान, और उस समय वह यही चाहती थी। इसलिए सन् १९४४ के मार्च में वह 'डिवीज़न ऑफ वार रिसर्च' के वैज्ञानिक कर्मचारी-मंडल की सदस्य बना ली गई, जहां कि वह युद्ध की समाप्ति तक रही। यहां उसका मुख्य काम विकिरण का पता लगानेवाले यंत्रों का विकास करना था। इन्हीं दिनों उसे गीगर काउंटर पर अभ्रक की पहली खिड़की (Mica Window) लगाने की निर्दोष विधि खोज निकालने में सफलता मिली।

युद्ध की समाप्ति के तुरन्त बाद डा० वू कोलम्बिया में रिसर्च एसोशिएट हो गई। यहां उसे बीटा-क्षय पर काम करने का अवसर मिला, इस विषय पर वह कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में भी काम कर चुकी थी। बीटा-क्षय के बारे में सिद्धान्त तो विद्यमान थे किन्तु सिद्धान्तों को सिद्ध या असिद्ध करने के लिए प्रमाणों की अपेक्षा थी, और सन् १९४६ में बीटा-वर्णक्रम विज्ञान की तकनीकें इतनी अल्प विकसित थीं कि इस क्षेत्र के सैद्धान्तिक और प्रायोगिक निष्कर्षों में एक भारी असंगति विद्यमान थी। कोलम्बिया-स्थित अपनी प्रायोगशाला में उसने बीटा-वर्णक्रमों की आकृतियों और बीटा-क्षय की परस्पर क्रिया का अध्ययन करने की नई विधियों का आविष्कार करके इस भारी असंगति को दूर करने का दुष्कर कार्य आरम्भ किया। वर्णक्रमों का अध्ययन करने के लिए उसने एक नई तकनीक अपनाई, जिसमें उसने एक चुम्बकीय वर्णक्रममापी (Spectro metre) के अन्दर स्फुरण पटल (Scintillation counter) और बीटा-डिटेक्टर का प्रयोग किया। कोलंबिया में कई वर्षों तक वह इस कार्य में लगी रही। इन परीक्षणों से बीटा-क्षय का 'फर्मी सिद्धान्त' सही सिद्ध होता था और यह भी साबित होता था कि वह बड़ी तेज़ी से एक कुशल भौतिकविद् बनती जा रही है। इस शोध-कार्य के आधार पर उसकी पद-वृद्धि कर दी गई और सन् १९५२ में उसे कोलम्बिया में एसोशिएट प्रोफेसर बना दिया गया।

डा० वू के साथ काम करनेवाले ग्रेजुएट विद्यार्थी अनजाने ही अमरीका में प्रायोगिक भौतिकी के क्षेत्र में होनेवाले सर्वोत्तम शोध-कार्य में भागीदार होने का सुअवसर पा रहे थे। वीटा-क्षय, संहार विकिरण (Annihilation radiation) और विकिरण की पहचान करनेवाली युक्तियों से सम्बद्ध समस्याओं को एक-एक करके अध्ययन किया जा रहा था। वह खुद और उसके विद्यार्थी अपने कुछ निष्कर्षों पर आप-ही चकित रह जाते थे। उसका मेधावी मस्तिष्क प्रायोगिक अनुसंधान की नई-नई विधियां निकालता रहता था, और दूसरे भौतिकविद् इस प्रयोगशाला में होनेवाले काम को बड़ी रुचि से देखने लगे थे। सन् १९५६ में एक ऐसा अवसर आया जिससे उसे दो युवा चीनी-अमरीकी भौतिकविदों के साथ सक्रिय रूप से काम करना पड़ा, जिनके शोध-निष्कर्षों ने अमरीका को विश्वव्यापी प्रतिष्ठा दिलाई। इन दोनों युवा वैज्ञानिकों को इस कार्य पर भौतिकी में नोवल पुरस्कार दिया गया।

इनमें से एक कोलंविया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर त्सुंग दाओ ली थे और दूसरे प्रिंसटन-स्थित 'इंस्टिट्यूट फॉर एडवांस्ड स्टडी' के प्रोफेसर चेन निंग यांग। ये दोनों वैज्ञानिक सैद्धान्तिक भौतिकविदों के उस छोटे-से वर्ग के सदस्य थे जो सन् १९४६ के मध्य तक आते-आते एक ऐसी धारणा की पूर्णव्यापी मान्यता में सन्देह व्यक्त करने लगा था जिसे समता के सिद्धान्त (Principle of parity) के नाम से पुकारा जाता है। उक्त सिद्धान्त को सभी सैद्धान्तिक भौतिकविद् लगभग पिछले तीस वर्षों से भौतिकी का आधारभूत सिद्धान्त मानते आए थे। तीन दशकों से यह नियम सभी भौतिकीय सिद्धान्तों में स्थान पाता आ रहा था। इस सिद्धान्त को इतनी पूर्णव्यापी मान्यता प्राप्त थी कि वैज्ञानिकों के लिए 'समता के सिद्धान्त' में सन्देह करना 'गुरुत्वाकर्षण के नियम' में सन्देह करने के समान, अतः असम्भव, था।

फिर भी कुछ लोग सन्देह करने लगे थे। उनके सन्देह का एक कारण यह था कि जब वे के-मेसनों (जिनकी खोज सन् १९५२–५३ में हुई थी) के विघटन का प्रेक्षण करते थे तो उसके परिणाम वे नहीं होते थे जो समता के सिद्धान्त के अनुसार होने चाहिए थे। डा० ली और यांग ने इस चुनौती को स्वीकार किया और 'समता' से सम्बद्ध सम्पूर्ण प्रायोगिक जानकारी की व्यापक छानबीन करने के इरादे से एक व्यवस्थित अनुसंधान प्रारम्भ किया, और इस सिद्धान्त में पोल-पट्टी पाकर वे

आश्चर्यचकित रह गए। इस सिद्धान्त को मान्यता देनेवाला ज्ञान अधूरा था। इसलिए उन्होंने दृढ़तापूर्वक इस बातपर बल दिया कि समता का सिद्धान्त त्रुटिपूर्ण है। उन्होंने अपनी परिकल्पना का परीक्षण करने के लिए दो प्रकार के प्रयोगों का सुझाव दिया—(१) पाइ और मुअन (Pi & muon) मेसनों पर; (२) बीटा किरणों पर। डा० वू ने इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रयोग में बीटा किरणों पर प्रयोग करने का काम अपने हाथ में लिया।

समता के नियम को संक्षेप में इस प्रकार समझा जा सकता है: इस नियम के अनुसार, नाभिकीय जगत् में किसी पदार्थ और उसके दर्पण प्रतिबिम्ब का व्यवहार एक-सा होता है। दर्पण प्रतिबिम्ब के व्यवहार को समझने के लिए दर्पण के सामने खड़े हो जाइए। एक हाथ में कागपेंच रखिए और दूसरे में काग-लगी बोतल। अब कागपेंच को काग में लगाकर बायीं ओर से दाहिनी ओर घुमाइए। तब तक घुमाते रहिए जब तक कि काग बाहर न निकल आए। दर्पण में आपको ऐसा लगेगा जैसे आप कागपेंच को दाहिनी ओर से बायीं ओर घुमा रहे हों—और काग बोतल से बाहर निकल आया हो। लेकिन अगर आप वास्तव में कागपेंच को काग में लगाकर दाहिनी ओर से बायीं ओर घुमाएं तो आपको पता चलेगा कि इस तरह घुमाने से कागपेंच काग के अन्दर जाता ही नहीं है, अर्थात् आपको दिखाई देनेवाला दर्पण-प्रतिबिम्ब का व्यवहार कागपेंच के वास्तविक व्यवहार से ठीक उल्टा है।

समता का नियम कहता था कि अदृश्य नाभिकीय संरचनाओं में पदार्थ और उसके दर्पण-प्रतिबिंब का 'वास्तविक' व्यवहार समरूप होता है। डा० वू अपने प्रयोगों से इस बात का निश्चय करना चाहती थी कि क्या नाभिकीय संरचनाओं में इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि कागपेंच का घुमाव, नाभिक का स्पिन, किस तरफ को है, और हर हाल में काग वास्तव में बोतल से बाहर निकल आता है, अर्थात् क्या क्षय के दौरान कण नाभिक से दूर की तरफ उड़ते हैं।

यह एक बड़ा ही जटिल और कठिन प्रयोग था, तथा इसे इस विषय के लोग ही समझ सकते हैं। डा० वू ने नेशनल ब्यूरो ऑफ स्टैंडर्ड्स के निम्न तापमान भौतिकी ग्रुप से सहयोग मांगा, और उक्त ब्यूरो के रेडियधर्मी माप-तौल विशेषज्ञों और परमाणु शक्ति कमीशन की सहायता से आधुनिक भौतिकी का यह सर्वाधिक पेचीदा प्रयोग आरंभ किया। संक्षेप में, कोबाल्ट ६० के एक रेडियधर्मी नाभिक

लाइज़ मेट्नर
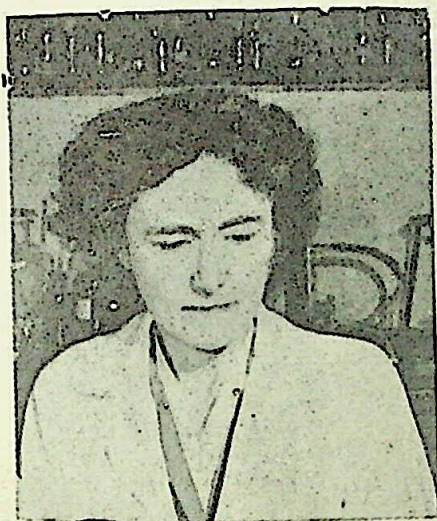
गर्टी थेरेसा कोरी

निमीलन सूक्ष्मदर्शी पर काम करती हुई हेलेन सॉयर हौग

चूहों की प्रयोगशाला में
एलिजाबेथ शुल रसेल
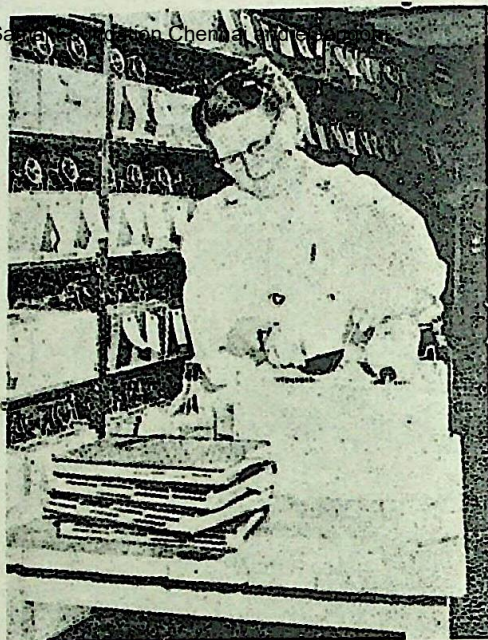
राशेल फुलर ब्राउन

च्येन श्युंग वू

एडिथ हिंकले क्विम्बी

अपने काम में लगी
हुई फ्लोरेंस वैन स्ट्रैटन

ग्लैडिस ऐंडरसन एमर्सन
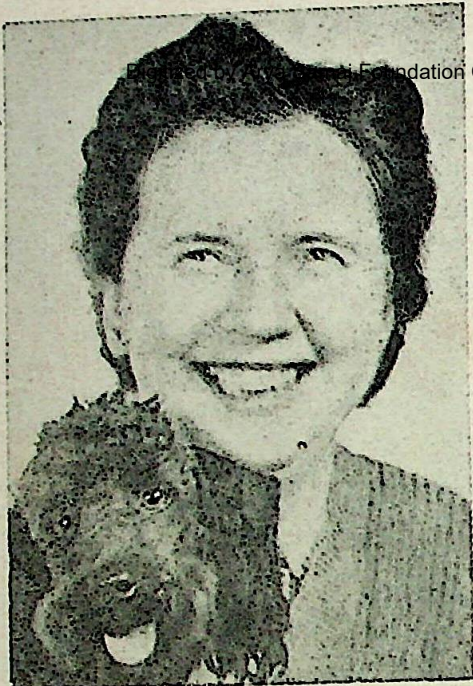
जोसेलिन क्रेन
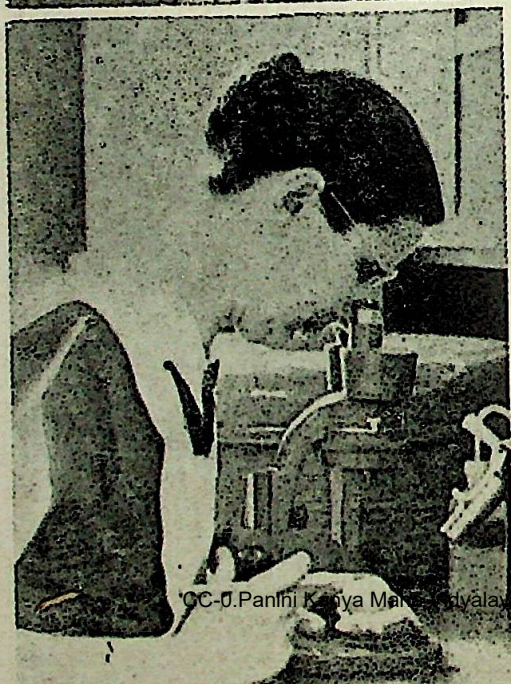
प्रयोगशाला में अंडे पर प्रयोग करती हुई डोरोथी रुडनिक

को एक ऐसे संश्लिष्ट शीतलन और निर्वात तन्त्र में रख दिया जो परम शून्य (अर्थात्—४५९ डिग्री फॉरेनहाइट) से ०·०१ डिग्री ऊपर का तापक्रम उत्पन्न करने में सक्षम था। इस तापमान में ऊष्मीय गति (Thermal Motion) इतनी घट जाती है कि एक चुंवकीय क्षेत्र के प्रयोग से कोवाल्ट के घूर्णमान नाभिकों को छोटे चुंवकों की भांति, चुंबकीय क्षेत्र के समानांतर पंक्तिवद्ध किया जा सकता है। इस उपकरण में एक और यंत्र—एक स्फुरण-पटल—भी सम्मिलित था जो पंक्तिबद्ध कोवाल्ट के नाभिकों के विघटन के समय उनमें से उत्सर्जित इलेक्ट्रोनों को गिनता चलता था।

जब यह गिनती की गई तो समता का नियम गलत साबित हो गया। स्पेन की दिशा के मुकावले उसकी विरोधी दिशा में उत्सर्जित होनेवाले इलेक्ट्रोनों की संख्या कहीं अधिक थी—इतनी अधिक कि यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो गया कि इलेक्ट्रोन अधिकतर कोबाल्ट ६० के स्पिन-अक्ष की विरोधी दिशा में ही बढ़ते हैं। उनकी दिशा पूर्वनिर्धारित होती है, जैसेकि कागपेंच के निचले हिस्से का लहरिया निर्धारित करता है कि कागपेंच को दाहिनी ओर घुमाया जाए या बायीं ओर। बायीं ओर को घूमनेवाला कागपेंच भी बनाया जा सकता है, और वह दाहिनी ओर से बायीं ओर को घूमकर काग को बोतल से बाहर निकालेगा। अगर हम वैज्ञानिक की भाषा में कहें तो डा० वू और उनके सहयोगियों के इस सफल प्रयोग से यह सिद्ध होता है कि इलेक्ट्रोन किसी भी दिशा में उत्सर्जित हो सकते हैं। आरम्भ में इन कणों को दक्षिणवर्ती या वामावर्ती कहा गया होगा। वास्तव में ये इलेक्ट्रोन घूर्णाक्ष के साथ दाहिनी अथवा बायीं ओर बढ़ते हैं और अपने घूर्णन या स्पिन की विपरीत दिशा में उत्सर्जित होते हैं।

जब इस सिद्धांत की स्थापना में डा० वू के योगदान का पता चला तो उसे उच्च सम्मान प्रदान किया गया। उसके दोनों देशबन्धु वैज्ञानिकों अर्थात् डा० ली और डा० यांग को इसी सिद्धांत पर भौतिकी में नोवल पुरस्कार प्रदान किया गया। प्रिंसटन विश्वविद्यालय द्वारा ऑनरेरी डाक्टरेट प्रदान किए जाने का जिक्र पहले किया जा चुका है। वह राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी की सातवीं महिला सदस्य बनाई गई। तब यह अकादमी अपने जीवन के सौ वर्ष पूरे करनेवाली थी। उसे कोलंबिया में पूर्ण प्रोफेसर बना दिया गया। साथ ही, उसे 'ऐकेडेमिया सिनिका' (चीनी विज्ञान अकादमी) का सदस्य चुन लिया गया। सन् १९५८ में उसे राष्ट्रीय

विज्ञान पुरस्कार पानेवाले छात्रों के सम्मुख भाषण देने के लिए आमंत्रित किया गया। विद्यार्थियों के लिए उसका मुख्य संदेश यह था कि उनमें शंका करने का साहस होना चाहिए। उसने कहा, "समता के नियम का खंडन इस बात का प्रमाण है कि विज्ञान स्थिर नहीं है बल्कि सतत विकासोन्मुख और गतिशील है। चिर-काल से चली आई स्थापनाओं में शंका करने और उनके औचित्य को परखने और प्रमाण एकत्र करने की अनवरत खोज से ही विज्ञान का रथ आगे बढ़ता है।"

अपनी कक्षाओं और प्रयोगशालाओं में ग्रेजुएट छात्रों में दूसरे देशों की लड़कियों का बहुमत देखकर उसके अपने मन में यह शंका उठती है कि अमरीका शायद भौतिकी के क्षेत्र में अपनी नवयुवतियों की क्षमताओं का ठीक से विकास नहीं कर पा रहा है। उसकी समझ में नहीं आता कि भौतिकी की ओर आकृष्ट होनेवाली अमरीकी नवयुवतियों की संख्या इतनी कम क्यों है। वह यह नहीं मानती कि अमरीकी लड़कियों में इस क्षेत्र में प्रतिभा की कमी है, क्योंकि वह देखती है दूसरे देशों की लड़कियों में इस प्रतिभा की कमी नहीं है। उसका विचार है कि सामाजिक या बौद्धिक जीवन में ऐसी प्रवृत्तियों को लेकर चलना अनुचित है जो युवा पीढ़ियों की जन्मजात प्रतिभा का गला घोंट दें, उसका पति भौतिकविद् है, और उनके पुत्र को अपनी जन्मजात क्षमताओं को भौतिकी, या किसी भी दूसरे क्षेत्र में विकसित करने में अपने मां-बाप का पूरा सहयोग प्राप्त होगा। वह खुद महसूस करती है कि नाभिकीय भौतिकी के क्षेत्र में किसी भी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति को संतोष-लाभ हो सकता है।

एडिथ हिंकले क्विम्बी

एडिथ क्विम्बी की कहानी उस लड़की की कहानी है जो अमरीका के मध्य-पश्चिम से प्रकृत्या जिज्ञासु मन लेकर शिक्षा के लिए सुदूर पश्चिम और फिर पूर्व की ओर आई, और यहां आकर उसने अपनी शिक्षा का प्रयोग विज्ञान के एक नवीन क्षेत्र अर्थात् विकिरण भौतिकी के निर्माण में किया। आज अमरीका के प्रत्येक वर्ग में उसके शोधकार्य के लाभदायक परिणाम पहुंच चुके हैं। जब भी किसी दन्त-विशेषज्ञ या दूसरे किसी डाक्टर के यहां दांत या शरीर के किन्हीं दूसरे अंगों की एक्स-रे परीक्षा होती है, जब भी किसी अस्पताल में किसी प्रकार के रेडियम या किकिरण से उपचार किया जाता है तब एडिथ क्विम्बी के विकिरण विज्ञान-विषयक योगदान के किसी न किसी पक्ष का उपभोग अवश्य किया जाता है। अकेले अथवा किसीके साथ लिखी गई अपनी पाठ्य-पुस्तकों से उसने इतने अधिक डाक्टरों को पढ़ाया है कि उसकी बराबरी करनेवाले लोग अमरीका में गिने-चुने हैं।

सन् १९०४ में जबकि एडिथ हिंकले अपने जन्म-स्थान रौकफोर्ड, इलिनोइस, के ग्रामर स्कूल से ग्रेजुएट हुई तब इस बात की चर्चा चलनी आरम्भ ही हुई थी कि बीमारियों का इलाज करने के लिए एक्स-रे और रेडियम का प्रयोग संभव है, और वह भी दुनिया के गिने-चुने चिकित्सा-केन्द्रों में। आजकल की भांति तब स्कूलों में बच्चों को दांत या छाती के एक्स-रे के बारे में कुछ पता नहीं था। इस तथ्य का कुछ ही वर्ष पहले पता चला था कि धरती की पपड़ी में निहित रेडियधर्मी कच्ची धातुओं से एक प्रकार की शक्तिशाली किरणें निर्गत होती हैं। तब किसे पता था कि अंततः इन किरणों से नवीन वैज्ञानिक जानकारी मिलेगी और इस नवीन ज्ञान को हाईस्कूलों व कॉलेजों की पाठ्य-पुस्तकों द्वारा सर्वत्र पहुंचाया जाएगा। लेकिन जब एडिथ हाईस्कूल में जाने काबिल हुई तो हिंकले परिवार बोइस, ईदाहो, में चला आया। बोइस में भौतिकी और रसायन

के जो पाठ्यक्रम उसे पढ़ने पड़े वे उस ज़माने को देखते हुए तो कहीं अच्छे थे लेकिन आज उन्हें 'उन्नीसवीं सदी का विज्ञान' ही कहा जाएगा। रेडियधर्मी युग अभी जनमा ही था और उसके परिणाम अभी हाईस्कूल की पाठ्य-पुस्तकों में नहीं पहुंचे थे।

यही बात किसी हद तक वालावाला-स्थित ह्विटमैन कॉलेज में पढ़ाई जाने-वाली भौतिकी के बारे में भी सच थी, जहां उसने भौतिकी और गणित को अपना प्रमुख विषय चुना, यद्यपि सन् १९१२ में वहां से ग्रेजुएट होने के पूर्व उसे अपनी प्रयोगशाला में एक प्रयोग रेडियम से और दुसरा एक्स-रे से करना पड़ा था। अतः यदि एडिथ क्विम्बी का मस्तिष्क जन्मजात रूप से तीक्ष्ण और जिज्ञासु न होता, तो अधिक संभावना इसी बात की थी कि वह भी अपने ज़माने की हज़ारों नव-युवतियों की भांति विज्ञान की एक ऐसी अध्यापिका बनकर रह जाती जो चारों ओर हो रही वैज्ञानिक प्रगति से परिचय-मात्र करके संतुष्ट रहती हैं। अधिक संभावना इसी बात की थी कि उसकी गणना उन वैज्ञानिकों में कभी न हो पाती जो किसी छोटे, किन्तु महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में वैज्ञानिक प्रगति को अपने प्रयत्नों से संभव बनाते हैं।

वह अपने मां-बाप की पहली सन्तान थी। सौभाग्य से उसे ऐसा पिता मिला जो उसके सतत जिज्ञासु मन के प्रति अत्यधिक सहानुभूतिशील था। एडिथ ऐसी बच्ची थी जो हर समय, क्यों, क्या और कैसे आदि सवालों के जवाब-तलब करती रहती थी, और उसके पिता ने उसे कभी सवाल करने पर झिड़का नहीं। जिन सवालों का जवाब वह खुद नहीं दे पाता था, या समझता था कि बच्ची इन सवालों के जवाब खुद ढूंढ़ सकती है, उनके लिए वह एडिथ को अपने प्रश्नों के उत्तर अन्यत्र ढूंढ़ लेने के लिए प्रेरित करता था। यह भी उसका सौभाग्य था कि हाईस्कूल में उसे विज्ञान का एक ऐसा शिक्षक मिल गया जिसने रसायन और भौतिकी में उसकी दिलचस्पी पैदा की और प्रयोगशाला में अपने सवालों का जवाब खुद ही ढूंढ़ निकालने की तरीका सिखाया। शायद अपने इन्हीं अध्यापक मि० रौडेन बॉग के प्रभाव के कारण उसने कॉलेज में भौतिकी और गणित को अपना प्रमुख विषय चुना।

फिर ह्विटमैन कॉलेज में भी वह निश्चित रूप से भाग्यशाली सिद्ध हुई। चारों वर्ष उसे ट्यूशन-छात्रवृत्ति ही नहीं मिली, बल्कि सौभाग्य से वह एक ऐसे अमरीकी कॉलेज में पढ़ती थी जो न बहुत छोटा था न बहुत बड़ा, जिसमें सह-शिक्षा थी,

शिक्षा का स्तर ऊंचा था और शिक्षकों और छात्रों में सद्भाव था। फलतः उसने वहां से बी० एस० पास किया। भौतिकी के अपने ज्ञान को सतही समझने के कारण उसके मन में आगे पढ़ने की इच्छा उत्पन्न हुई। इसके लिए वह ह्विटमैन फैकल्टी, विशेष रूप से उससे सलाहकार और गणित के प्रोफेसर ब्रैटन, जो बाद में कॉलेज के प्रेसिडेंट बने, और भौतिकी के शिक्षक प्रो० ब्राउन का आभार मानती है कि उन्होंने उसे गणित और भौतिकी को अपने प्रमुख विषय चुनने के लिए प्रेरित किया और प्रश्न करके विषय को भली भांति समझने के लिए उसे सदैव उत्साहित किया। उसके पहले किसी लड़की ने ये विषय नहीं लिए थे।

हिंकले परिवार की स्थिति साधारण थी और छोटे बच्चों के लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा आदि का भी ध्यान रखना था। इसलिए, अब यह ज़रूरी हो गया था कि परिवार की सबसे बड़ी संतान होने के नाते एडिथ हिंकले कमाना शुरू करे। उसका रुझान और विचार पढ़ाने की ओर था, इसलिए उसने एक हाईस्कूल में रसायन और भौतिकी के शिक्षक के पद पर नौकरी कर ली। दो साल बाद उसे कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में एक टीचिंग फेलोशिप मिल गई और वह भौतिकी में एम० ए० करने के इरादे से वहां चली गई। विश्वविद्यालय में पहले वर्ष के अंत में उसने अपने सहपाठी ग्रेजुएट-विद्यार्थी शिर्ले एल० क्विम्बी से विवाह कर लिया। अगले वर्ष के अंत में उसने एम० ए० कर लिया, और उससे अगले वर्ष सितम्बर में क्विम्बी-दंपती बर्कले से कोई पचास मील पूर्व एंटियोक, कैलिफोर्निया, चले गए। यहां शिर्ले क्विम्बी को हाईस्कूल में विज्ञान के शिक्षक का पद मिल गया था। एडिथ ने अपनी घर-गृहस्थी संभाली। खाना पकाने में उसकी खास दिलचस्पी थी। रसोई एक ऐसी प्रयोगशाला है जिसमें पाक-विद्या की पुस्तकें रहनेवाली गृहिणी की अपेक्षा नई सूझ-बूझवाली महिला को अधिक सफलता मिलती है।

निश्चय ही इस बिंदु तक एडिथ क्विम्बी के जीवन में कोई ऐसी घटना नहीं घटी थी जो उसके ज़माने की चुस्त युवा ग्रेजुएट के लिए असाधारण कही जा सके। कोई आश्चर्य की बात न होती यदि काली आंखोंवाली, पांच फुट आठ इंच लंबी, सुदर्शन, सुनहरे-घने बालोंवाली यह सहज-प्रसन्न महिला उन सैकड़ों युवतियों में से एक बनकर रह जाती जो कॉलेज से निकलकर पढ़ाने के लिए राज़ी हो जाती हैं, किंतु यदि उन्हें कोई ऐसा सुयोग्य पति मिल जाए जो उनसे नौकरी न कराना चाहे तो पढ़ाना छोड़ने के लिए भी तैयार रहती हैं। इस तथ्य में भी कोई

असाधारणता न थी कि जब वे एंटियोक में थे, और अमरीका प्रथम विश्वयुद्ध में शामिल हो गया, तो शिर्ले क्विम्बी नौसेना में भरती हो गया और एडिथ अपने पति के स्थान पर अध्यापिका हो गई। न इस बात में ही कोई विचित्रता थी कि जब शिर्ले क्विम्बी को युद्ध-समाप्ति के बाद न्यू लंडन, कनेक्टीकट, में नौसैनिक अड्डे पर पनडुब्बियों का पता लगाने के कार्य के लिए एक वर्ष और रोक लिया गया तो एडिथ क्विम्बी ने एंटियोकवाली नौकरी छोड़ दी और अपने पति के पास जाकर एक बार फिर अपनी गृहस्थी में मगन हो गई।

जब नवयुवक शिर्ले क्विम्बी सेवामुक्त हुआ तो उसके मन में भौतिकी में पी-एच० डी० करने की बड़ी इच्छा थी। उन दिनों 'जी० आई० बिल ऑफ राइट्स' जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी, इसलिए प्रथम विश्वयुद्ध में भाग लेनेवाले सैनिक के नाते उसे उच्च शिक्षा के लिए आर्थिक सहायता नहीं मिल सकती थी। अधिक से अधिक यह हो सकता था कि डाक्टरेट का काम करने के साथ-साथ उसे एक अंशकालिक प्रशिक्षक की नौकरी मिल जाती जिससे उसे अपने अध्ययन के दौरान प्रति वर्ष १,००० डालर वार्षिक की आय हो जाती। चूंकि इस आय से यह मुमकिन नहीं था कि दो आदमी न्यूयार्क में ढंग से गुज़र-बसर कर सकें, इसलिए एक ही रास्ता बचा था, और वह यह कि एडिथ क्विम्बी कहीं नौकरी कर ले। उन्हें पता चला कि कैंसर और समवर्गी रोगों के लिए न्यूयार्क सिटी मेमोरियल हॉस्पिटल के प्रमुख भौतिकविद् डा० फैला हाल ही में सैन्य-सेवा से वापस लौटे हैं और उनकी योजना इस अस्पताल में विकिरण-विज्ञान की एक प्रयोगशाला खोलने की है। उन्हें यह भी पता चला कि डा० फैलिया को एक सहायक भौतिकविद् की ज़रूरत है। एडिथ क्विम्बी की योग्यताओं से परिचित किसी व्यक्ति ने डा० फैलिया से उसके लिए सिफारिश की।

इस प्रकार के कार्य के लिए किसी महिला को नियुक्त करने का विचार कुछ नया-सा था। उन दिनों अमरीका में एक भी स्त्री चिकित्सीय-भौतिक अनुसंधान में काम नहीं कर रही थी। परंतु शिक्षा की दृष्टि से एडिथ क्विम्बी इस पद के लिए विशेष रूप से योग्य थी, और डा० फैला को औरतों के साथ काम करने में कोई एतराज़ नहीं था, फलतः एडिथ को वह पद मिल सका। उसने डा० फैला के साथ काम सन् १९१९ में शुरू किया था और आज तक वे दोनों साथ-साथ वैज्ञानिक शोध में जुटे हुए हैं।

जिस समय इन दोनों ने अपना काम शुरू किया उस समय विकिरण-भौतिकी (Radiological Physics) नाम के किसी विज्ञान का अस्तित्व नहीं था, यद्यपि कुछ अस्पतालों में विकिरण-चिकित्सा (Radiotherapy) अर्थात् बीमारों के इलाज में एक्स-रे और रेडियम के प्रयोग की व्यवस्था की जा चुकी थी। जब इन चीज़ों का प्रयोग कुशल डाक्टर करते थे तो बीमारी को मिटाने में उन्हें आश्चर्य-जनक सफलता मिलती थी, किन्तु जिस तरह के उपकरण और टैक्नीशियन उन दिनों उपलब्ध थे उन्हें देखते हुए इन चीज़ों का प्रयोग मरीज़ों और डाक्टरों दोनों के ही लिए खतरे से खाली नहीं था। इस स्थिति में कुछ भौतिकविद् चिकित्सकों के सहयोग से एक नई दिशा में प्रयोग कर रहे थे। उनका उद्देश्य यह पता लगाना था कि एक्स-रे और रेडियम के प्रयोग में भौतिकी के नियम किस प्रकार लागू किए जा सकते हैं, और उनके इस अनुसंधान का लाभ चिकित्सक किस प्रकार उठा सकते हैं।

कुछ ही दिनों में यह सिद्ध हो गया कि उपयुक्त विकिरण-चिकित्सा के लिए चिकित्सा-क्षेत्र में दो नये प्रकार के विशेषज्ञों को प्रशिक्षित करना पड़ेगा—विकिरण-चिकित्सक और विकिरण-भौतिकविद्। विकिरण-चिकित्सक के लिए यह ज़रूरी है कि वह एक ऐसा चिकित्सक हो जो बीमारियों का निदान कर सके, और शरीर की विशेष स्थितियों में विशेष खुराकों में उचित दवाएं दे सके। विकिरण-भौतिकविद् के लिए ग्रेजुएट भौतिकविद् होना ज़रूरी है ताकि वह विकिरण की सही माप कर सके ताकि चिकित्सक मरीज़ को सही मात्रा में विकिरण दे सके। इस बात का ध्यान रखना भी उसीका काम है कि किरण-उपचार में प्रयुक्त उपकरण मरीज़ों को उनके लिए विशेष रूप से नियत खुराकें देने में कोई चूक न करे ताकि मरीज़ों का उन्हें विकिरण देनेवालों के लिए खतरा पैदा न हो सके।

जब मिसेज़ क्विम्बी ने डा० फैला के सहायक भौतिकविद् के रूप में काम शुरू किया तो उन दिनों रेडियम इतने कम परिमाण में प्राप्त था, और इतना अधिक महंगा था कि मेमोरियल हॉस्पिटल की गिनती उन थोड़े-से संस्थानों में होती थी जिनके पास चिकित्सा के अनुसंधान-क्षेत्र में भौतिक शोध में प्रयोग करने के लिए पर्याप्त मात्रा में रेडियम था। अमरीका में उत्पन्न रेडियम इस प्रकार के लिए सन् १९१३ से पूर्व प्राप्त नहीं था, और अमरीकी काली धातुओं से रेडियम

को अलग करना और फिर उसे परिशुद्ध करना इतनी लंबी और दुष्कर प्रक्रिया थी कि अमरीका में सर्वप्रथम उत्पन्न किया गया रेडियम १,२०,००० डालर प्रति ग्राम के हिसाब से बिका था। मिसेज़ क्विम्बी के काम शुरू करने के कुल तीन वर्ष पहले सन् १९१६ में चिकित्सकों ने रेडियम और विकिरण को आयनित करनेवाले अन्य साधनों के वैज्ञानिक अध्ययन को उनके भौतिक गुणों और चिकित्सा-क्षेत्र में उनके प्रयोग के संदर्भ में आगे बढ़ाने के उद्देश्य से 'अमरीकन रेडियम सोसाइटी' की स्थापना की थी, जिसकी पूरी सदस्यता केवल चिकित्सक ही प्राप्त कर सकते थे।

इस सबसे यह ज़ाहिर होता है कि तीस साल से भी कम अवधि की एम० ए० पास और हाईस्कूल में कुछ वर्ष पढ़ाने का अनुभव-प्राप्त मिसेज़ क्विम्बी इस नये विकिरण-विज्ञान की पहली मंज़िल पर एक मज़दूर के रूप में ही स्वीकार की गई थी—विकिरण-विज्ञान, यानी विज्ञान की वह शाखा जिसका सम्बन्ध विकिरण-ऊर्जा (Radiant Energy) और रोगों के निदान व उनके उपचार में उसके प्रयोग से है। २१ वर्ष बाद अपने ही विश्वविद्यालय से विज्ञान में ऑनरेरी पी-एच० डी० प्राप्त डा० एडिथ क्विम्बी 'अमरीकन रेडियम सोसाइटी' की एक बैठक में उसका सर्वोच्च सम्मान जेनवे पदक प्राप्त करने के लिए खड़ी हुई। एक वर्ष पहले इस पदक को प्राप्त करनेवाले डा० फैला को छोड़कर वह प्रथम वैज्ञानिक थी, जिसे एम० डी० की डिग्री न होने पर भी, यह पदक प्रदान किया गया था। इस पदक को प्राप्त करनेवाली वह पहली और अंतिम महिला थी। इसके अलावा ११ वर्ष बाद सन् १९५१ में इस सोसाइटी ने उसे पूर्ण सदस्यता प्रदान करते हुए पहली बार किसी ऐसे वैज्ञानिक को अपना पूर्ण सदस्य बनाया जिसके पास एम० डी० की डिग्री नहीं थी, यद्यपि यह सच है कि सोसाइटी को अपने लक्ष्य की सिद्धि के लिए उच्च योग्यताप्राप्त भौतिकविदों की आवश्यकता पड़ती रहती थी।

मेमोरियल हॉस्पिटल में, सहायक और बाद को सहयोगी, भौतिकविद् के रूप में २१ वर्ष के काम में डा० क्विम्बी का विशिष्ट योगदान यह था कि उसने विकिरण के विभिन्न रूपों के उत्पादन और पैठ की माप की, ताकि विकिरण-चिकित्सा के लिए सही खूराकें निर्धारित की जा सकें। यद्यपि डाक्टर लोग इस बात को जानते थे कि किरणें अपने सामने खुले हुए मानव-शरीर में पैठ जाती हैं,

और कुछ किरणों की पैंठ दूसरी किरणों से अधिक गहरी होती है, मगर यह किसीको ठीक-ठीक नहीं मालूम था कि ये किरणें कितने गहरे और कितने क्षेत्र में पैंठती हैं। उन दिनों जब कोई डॉक्टर विकिरण-चिकित्सक से प्रार्थना करता था तो उसका रूप कुछ इस प्रकार होता था, "मेरे मरीज़ को काफी मात्रा में विकिरण दे दीजिए, मगर उसकी त्वचा को नुकसान न पहुंचने पाए।" अक्सर उसकी समझ में यह नहीं आता था कि वह विकिरण की मात्रा को और अधिक निश्चित और स्पष्ट कैसे करे।

डॉक्टर स्मिथ्वी ने विशेष रूप से इन सवालों के जवाब ढूंढ़ निकालने की कोशिश की : किरणीयन (Irradiation) की विभिन्न स्थितियों में किसी विशेष स्रोत से कितना विकिरण उत्सर्जित होता है, इसमें से कितना विकिरण हवा में बंट जाता है, कितना त्वचा में पहुंचता है, और कितना शरीर में। उसने जीवित शरीर में विकिरण की प्रतिक्रियाओं पर भौतिकी के नियम लागू किए। और इस प्रकार, उसकी गणना हमारे अग्रणी जीव भौतिकविदों में होने लगी। सन् १९२०–४० के बीच के समय में उसने अपने शोध के निष्कर्षों का हवाला देते हुए वैज्ञानिक पत्रिकाओं में ५० से अधिक लेख प्रकाशित कराए। इन लेखों में व्यावहारिक ज्ञान निहित था जिसे इस प्रकार के चिकित्सा-संस्थानों में अविलम्ब उपयोग में लाया जा सकता था। सन् १९४० में जब इस कार्य पर उसे जेनवे पदक मिला था, उस अवसर पर उसने जो लेख पढ़ा था उसमें उन सब खोजों और उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण था, लेकिन उसके बाद भी वर्षों तक वह नाप-तोल और खोज-बीन के काम में लगी रही।

हर साल जैसे-जैसे चिकित्सक न्यूनाधिक सफलता के साथ विकिरण-चिकित्सा का प्रयोग करते गए, वैसे-वैसे नई बातें प्रकाश में आती रहीं। इन चिकित्सकों के लिए एक भौतिकविद् का सहयोग कितना अमूल्य है, इस बात को एक सामान्य जन भी समझ सकता है। उदाहरण के लिए, विकिरण-चिकित्सा के आरम्भिक दिनों में यदि कोई चिकित्सक किन्हीं दो मरीज़ों को एक ही प्रकार के दो अर्बुदों के लिए एक ही विकिरण-उद्भासन में रखता था और यदि एक मरीज़ का अर्बुद त्वचा से २ सेंटीमीटर नीचे और दूसरे का त्वचा से ७ सेंटीमीटर गहरा होता था, तो वह चिकित्सक यह तो समझ लेता था कि इन दोनों अर्बुदों पर उसकी चिकित्सा का प्रभाव एक-सा नहीं पड़ेगा; लेकिन उसका अपना प्रशिक्षण या ज्ञान इतना

नहीं होता था कि वह यह समझ सके कि दोनों मरीजों की चिकित्सा में कैसा परिवर्तन करने से दोनों अर्बुदों पर एक-सा प्रभाव पड़ेगा।

डॉ० क्विम्बी द्वारा की गई ठीक-ठीक नाप-तोल और गणना से यह प्रदर्शित किया जा सकता था कि इनमें से एक अर्बुद को दूसरे से दुगुने विकिरण की आवश्यकता पड़ सकती है। किसी अर्बुद को विकिरण की कितनी मात्रा दी जाए यह इस बात पर निर्भर करता है कि वह त्वचा से कितनी नीचाई पर है, किरणीयन प्राप्त करनेवाला क्षेत्र कितना बड़ा है, शरीर से एक्स-रे नली कितनी दूरी पर है, और इसी तरह की और कुछ बातें इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। एक बार ये तथा इनसे संबद्ध दूसरी बातें सिद्ध हो जाने के बाद लोगों के लिए यह समझना आसान हो गया कि १०० पौंड वज़न वाले एक बीमार पर एक विशेष विकिरण-उद्भासन १७० पौंड वज़न वाले बीमार के मुकाबले कहीं गम्भीर प्रतिक्रिया उत्पन्न कर सकता है।

यदि डॉक्टरों ने एडिथ क्विम्बी को यह पदक प्रदान किया तो इससे कोई अचरज की बात नहीं है, क्योंकि वह भी पिछले बीस वर्षों से उन्हें सही और ढेर-से आंकड़े देती चली आ रही थी, जिनकी मदद से डॉक्टरों के लिए बीमारियों में सही-सही विकिरण देकर उनका इलाज करना सम्भव हो सका था। वास्तव में इनमें से कुछ डॉक्टरों ने उसे पदक देने से भी बड़ा एक और काम किया; उन्होंने उसे कार्नेल मेडिकल स्कूल में विकिरण-विज्ञान के असिस्टेंट प्रोफेसर के पद पर नियुक्त करा दिया। इस स्कूल का मेमोरियल हॉस्पिटल से घनिष्ठ सम्बन्ध था जहां कि वह डॉ० फैला के साथ काम कर रही थी।

उसे यह नियुक्ति सन् १९४१ में मिली। इसी वर्ष उसे 'रेडियोलॉजिकल सोसाइटी ऑफ नॉर्थ अमेरिका' का स्वर्ण-पदक प्राप्त हुआ जो उससे पहले मेरी क्यूरी के अलावा कभी किसी महिला को प्रदान नहीं किया गया था। इस स्वर्ण पदक पर लिखित वाक्यांश "विकिरण विज्ञान के क्षेत्र में अनवरत सेवा" से स्पष्ट होता है कि उसके काम "विकिरण की मात्रा की समस्या का समाधान" के कारण प्रत्येक विकिरणविद् ही नहीं, अगणित मरीज़ भी उसके ऋणी हो गए थे।

कार्नेल फैक्टरी में नियुक्त हो जाने के बाद उसे कक्षा और प्रयोगशाला में डॉक्टरों को विकिरणविज्ञान पढ़ाने का अवसर मिला। वह स्वयं विकिरणविज्ञान के निर्माताओं में से एक थी। चिकित्सा के क्षेत्र में शल्य-चिकित्सा, स्त्री-रोग-विज्ञान,

बाल-रोग-विज्ञान और दूसरे विशिष्ट विज्ञानों की भांति विकिरण विज्ञान भी अब एक विशिष्ट विज्ञान बन चुका था, और इसके कुछ भौतिक पक्षों के अध्यापन के लिए डॉ० क्विम्बी को अन्य डॉक्टरों की अपेक्षा विशेष योग्यता प्राप्त थी। इसके बाद उसके जीवन में एक और बड़ा सुअवसर आया जबकि सन् १९४३ में उसे कोलम्बिया विश्वविद्यालय के कॉलेज ऑफ फिज़िशियन्स एंड सर्जन्स के, जो पी० एण्ड एस० के नाम से विख्यात है, एसोशिएट प्रोफेसर के पद पर अमंत्रित किया गया, और उसने इसे स्वीकार कर लिया। डॉ० फैला को भी इस कॉलेज ने आमंत्रित कर लिया। सन् १९५४ में उसे इस सर्वश्रेष्ठ मेडिकल स्कूल में पूरा प्रोफेसर बना दिया गया। इस वर्ष वह अमेरिकन रेडियम सोसाइटी की सभापति भी रही। इस सोसाइटी ने अमरीका में विकिरण भौतिकविद् (Radiation Physisist) और विकिरण-विशारद (Radiologist) को विकिरण विज्ञान के क्षेत्र में व्यावसायिक स्तर पर समान मानने की शुरुआत की।

अस्पतालों में विकिरण-चिकित्सा के बढ़ते हुए प्रचार के साथ-साथ सुरक्षा के उपायों का महत्त्व भी उसी अनुपात में बढ़ता गया। सन् १९४०-५० के उत्तरार्द्ध में डॉक्टरी चिकित्सा में विकिरण-समस्थानिकाओं (Radioisotopes) का भी प्रयोग होने लगा, और इस प्रकार चिकित्सा के क्षेत्र में एक्स-रे और रेडियम के अलावा एक तीसरी चीज़ भी आई जिसके प्रयोग में पहली दो चीज़ों के समान ही खतरे मौजूद थे। विकिरण-भौतिकी के इस पक्ष के बारे में जानकारी प्राप्त करने का बीड़ा भी डॉ० क्विम्बी ने उठाया और फिर एक वैज्ञानिक की सूक्ष्मता के साथ वह इस काम में जुट गई। पी० एण्ड एस० की विकिरण-समस्थानिका प्रयोगशाला की निदेशक की उसने इन तीनों चीज़ों को सभी स्तरों पर प्रयोग करने के सर्वोत्तम उपाय ढूंढ़ निकाले। उसकी शोध समस्थानिकाओं के प्रयोग तक ही सीमित नहीं थी बल्कि उसने यह भी निर्धारित किया कि जब मरीज़ों का इस तरह का इलाज किया जा रहा हो तो नर्सों को उनकी देख-भाल किस तरह करनी चाहिए, और समस्थानिका-चिकित्सा कराने के कुछ ही देर बाद यदि कोई मरीज़ मर जाए तो उसका अंतिम संस्कार करने में क्या-क्या एहतियात रखना चाहिए। इन खोजों के कारण वह अस्पतालों में होनेवाली रेडियोएक्टिव बचन-खुचन को ठिकाने लगाने और रेडियोएक्टिव उपचार के दौरान हुई दुर्घटनाओं के दुष्प्रभाव को दूर करके वहां व्यवस्था कायम करने के मामले में विशेषज्ञ मानी जाने लगी।

एडिथ क्विम्बी के जीवन को चंद पृष्ठों में प्रस्तुत और संक्षिप्त करना बड़ा कठिन है। एक प्रकार से उसके कार्यों का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराते हुए कहा जा सकता है कि एक नवीन विज्ञान की रचना में उसने तीन प्रकार से योगदान दिया : (१) मरीज़ों के लिए विकिरण की ठीक-ठीक मात्राएं निर्धारित कीं; (२) सबको यह समझाया कि विकिरण का प्रयोग करते समय उसके खतरों को कैसे दूर किया जा सकता है; (३) विकिरण-विशारद बनने के इच्छुक चिकित्सकों को विकिरण-चिकित्सा की आधारभूत भौतिकी पढ़ाई। लेकिन यह पूरी कहानी का एक पहलू-भर है, सच तो यह है कि इस विज्ञान के निर्माण में उसके व्यक्तित्व, अर्थात् उसके मानव-पक्ष का भी उतना ही महत्त्व है जितना उसके कार्य का। इस बात को इस प्रकार समझा जा सकता है :

डॉक्टरों के सहयोग में रोगियों की परिचर्या-विषयक काम करनेवाले व्यक्ति के लिए (जो खुद डॉक्टर न हो) डॉक्टरों से व्यावसायिक सहमति ले लेना बड़ी टेढ़ी खीर है। विकिरण विज्ञान में विकिरण भौतिकी को चिकित्सा-पद्धति का एक अनिवार्य अंग बनाना इसी तरह का काम था। डॉक्टर लोग अपने व्यावसायिक विशेषाधिकारों की रक्षा बड़े जोश से करते हैं, और ऐसा करने का उन्हें हक है। जहां तक रोग का सम्बन्ध है उसे ठीक करने का काम बहुत दिनों से डॉक्टर ही करते आए हैं, और बाकी लोग डॉक्टर के ही बताए काम करते हैं। फिर भी आज डॉक्टरी करने के लिए अपेक्षित ज्ञान का क्षेत्र इतना अधिक विशाल हो गया है कि अधिक से अधिक ईमानदार और परिश्रमी डॉक्टर भी इतना विशाल और विविध ज्ञान उपार्जित नहीं कर सकता।

विकिरण-विज्ञान के लिए उच्चशिक्षित भौतिकविदों और उच्चशिक्षित डॉक्टरों का सहयोग आवश्यक था, और इन दोनों को परस्पर सहयोग देते हुए भी स्वतन्त्र रूप से काम करना था। इस तथ्य को मनवाने के लिए एक खास तरह का व्यक्तित्व और भौतिकी का एक विशेषप्रकारका ज्ञानअपेक्षित था। डॉ० क्विम्बी में ऐसा व्यक्तित्व, अपेक्षित वैज्ञानिक ज्ञान और उसके प्रयोग की क्षमता—ये सभी तत्त्व विद्यमान थे। आगामी वर्षों में उसने चिकित्सा-जगत् के चोटी के नेताओं से विकिरणविदों के लिए विकिरण-चिकित्सा के क्षेत्र में व्यावसायिक समानता दिलवाने में सफलता प्राप्त की।

स्वयं डॉक्टर न होते हुए भी वह एक मेडिकल स्कूल की फैकल्टी में विकिरण

विज्ञान में विशेषज्ञ बनने के इच्छुक ग्रेजुएट डाक्टरों के शिक्षक के पद पर कार्य कर रही थी। शायद उसके इस पद ने उसके हाथ में एक प्रभावशाली शस्त्र का काम किया। उसकी कक्षा में पढ़नेवाले डाक्टर यह अच्छी तरह महसस करते थे कि उन्हें अपने व्यवसाय में अपने से कहीं अधिक उच्च गणितीय और भौतिकीय निपुणता-प्राप्त वैज्ञानिक अर्थात् विकिरण भौतिकविद् की सहायता की आवश्यकता पड़ेगी।

उसके तथा कुछ दूसरे अग्रणी भौतिकविदों के प्रयत्नों से अब भौतिकविदों के लिए एक नया व्यावसायिक क्षेत्र तैयार हो गया है। विकिरण-भौतिकविद् डाक्टरों की आवश्यकता और इच्छा के अनुसार उन्हें सहयोग देता है, मगर वह डाक्टरों की ही तरह सिर्फ अपने विभागाध्यक्ष के प्रति ही उत्तरदायी होता है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें बहुत-सी महिलाएं सुचारु रूप से काम कर रही हैं, यद्यपि बहुमत पुरुषों का ही है। इस क्षेत्र के लिए भौतिकी में पी-एच० डी० होता तो बहुत ही अच्छा है और कुछ स्नातकोत्तर कार्य भी आवश्यक है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें, आधुनिक विकिरण-चिकित्सा के उपकरणों से युक्त अस्पतालों और इसकी व्यवस्थावाले उच्चतर शिक्षा-संस्थानों की अल्प संख्या के बावजूद, प्रशिक्षित भौतिकविदों की संख्या की अपेक्षा नौकरी के सुअवसरों की संख्या कहीं अधिक है।

एडिथ क्विम्बी को इतने अधिक अवसरों पर सम्मानित किया गया है कि उन्हें यहां गिनना बहुत कठिन है, और अभी यह सिलसिला जारी ही है। पिछले दिनों सन् १९५६ में रुटगर्स विश्वविद्यालय ने उसे विज्ञान में ऑनरेरी डाक्टरेट की डिग्री प्रदान की, और १९५७ में अमेरिकन कैंसर सोसाइटी ने अपना पदक प्रदान करके उसका सम्मान किया। राष्ट्रीय स्तर पर वह परमाणु-शक्ति आयोग की रेडियोएक्टिव समस्थानिकाओं के नियन्त्रण और वितरण के लिए बनाई गई समिति तथा विकिरण से बचाव-सम्बन्धी राष्ट्रीय समिति की सदस्य बनाई गई। वह बहुत दिनों से अमेरिकन बोर्ड ऑफ रेडियोलॉजी की एक परीक्षक है। यह संस्था डाक्टरों को विकिरण-विज्ञान के विशेषण के रूप में मान्यता प्रदान करती है।

इस सबके बीच, और अपने बहुधन्धी व्यावसायिक जीवन के बावजूद एडिथ क्विम्बी को अपने व्यवसाय के बाहर के जीवन से हमेशा मोह रहा है। जैसे ही

उसके पति ने पी-एच० डी० किया (तब से आज तक डॉ० शिर्ले क्विम्बी कोलंबिया विश्वविद्यालय के भौतिकी विभाग में हैं) उन्हें ग्रिनिच गांव में एक मकान पसन्द आ गया, और तब से आज तक वे उसी मकान में रहते हैं। इस घर को बनाने में एडिथ क्विम्बी ने एक गृहिणी का कर्तव्य निभाया है, और आज भी निभाती है। घर में वह अपने व्यावसायिक जीवन से भिन्न जीवन जीती है—यहां वह पढ़ती है और ब्रिज खेलती है, अपने बहुत-से कपड़े खुद सीती है और अपने पति और मेहमानों के लिए लज़ीज़ खाना बनाने में उसे एक विशेष आनन्द आता है। घर के काम-धन्धे में उसे उतना ही मज़ा आता है जितना उन बहुत-सी औरतों को जिन्हें घर से बाहर कोई काम नहीं करना होता।

छुट्टियों में क्विम्बी-दम्पती घर से बाहर, न्यूयार्क से दूर चले जाते हैं। वे दोनों ही घूमने के बेहद शौकीन हैं और प्रायः हर साल विदेश-यात्रा करते हैं। ज़रूरी होने पर वे हवाई जहाज़ से यात्रा करते हैं, अन्यथा वे धीमे चलनेवाले जलयान को प्राथमिकता देते हैं और कहीं पहुंचने की जल्दी न करके राह का लुत्फ उठाते चलते हैं। न्यूयार्क में अदेखी चीज़ों को देखने तथा यूरोप और लैटिन अमरीका-स्थित अपने अनेक परिचितों से मिलने-जुलने से इस अग्रणी वैज्ञानिक का व्यस्त जीवन परिपूर्णता प्राप्त करता रहता है जिसके कार्य ने आज युवा वैज्ञानिकों को अनेक नये सुअवसर प्रदान किए हैं।

जोसेलिन क्रेन

उसे प्राणियों से बेहद प्यार था। प्राणी जितना छोटा होता, उसका यह प्यार उतना ही बढ़ जाता। छः वर्ष की होते-होते वह समझ गई थी कि उसे इन्हीं प्राणियों पर आजीवन काम करना है। जोसेलिन क्रेन के मन में आज भी वह स्मृति ताज़ा है। इल्ली (Caterpillar) से उसे विशेष मोह था। मकड़ियों को भी वह बहुत पसंद करती थी। आगे चलकर उसे इन्हीं पर तथा दूसरे प्राणियों पर काम करना था। अन्य लोगों की अपेक्षा उसने यह तथ्य कहीं पहले हृदयंगम कर लिया था कि इन जानवरों तथा पेड़-पौधों से इतर अन्य जीवधारियों को प्राणिवर्ग में रखा जाता है।

इस नन्ही बालिका के सभी परिचित, विशेष रूप से उसके मां-बाप, शीघ्र ही समझ गए कि उसके जन्म-दिवस या बड़े दिन के अवसर पर उसे किस प्रकार की पुस्तकें उपहार में देनी चाहिए। प्राणियों से संबद्ध हर बात में उसे आनन्द आता था। छोटे प्राणियों में उसे अपेक्षाकृत अधिक आनन्द आता था। केकड़ों, मधुमक्खियों और दूसरे छोटे-छोटे प्राणियों की तस्वीरों में (उसे आगे चलकर पता चला कि इन्हें संधिपाद कहते हैं) वह खो जाती थी। जब भी मौका मिलता वह संधियुक्त उपांगोंवाले इन सुंदर नन्हे प्राणियों की तस्वीरों पर चिंतन करती बैठी रहती थी। आज भी वह चाहती है कि काश, उसे याद आ सके कि उन चित्रों पर दृष्टि गड़ाए वह मन ही मन क्या कुछ सोचती रहती थी।

पढ़ना सीखते ही उसने विदेशों के बारे में अधिक-से अधिक जानकारी हासिल करनी शुरू कर दी। इस बार फिर उसके मां-बाप ने बुद्धिमत्तापूर्वक उसे सहयोग दिया। एशिया उसे आकृष्ट करने लगा—विशेष रूप से उसके गर्म प्रदेश—यह सम्मोहन कुछ वैसा ही था जैसा बचपन में इल्लियों का था। वह निश्चित रूप से नहीं कह सकती कि वह खुद एशिया के प्रति आकृष्ट हुई थी या उस महाद्वीप में

रहनेवाले असंख्य छोटे प्राणियों के प्रति, किन्तु इतना तो निश्चित ही है कि वह बड़ी होते ही वहां के लिए चल देना चाहती थी। उसे उत्तरी चीन या तिब्बत के उन ठंडे और निर्जन प्रदेशों ने या हिमालय की उन चोटियों ने आकर्षित नहीं किया जिनका आकर्षण पर्वतारोहण में रुचि लेनेवाले बच्चे के मन में होता। उसे पूर्व के उष्णकटिबंधीय जंगलों ने आकर्षित किया। इसके बाद उसने अफ्रीका और दक्षिण अमरीका के जंगलों की बावत सुना और उसके मन में इन महाद्वीपों में रहनेवाली हर छोटी जीवित चीज़ से साक्षात्कार करने की लालसा जाग उठी।

जोसेलिन क्रेन की कोटि के बच्चे विरले होते हैं जो इतनी छोटी उम्र में जान सकें कि उन्हें क्या करना चाहिए। देखा जाए तो जोसेलिन के साथ तो यह यूं भी नहीं होना चाहिए था क्योंकि उसके परिवार में उसके पहले इन चीज़ों में किसी-ने रुचि नहीं दिखाई थी। ऐसे बच्चे तो और भी विरले होते हैं जो वय प्राप्त होते ही अपने अभीष्ट काम में हाथ लगा दें; और ऐसा तो एकाध ही होता है जो जीवन के मध्य में पहुंचकर यह निष्कर्ष निकाले कि छः वर्ष की अवस्था में उसने जो निश्चय किया था उसके लिए वही उचित था तथा किसी दूसरे काम में उन्हें वह संतोष मिल ही नहीं सकता था, जो उन्होंने अपने जीवन में पाया। "मैं बड़भागी थी," उसका कहना है। वह महसूस करती है कि अपना काम चुनने में उसे कोई उलझन नहीं हुई क्योंकि वह अपने इसी काम में सफल सिद्ध होने के लिए ही उत्पन्न हुई थी।

बड़भागी तो वह थी, किंतु जोसेलिन क्रेन की प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा कुछ इस प्रकार की हुई कि यदि विज्ञान के किसी दूसरे विद्यार्थी को वैसी शिक्षा मिली होती तो शायद वह पिछड़ जाता। जब वह छः वर्ष की थी, और स्कूल जाने ही वाली थी, तभी उसके परिवार ने उसके जन्म-स्थान सेंट लुई को छोड़ दिया और उसके बाद अपने शेष स्कूल-जीवन में वह बार-बार स्थान बदलती ही रही। पहली छः कक्षाओं की उसकी शिक्षा ११ स्कूलों में हुई जो वाशिंगटन डी० सी० और लॉस एंजिल्स, आदि नगरों में स्थित थे। उसे हर जगह से इतनी जल्दी चल देना पड़ता था कि आज जब वह अपने अध्यापकों, स्कूल की कक्षाओं और इमारतों को याद करती है तो कुछ भूल कर जाती है, और यह एक हद तक स्वाभाविक ही है, जब वह ११ वर्ष की थी और सातवीं कक्षा के लिए तैयार थी तो उसकी मां ने उसे शिकागो के यूनिवर्सिटी स्कूल में दाखिल करा दिया। इस स्कूल में उसे उन लड़कियों के साथ चलने में कोई परेशानी नहीं हुई जिन्होंने एक ही

स्कूल में जमकर पढ़ाई की थी वर्षांत में हाई स्कूल की पढ़ाई के लिए उपयुक्त समझकर उसके अध्यापकों ने उसे आठवीं कक्षा में चढ़ा दिया। अध्यापकों का यह निर्णय उचित ही था; इस प्रकार जब सन् १६२६ में जोसेलिन ग्रेजुएट हुई तो उसकी उम्र औसत ग्रेजुएट से एक वर्ष कम अर्थात् १७ वर्ष की ही थी, और कॉलेज-प्रवेश परीक्षा में उसके इतने नंबर आ गए थे कि वह जिस कॉलेज में चाहती, प्रवेश पा सकती थी।

जिस प्रकार छः वर्ष की उम्र में उसे यह मालूम हो गया था कि वह छोटे प्राणियों पर काम करेगी, ठीक उसी प्रकार १३-१४ वर्ष की अवस्था में उसे यह भी मालूम हो गया था कि वह स्मिथ कॉलेज में पढ़ेगी। उसे याद नहीं कि उसने स्मिथ कॉलेज का नाम पहले-पहल किस सिलसिले में सुना था या वह वहां क्यों जाना चाहती थी। यूनिवर्सिटी स्कूल में उसकी अध्यापिका समझ गई थी कि उसकी रुचि प्राणिविज्ञान में है, और यद्यपि उस स्कूल में प्राणिविज्ञान नहीं पढ़ाया जाता था कि जोसेलिन की योग्यता का निश्चय कर पाना सम्भव होता, लेकिन उन्होंने उसे भौतिकी रसायन और ढेर-सा गणित आदि विषय दे दिए थे जो विज्ञान के छात्र के लिए आवश्यक माने जाते हैं, और वे सब इस तथ्य को स्वीकार करती थीं कि जोसेलिन क्रेन एक ऐसी छात्रा है जो यह समझती है कि उसे क्या करना है। उसे यह भी पता था कि प्राणिविज्ञान की पढ़ाई के लिए स्मिथ कॉलेज सर्वश्रेष्ठ है। इस प्रकार सन् १६२६ में इस नीली आंखोंवाली लम्बी, पतली, और उजले रंग की नवयुवती ने नार्थेम्पटन में पदार्पण किया। उसे ज्ञात था कि वह स्मिथ कॉलेज क्या करने आई है, भले ही कॉलेज के अधिकारियों ने दूसरे वर्ष के अंत से पहले उसे अपना प्रमुख विषय चुनने की अनुमति नहीं दी।

नई छात्रा के रूप में उसे प्राणिविज्ञान विषय दे दिया गया। उसे इस विषय में बड़ा आनन्द आया, और वह इसमें बड़ी सफल रही, मगर उसने अपने अध्ययन के शेष सभी विषयों में भी अच्छे अंक प्राप्त किए। अगले वर्ष उसने प्राणिविज्ञान का एक और कोर्स लिया और खगोलविज्ञान में भी एक कोर्स ले लिया—ताकि जंगलों की इस मायावर को तारों का भी ज्ञान हो सके। उस वर्ष उसकी फैकल्टी के परामर्शदाता ने उसे प्राणिविज्ञान में विशेष ऑनर्स कर लेने का सुझाव दिया। जब वह जूनियर इयर का काम करने के लिए तैयार हो गई तब उसने इस सुझाव को मान लिया।

जोसेलिन क्रेन आखिरी दम तक इस बात के लिए अत्यन्त कृतज्ञ रहेगी कि स्मिथ कॉलेज ने उसकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं को समझा और अपने जीवन को इच्छानुसार ढालने के लिए उसके सामने सुविधाओं का अक्षय भंडार खोल दिया। कोई एक शिक्षक नहीं, बल्कि बहुत-से शिक्षक उसे स्मिथ कॉलेज से अधिकाधिक लाभ उठाने को प्रेरित करते थे। वे अधिक से अधिक ज्ञान अर्जित करने में उसकी सहायता करते थे। कॉलेज में अपने अंतिम दो वर्षों में वहां उपलब्ध और प्राणि-वैज्ञानिक के जीवन से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से सम्बद्ध, सभी विषयों का उसने अध्ययन किया, जैसे : तुलनात्मक शरीर-रचना, विज्ञान, अवशेष विज्ञान (Paleontology), मानव विज्ञान, कीट विज्ञान और भ्रूण विज्ञान। विशेष ऑनर्स की छात्रा होने के नाते उसे अपने सीनियर इयर से पहले परीक्षा में बैठने की छूट थी। प्रति सप्ताह वह प्रोफेसरों के साथ बैठकों में भाग लेती, ऑनर्स न लेनेवाले छात्रों के काम से अतिरिक्त विशेष प्रायोगिक अध्ययन करती थी, और इस दौरान उसने अपनी मौलिक शोध पर आधारित एक प्रबन्ध भी लिखा। जोसेलिन क्रेन के लिए स्मिथ कॉलेज एक भावी प्राणि वैज्ञानिक का 'सर्व सुविधा-सम्पन्न स्वर्ग' था। उसे अंग्रेज़ी, कला और संस्कृति-विषयक दूसरी कक्षाओं में उपस्थित होकर अधिकाधिक ज्ञान अर्जित करने की अनुमति प्राप्त थी। सन् १९३० में वह फाई बीटा कैप्पा और उच्चतम ऑनर्स और प्राणिविज्ञान में ए० बी० के साथ ग्रेजुएट हुई और उसी वर्ष, तुरन्त ही वह न्यूयार्क के लिए रवाना हो गई जहां उसे न्यूयार्क जूओलॉजिकल सोसाइटी के उष्णकटिबंधीय शोध विभाग में नौकरी मिल गई थी, और तब से आज तक वह वहीं है।

उसे एक नौकरी विलियम बीब ने दी थी। अपने ज़माने के प्राणिविज्ञान के अनेक युवा छात्रों की भांति जोसेलिन भी इस रंगीन और साहसी वैज्ञानिक के साथ काम करना चाहती थी, और उसकी मां के एक मित्र ने यह प्रबन्ध किया था कि जोसेलिन अपने जूनियर इयर को बड़े दिन की छुट्टियों में एक दिन लंच पर उससे और मिसेज़ बीब से मिल ले। डा० बीब को अपने पक्ष में करना आसान नहीं था, क्योंकि वह उससे तीस वर्ष सीनियर थे और युवा वैज्ञानिकों का चयन करने का उन्हें सुदीर्घ अनुभव था। "अट्ठारह महीनों तक मुझे अनवरत श्रम करना पड़ा था," वह सुनाया करती है, "पत्र-व्यवहार से, तीन बार और मिलकर, बहुत ही अच्छे अंकों के प्रमाण-पत्र दिखलाकर, परीक्षा की कापियों और ऑनर्स के दिनों

में लिखे गए प्रबन्ध को दिखाकर बमुश्किल तमाम मैं उन्हें समझा पाई कि मैं इस योग्य हूं कि मुझे स्वेच्छ कर्मचारी के रूप में काम करने का एक मौका दिया जाए।"

उसके प्रयत्नों का परिणाम यह हुआ कि दीक्षांत समारोह के बाद बहुत दिनों तक उसे सोने के लिए समय ही न मिल पाता था। किन्तु अंतत उसे नौनसच आइलैंड, बारमूडा, में जूओलॉजिकल सोसाइटी की रिसर्च लेबोरेटरीज़ में जगह मिल गई जहां डॉ० बीब ने पिछले दिनों ही महासागर की गहराई मापने और 'नीचे तली' में रहनेवाले नन्हे प्राणियों के अपने अध्ययन-कार्य को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से अगाध मंडल (Bathysphere) का प्रयोग शुरू किया था।

मिस क्रेन मछलियों को सर्वाधिक प्रेम नहीं करती थी। मगर अगले बारह वर्षों में उसका सबसे अधिक वास्ता उन्हींसे पड़ा, क्योंकि इस अवधि में डा० बीब बारमूडा के आसपास के क्षेत्र में गहरे समुद्र की विभिन्न प्रकार की मछलियों के अध्ययन में लगे रहे। अगले दस वर्षों में वह एक अनुसंधात जीववैज्ञानिक के रूप में लगभग छः या आठ बार उसके साथ गई। इन अभियानों के समय यह दल महीनों तक बारमूडा फील्ड स्टेशन पर ठहरता था। वे रोज़ अगाध मंडल के प्रयोग से सागर की गहराइयों की खोज करने के लिए एक ऐसी नाव पर निकलते थे जो सागर के निर्दिष्ट क्षेत्र में सब जगह जा सकती थी। सागर पर विचरण करते समय वे जालों की सहायता से मछलियों के नमूने इकट्ठे करते चलते थे। जालों में इकट्ठी की गई मछलियों को बाहर से और अन्दर की तरफ से देखने से जोसेलिन क्रेन अब उनमें नये सिरे से रुचि लेने लगी थी। और जब उसके सामने ५४ इंची इस्पाती गोलक में डा० बीब के बराबरवाली सीट पर बैठकर समुद्र के हरे पानी में नीचे उतरने का प्रस्ताव आया तो उसे अपने जीवन में एक सर्वथा नई पुलक का अनुभव हुआ। एक नाव के सहारे उसका गोलक समुद्र में उतार दिया गया।

उसकी आंखें गोलक की खिड़की से सटी हुई थीं, और उस खिड़की के परे छोटे-छोटे जीव तैर रहे थे। उसने देखा, समुद्र का पानी पहले नीलिमायुक्त हरा, और फिर, कालियायुक्त नीला हो गया। फिर पानी गहरा नीला हो गया। अब छोटी-छोटी बिजलियां चमकने लगी थीं—समुद्री जीवन की वह अवदीप्ति (Luminescence) उजागर हो रही थी जो प्रकाश और वायु के अभाव में भी लाखों वर्षों से अपने अस्तित्व को बनाए हुए थी। अब अगर आप स्वयं को इस स्थिति में

रख सकते हैं तो कल्पना कर सकते हैं कि उसे कितना आनन्द आया होगा—बीव उस तिमिर-गर्भ में प्रकाश फेंक रहे थे और चारों ओर रंगीन जीव दिखाई दे रहे थे, उनमें से कुछ तो वाकई बड़े विचित्र थे। जो कुछ वह देख रही थी उससे भी कहीं अधिक बीब का वह विवरण था जो वह बिजली की सी तेज़ी अगाध मंडल में लगे हुए टेलीफोन पर दे रहे थे। सागर-तट पर बैठे वैज्ञानिक उस विवरण को सुनकर उसकी रिपोर्ट तैयार करते जा रहे थे। उनमें चीज़ों को देखते ही उन्हें पहचान लेने की अद्‌भुत क्षमता थी, और अब डा० बीव के निरीक्षण की गति और सुस्पष्टता के प्रति जोसेलिन की आदर-भावना पहले से भी अधिक हो गई। वह सोच रही थी कि डा० बीब जिन चीज़ों की पलक मरते पहचान लेते हैं उन्हें पहचानने में स्वयं उसे काफी देर लग जाती—भले ही अब उसे इतना ज्ञान हो चला था कि वह डा० के मुंह से शब्द निकलते ही समझ जाती थी कि उनका विवरण सही ही है।

सन् १९३४ में एक दिन डा० बीब समुद्र में ३००० फुट से भी अधिक नीचे उतरे, मगर मिस क्रेन को वह लगभग चौथाई मील से नीचे नहीं ले गए। यद्यपि एक ऐसे व्यक्ति के लिए, जो लोहे के तारों से बांधकर समुद्र में उतारे गए चौथाई मील नीचे के पानी के भयंकर दबावों से दोलायमान इस्पात के खोखले गोलक में बैठने से नहीं डरता, नीचे उतरना एक आनन्ददायक अनुभव ही सिद्ध होता; लेकिन इन अभियानों की रिपोर्ट तैयार करना और पड़ाव पर होनेवाले दूसरी तरह के काम बड़े कठिन थे। जो भी इन लम्बे तकनीकी लेखों को देखता है जिनसे दुनिया को इस प्रकार के अध्ययनों और निरीक्षणों से प्राप्त जानकारी हासिल हो सकी है, वह उनके सूक्ष्म विवेचन एवं विश्लेषण, वैज्ञानिक ज्ञान और निरीक्षण की सुस्पष्टता का कायल हो जाता है, और कल्पना कर सकता है कि अन्वेषकों के ये महीने मानसिक और शारीरिक रूप से श्रमपूर्ण रहे होंगे।

बारमूडा अभियान की गहरे समुद्र की मछलियों से संबद्ध इन चार विस्तृत रिपोर्टों पर विलियम बीब के साथ जोसेलिन क्रेन के भी दस्तखत मौजूद हैं। इन रिपोर्टों में कई सौ नमूनों की मछलियों के बारे में विस्तृत जानकारी दी गई है, बीसियों जातियों में उनका वर्गीकरण किया गया है, और वैज्ञानिकों द्वारा बरसों में जमा किए गए उसी जाति और अन्य जातियों के नमूनों के वर्गीकरण-विषयक आंकड़ों में उन्हें समुचित स्थान दिया गया है।

समय बीतने के साथ मिस क्रेन के मन में यह स्पष्ट होता जा रहा था कि मृत की अपेक्षा जीवित प्राणियों में उसकी रुचि अधिक है। अपने दूसरे सहकर्मी प्राणिविज्ञों की भांति वह भी किसी मृत प्राणी का विच्छेदन और विश्लेषण कर सकती थी और इस प्रकार, मानवीय ज्ञान में यत्किंचित् अभिवृद्धि करके संतोष-लाभ कर सकती थी। लेकिन, छोटे जीवित प्राणियों के व्यवहार का अध्ययन करने की उसकी इच्छा अत्यन्त बलवती थी। उसने केकड़ों का अवलोकन भी शुरू कर दिया था और उसे प्रतीत हुआ कि उनकी व्यवहार-पद्धति में उसकी रुचि बहुत अधिक है। वह इन प्राणियों का अध्ययन करना चाहती थी, क्योंकि इन्हें अपने काम में लगे देखकर, और एक-दूसरे के संदर्भ में इनका अध्ययन करने के बाद वह इस निष्कर्ष पर पहुंची कि इनसे संबद्ध क्रियाएं आदि निश्चित रूप से ऐसे रहस्यों पर प्रकाश डाल सकती हैं जो अभी मानव-मन के लिए अगम्य हैं। अब इन छोटे प्राणियों की सामाजिक आदतों का अध्ययन उसका सर्वाधिक प्रिय विषय हो गया, और इसके लिए उसे निश्चय करने में कोई झंझट नहीं हुई, बल्कि अपनी जन्मजात प्रतिभा के कारण वह स्वाभाविक रूप से इसी निष्कर्ष पर पहुंची।

अब हर युवा प्राणिविज्ञ की भांति उसे भी एक बात का फैसला कर डालना था। उसे दो विकल्पों में से एक को चुनना था, या तो वह पी-एच० डी० करती अथवा उसके बिना ही छोटे प्राणियों के व्यवहार के आकर्षक क्षेत्र में उतर पड़ती। यद्यपि उसने पी-एच० डी० को छोड़कर दूसरा विकल्प ही चुना, लेकिन अन्य युवा वैज्ञानिकों को वह ऐसा करने की सलाह नहीं देती। उसके अपने शब्द इस प्रकार हैं :

"मैंने इस बात पर विचार किया, और डा० बीब से भी बात की। इतना तो मैं निश्चित रूप से समझ चुकी थी कि मेरी रुचि अध्यापन में नहीं थी, बल्कि मैं छोटे प्राणियों का उनके प्राकृतिक निवासों में अध्ययन करना चाहती थी। किसी विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में मैं जो काम कर सकती थी वहं मैं पहले ही कर चुकी थी, और प्रयोगशाला में उसे जारी रख सकती थी। डा० बीब मेरी इस बात से सहमत थे कि मैं जिस प्रकार का प्राणि-वैज्ञानिक अध्ययन करना चाहती थी, उसके लिए आवश्यक शिक्षा मैंने स्मिथ कॉलेज में ही प्राप्त कर ली थी, इसलिए मैंने कॉलेज वापस न लौटने का फैसला किया।

"मेरा यह निश्चय मेरे लिए शुभ रहा, क्योंकि मैं अपनी सोसाइटी में और

डा० बीब के साथ पूर्ववत् काम करती रहा, अपने अभीप्सित काम में सफल रही, और अपने प्रशासकीय उत्तरदायित्व को भी निभाती रही। किंतु यदि कॉलेज के दस-पंद्रह वर्ष बाद मुझे अचानक किसी नई नौकरी की तलाश करनी पड़ती तो पी-एच० डी० के अभाव में मुझे अपने लिए कोई बहुत अच्छी नौकरी तलाश करने में कठिनाई हो सकती थी। मैंने यह खतरा मोल लिया, और मैं खुश हूं कि मैंने ऐसा किया, लेकिन ईमानदारी की बात यह है कि मैं दूसरों को यह सलाह नहीं दे सकती। मैं भाग्यशाली थी।"

हां वह भाग्यशाली थी—क्योंकि ग्रेजुएट होने के पांच वर्ष बाद वह एशिया के अपने पहले दौरे पर निकल पड़ी। कुछ महीने वह कुर्दिस्तान रही। वहां उसने पहाड़ी इलाकों के कीड़े-मकोड़ों का अध्ययन किया। एक दिन नारंगी जाकेट पहने एक छोटा लड़का उसके पास आया और उसने उसे एक ऐसी चीज़ दी जिसकी उसे सख्त ज़रूरत थी। यह चीज़ एक फुदकती हुई सलेटी फरवाली नन्ही-सी गिलहरी थी जो कुछ ही पहले एक पेड़ पर एक-घोंसले में पैदा हुई थी, जहां से वह लड़का उसे उठा लाया था। गिलहरी का यह बच्चा इतना छोटा था कि मिस क्रेन उसके माध्यम से उन गिलहरियों के व्यवहार का अध्ययन नहीं कर सकती थी जो अपना खाना खुद जुटाती हैं। इसलिए, उसने यह पता लगाने का निश्चय किया कि यदि इस बच्चे को उसकी प्राकृतिक आदतें न सीखने दी जाएं, उसे बिना प्रयत्न के भोजन दे दिया जाए, और घर के अन्दर पालतू बनाकर रखा जाए तो इसकी उसपर क्या प्रतिक्रिया होगी।

तीन दिन बाद एक ऐसी घटना घटी कि उसका यह प्रयोग नष्ट होने से बाल-बाल बच गया। मिस क्रेन अपने कमरे में बैठी टाइप कर रही थी कि किसी बात से डरकर गिलहरी का यह बच्चा उसके जलते हुए चूल्हे में घुस गया। वह तड़पकर बाहर निकला और चीं-चीं करता हुआ कमरे की पत्थर की दीवार पर चढ़कर कड़ी के एक छेद में छिपकर बैठ गया। अपने खाने के समय से पहले वह वहां से नहीं उतरा। खाने के समय पर ही दवा डालने के ड्रॉपर में बकरी का दूध भरकर, और उसे दिखाकर वह उसे नीचे आने के लिए फुसला सकी। उसका फर जल गया था, मुंह के ऊपर के बाल भी जल गए थे, लेकिन सौभाग्य से उसे कोई विशेष क्षति नहीं पहुंची थी। उसने बच्चे का नाम शाड्राच (Shadrach) रख दिया और फीते की एक मुलायम गद्दी पहनाकर उसके गले में एक डोरी

बांध दी ताकि घर के बाहर भी उसकी गतिविधि का अध्ययन किया जा सके। जब कोई कुत्ता या अपरिचित व्यक्ति उसके घर की ओर आता तो उस बच्चे के व्यवहार से ही उसे यह सूचना मिल जाती थी। ऐसे मौकों पर शाड्राच फौरन मिस क्रेन के ऊपर चढ़कर उसकी जेब में छिप जाता था।

लेकिन वह सभी जानवरों से, विशेष रूप से जब वह कमरे के अन्दर होता तब, नहीं डरता था। एक दिन शाम के समय वह टाइप कर रही थी कि उसे कुछ आवाज़-सी सुनाई दी और उसने देखा कि बड़ी आंखोंवाले दो जंगली चूहे किवाड़ की दराज़ से कमरे में घुसने के लिए ज़ोर लगा रहे हैं। जब वे सही-सलामत अन्दर आ गए तो वे कुछ रुके, इधर-उधर सूंघा और चौकन्ने होकर उस ओर बढ़े जिधर शाड्राच के भोजन में से बची हुई कुछ अखरोट की गिरी रखी थी, उसके पास ही शाड्राच अपने खोखले तूंबे में सो रहा था। वह जगा, पहले नाक और फिर पूरा सिर तूंबे के बाहर निकाला, और चूहों को घूरकर देखा। चूहे सहमकर एक क्षण पीछे हटे। इसपर शाड्राच ने एक प्रकार की आवाज़ की और फिर तूंबे में जाकर सो गया। चूहों ने उसका बचा हुआ भोजन चट किया, और चलते बने। अगले दिन शाम को वे फिर आए और फिर मिस क्रेन और शाड्राच जितने दिन वहां रहे, ये चूहे अक्सर आते ही रहे। इससे स्पष्ट हो गया कि शाड्राच चूहों की तरफ से निडर ही नहीं था, बल्कि वह अपने उस भोजन का कुछ हिस्सा भी उन्हें दे देना चाहता था जिसे अर्जित करने में उसे कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती थी। फिर भी, जिस दिन चूहे पहली बार आए थे उसके अगले दिन मिस क्रेन ने देखा कि शाड्राच ने पहली बार कमरे के फर्श में एक छेद बना लिया है। इसके बाद उसने अपने भोजन में से एक गिरी उठाई और उसे इस छेद में दबा आया—मानो पिछली शाम के अनुभव से उसकी कोई सहज वृत्ति जाग उठी हो कि ज़रूरत के वक्त के लिए कुछ भोजन जमा कर लेना अच्छा रहेगा।

कुर्दिस्तान में अपना अध्ययन समाप्त करने के बाद उसे पता चला कि उष्ण-कटिबंधीय शोध विभाग का फील्ड स्टेशन एक जलपोत पर दो वर्ष के लिए कैलिफोर्निया की खाड़ी और पूर्वी प्रशांत महासागर की ओर जा रहा है। वह भी इस जलपोत पर गई और वहां जाकर उसने केकड़ों का अध्ययन किया। इन जीवों पर उसने पहले-पहल जो लेख लिखे उनमें से कुछ लेख इन दौरों में, लोअर कैलिफोर्निया प्रायद्वीप और मैक्सिको व केन्द्रीय अमरीका के पश्चिमी किनारे

पर पाए गए केकड़ों के बारे में हैं। रास्ते में विभाग द्वारा किनारों पर स्थापित स्टेशनों में रुककर उसने ब्राक्यूरन केकड़े इकट्ठे किए, और उन्हें अध्ययन के लिए न्यूयॉर्क ले आई। लेकिन सबसे पहले उसने जीते-जागते केकड़ों का ही अध्ययन किया। उनका सुर्ख मूंगे जैसा लाल, गहरा भूरा, पीला या पीला-हरा अबरी रंग उसके लिए बड़ा दिलचस्प विषय था। एक मादा केकड़े को पकड़ने के लिए मिस क्रेन को एक अंधेरे-तूफानी दिन रेत में दूर तक भागना पड़ा था : पकड़ाई के वक्त इसकी बाहरी खोल का रंग कुछ बैंगनी और सलेटी जैसा था। जब दो दिनों तक इस केकड़े को, तली में रेती की तह लगे हुए संदूक में, धूप में रहना पड़ा तो इसका रंग चमकीले मूंगे जैसा हो गया। उसने गौर किया कि कुछ अन्य जीवों की भांति बड़े नर केकड़े का रंग सबसे अधिक चमकीला था, मादा केकड़ों का रंग नर के मुकाबले कम चमकीला था, और बच्चों का रंग सबसे कम चमकीला था।

यह शब्दशः सत्य है कि उसने अपने बिल खोदने में लगे हुए कई सौ केकड़ों का निरीक्षण किया। उसे पता चला कि वे अपना बिल बनाने में तीन अलग-अलग शिल्पों का प्रयोग करते हैं। वह इस निश्चय पर पहुंची कि केकड़ों की इन आदतों और उनके रेत-कणों को ढोने और उस रेत से अपने बिलों के इच्छानुसार निर्माण करने के ढंग का विस्तृत अध्ययन होना चाहिए। उसने देखा, उच्च ज्वार के उतरते ही केकड़े अपने बिलों के दरवाजों पर आ जाते हैं। पहले कुछ सुस्ताकर वे अपने बदन की सफाई करते हैं। शुरू में वे "अपने तीसरे मैक्सिलिप्ड के स्पर्शक (Pelp) से अपनी आंखें मलते थे।" एक घण्टा बीतने पर वे प्रायः सबसे बड़े केकड़े को आगे करके ज्वार के किनारे की ओर चल पड़ते थे ताकि वहां रह गई चीज़ों का भोजन कर सकें; जो चीज़ें उनके बिलों के आसपास जमा हो जाती थीं उनकी खबर वे बहुत बाद को लेते थे। पहले वे धीरे-धीरे चलते, फिर कुछ तेज़, और अंततः वे दौड़ने लगते थे।

ज्वार के पुनरागमन के पूर्व ही वे अपने पुराने बिलों की मरम्मत करने और नये बिल बनाने के लिए वापस लौट आते थे। काम करते समय वे अपने बिलों के आसपास रह गई चीज़ों को खाते थे। "तब केकड़े धीरे-धीरे अपने बिलों की ओर लौट पड़ते, सामान्यतया वे अपने साथ कुछ रेत लेकर लौटते थे। उच्च ज्वार के आने से कोई पचास मिनट पहले एक भी केकड़ा सागर-तट पर न रहने पाता

था।" उच्च ज्वार, निम्न ज्वार—और प्रतिदिन यही कहानी दुहराई जाती थी।

अभी दुनिया-भर के समुद्र-तटों पर पाए जानेवाले इन प्राणियों पर किया गया उसका महत् कार्य आरम्भ ही हुआ था। केकड़ों, विशेष रूप से फिडलर (एक प्रकार के छोटे) केकड़ों के बारे में वह इतनी दिलचस्प बातें वता सकती है कि सुननेवाले या उसकी स्लाइडों और चलचित्रों को देखनेवाले अधिकांश लोग यह रहस्य समझ सकते हैं कि उसने महीनों और वर्षों पंकिल तटों पर बैठकर इन जीवों के व्यवहार का अध्ययन क्यों किया है, और आगे भी इसे क्यों जारी रखना चाहती है। दूसरे लोगों की तरह वह होटलों के मीनू कार्ड पर केकड़ों की तलाश नहीं करती, बल्कि उसके लिए केकड़े छोटे प्राणियों के उन तीन वर्गों से सम्बन्ध रखते हैं जिनके सामाजिक व्यवहार की विभिन्नता और पेचीदापन सदैव उसकी रुचि का विषय रहा है। ये तीन वर्ग हैं—केकड़े, मकड़ियां और तितलियां। वह एक निपुण चलचित्र कैमरा ऑपरेटर हो गई। उसे रंगीन व काले और सफेद—दोनों ही प्रकार के चलचित्रों के निर्माण में निपुणता प्राप्त हो गई। उसके तीनों प्रिय वर्गों के प्राणियों के रंगों का उनके सामाजिक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए इनके अध्ययन में रंगीन चलचित्रों का महत्त्व सर्वोपरि है।

जैसाकि इस सबसे स्पष्ट है, काम शुरू करने के बाद मिस क्रेन को १२ वर्षों तक उष्णकटिबंध के जंगलों में जाकर अपनी बचपन की साध को पूरा करने का अवसर नहीं मिला, लेकिन यह कमी भी पूरी होती ही थी। सन् १९४२ में उसके विभाग ने केरीपौटो, वेनेजुला, नामक स्थान पर, उस क्षेत्र के आस-पास काम करनेवाली अमरीकी तेल कम्पनियों की रुचि होने के कारण एक अस्थायी फील्ड स्टेशन स्थापित किया। उस वर्ष, इस काम में इतनी सफलता मिली कि दक्षिण अमरीका के जंगलों में एक स्थायी स्टेशन खोलने पर पैसा खर्च करना संभव हो सका। अब मिस क्रेन को यह काम सौंपा गया कि वह वेनेजुला, कोलंबिया और इक्वेडोर प्रदेशों की छानबीन करके यह पता लगाए कि स्टेशन के लिए सबसे अच्छी जगह कौन-सी रहेगी।

इस तरह का काम शारीरिक कष्ट से रहित नहीं था। न किसी ऐसे स्थान का निर्धारण करना ही आसान था जो न बहुत गीला हो न बहुत सूखा, जिसमें बाहर से आनेवाला सामान बिना किसी कठिनाई के आ सके, जिसमें जीवों और पौधों के जीवन का सर्वोत्तम रूप पाया जाता हो, जो मानवों के हस्तक्षेप से परे

कुछ काल तक स्वाभाविक विकास करता रहे, और जो उन मोटिलोन आदि-वासियों से दूर पड़े जिन्हें गोरे लोगों को मार डालने में विशेष आनन्द आता है। वह हवाई जहाज़ से उतरकर घोड़े पर बैठ जाती, और कई-कई दिनों तक घोड़े की पीठ पर बैठी जंगलों की खाक छानती फिरती थी। कभी उसे पता चलता कि अमुक जंगल में बारिश होती है और एक बार बारिश होने पर वह महीनों गीला रहता है, और चूंकि उसमें बारिश का पानी जमा हो जाता है, इसलिए उसमें कुछ विवेष जीव ही रह सकते हैं, सब नहीं। कभी पता चलता कि किसी दूसरे जंगल में बारिश तो ठीक अनुपात में होती है लेकिन ढलवां होने के कारण उसकी मिट्टी इतनी जल्दी सूख जाती है कि अध्ययन के लिए आवश्यकता पड़ने पर जीव-जन्तु अपने-अपने बिलों में छिप जाते हैं।

बाकी दिनों में वह झीलों और नदियों के जंगलों में पड़नेवाले किनारों का अध्ययन करती थी। यद्यपि वह सामान्यजन को सतानेवाले अनेक प्रकार के भय से मुक्त थी, फिर भी एक जगह उसने कबूल किया है कि एक बार जब उसके विमान-चालक ने नीचे जंगल की ओर इशारा करते हुए कहा कि यदि इस समय हमारा विमान दुर्घटनाग्रस्त हो जाए तो हम हत्यारे कबीलों के हाथों पड़ जाएंगे, तो मैं डर गई थी, "एक महीने पहले विमान-चालक की इस बात को शायद मैं मज़ाक समझकर उड़ा देती, लेकिन अब अनजाने ही मेरे कान विमान के इंजन की गड़गड़ाहट पर लग गए, और मेरा मन चाहने लगा कि यह निर्बाध रूप से ऐसी ही जारी रहे।"

इस दौरे के परिणामस्वरूप ज़ूओलॉजिकल सोसाइटी का नया फील्ड स्टेशन उत्तरी वेनेज़ुला में एक पहाड़ी की चोटी पर रांचों गांड नामक स्थान में स्थापित हुआ। शीघ्र ही मिस क्रेन फुदकनेवाली मकड़ियों के गंभीर अध्ययन में तल्लीन हो गई। उसे पता चला कि इन पेचीदा प्राणियों की कामाराधन की कुछ आदतें (Courting habits) फिडलर केकड़ों से मेल खाती हैं। जिस प्रकार अमरीकी फिडलर अपनी मादा को रिझाने के लिए अपने लम्बे पंजे को हिला-हिलाकर देर तक पेचीदा नृत्य करता है, उसी प्रकार इस जाति के मकड़े भी अपनी मादाओं को आकर्षित करने के लिए नृत्य का सहारा लेते थे। ये मकड़े दूसरे नरों से, "जावा के नर्तकों की तरह संश्लिष्ट और स्टाइलयुक्त द्वंद्व में उलझ जाते थे," और द्वंद्व में ज़िंदा बचे मकड़े मादाओं को रिझाते थे, और इनकी आंखों का रंग

बहुत ही तेज़ रफ्तार से हरे से काला और काले से हरा होता रहता था। इन मकड़ों की कामाराधान की आदतों पर उसने जो लेख लिखे उनका प्राणियों के व्यवहार के अध्ययन में वही महत्त्व है जो केकड़ों पर लिखे गए उसके लेखों का है।

ऐंड्स में, और फिर ट्रिनीडाड में, उसने तितलियों का भी अध्ययन किया, वह बहुत दिनों से उष्णकटिबंधों के कुछ प्राणियों के चमकीले रंगों के बारे में शोध कर रही थी। क्या इन रंगों का उनके सामाजिक सम्बन्धों में कोई उपयोग है ? मिस क्रेन इसका पूरा उत्तर नहीं जानती, लेकिन उसने तितलियों पर जो काम किया उससे इस प्रश्न का आंशिक उत्तर मिल गया है। उसने इन तितलियों पर एक हल्के निश्चेतक (Anesthetic) का प्रयोग किया, और उन्हें रंग प्रदान करनेवाली धूल जैसी पपड़ी को आहिस्ता से खुरच दिया। उसने किसी-किसी खूबसूरत मादा तितली को, उसके पंखों को काला रंगकर, हू-ब-हू वाल फ्लॉवर की शक्ल में बदल दिया, और मादा तथा नर तितलियों को फैल्ट कपड़े की बनाई गई नारंगी और लाल रंग की नकली तितलियों की तरफ आकर्षित किया। इस प्रकार उसे पता चला कि विरोधी लिंगवाली तितलियों को एक-दूसरे के प्रति आकृष्ट करने और उनकी जातियों को स्थायित्व प्रदान करने में सदैव नहीं तो कभी-कभी रंग सहायक सिद्ध होता है।

द्वितीय महायुद्ध के अंतिम रूप से समाप्त हो जाने पर मिस क्रेन पहले एशिया गई, फिर दक्षिण पैसिफिक, और तब अफ्रीका। सन् १९५० के दशक के आरंभ में नेशनल साइंस फाउंडेशन ने उसे एक अनुदान दिया और जूओलॉजिकल सोसाइटी के सहयोग से यह व्यवस्था की कि मिस क्रेन पांच वर्षों तक हर वर्ष अपना एक-तिहाई समय संसार-भर में फैले हुए ओसिपोडिड केकड़ों के अध्ययन में व्यतीत करे। इस तरह के फंड यूंही नहीं दे दिए जाते, लेकिन मिस क्रेन प्राणियों के व्यवहार के जिस क्षेत्र में काम करना चाहती थी उसके लिए क्रस्टेशिया का यह वर्ग-विशेष उपयुक्त था। इसका कारण यह था कि इस वर्ग के विकासात्मक पक्ष में केवल प्राणिविज्ञ ही नहीं बल्कि दूसरे जीव वैज्ञानिक भी रुचि ले रहे थे। इसलिए इस अनुदान द्वारा वह जो काम करेगी, वह जीवविज्ञान के सामान्य क्षेत्र के दूसरे विशेषज्ञों के लिए भी महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा।

तीन वर्षों तक लगातार वह अकेली उन स्थानों पर जाती रही जहां जाने की उसकी उत्कट इच्छा थी। वह अपने साथ कैमरा और दूसरा जरूरी साज-सामान

भी ले गई, और शीघ्र ही उसे मलाया, ताहिती, दूसरे दक्षिणी समुद्री द्वीपों और अफ्रीका के पंकिल तटों पर बैठा पाया जा सकता था। जब छोटे प्राणियों के इस विश्वव्यापी वर्ग का यह व्यापक अध्ययन पूर्ण हो जाएगा और इसके निष्कर्ष प्रकाशित कर दिए जाएंगे तो इस क्षेत्र में यह सर्वाधिक प्रामाणिक दिलचस्प, और पूर्ण वैज्ञानिक योगदान माना जाएगा। केवल वैज्ञानिक ही इसमें रुचि नहीं लेंगे। जीवन के विभिन्न रूपों में पाई जानेवाली समानताओं और विभिन्नताओं को जानने के लिए सामान्य जन भी उत्सुक रहते हैं। जीवन-शक्ति की एकता, मनुष्य और अन्य जीवों का विकास और उनके पूर्वजों के मूल की खोज—ये कुछ ऐसे विषय हैं जिनपर अनेक चिंतनशील मनुष्य सोचते रहते हैं। मिस क्रेन ने प्राणियों के व्यवहार के क्षेत्र में अब तक जो कार्य किया है उसने इस क्षेत्र में मनुष्य के ज्ञान में अभिवृद्धि की है, और उसकी कल्पना को व्यापक बनाया है।

हारवर्ड के भूतपूर्व प्रेसिडेंट जेम्स कोनेंट ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि अधिकांश वैज्ञानिकों के, "काम का औचित्य उस कार्य-विशेष में उन्हें मिलनेवाले सृजन के आनन्द में ढूंढ़ा जा सकता है," जेम्स कोनेंट को वह भावना प्रिय थी जो किसी वैज्ञानिक को, कलाकार को अनुप्राणित करनेवाला कल्पनाशील दृष्टिकोण अपनाने की ओर प्रवृत्त करती है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि जोसेलिन क्रेन एक ऐसी ही वैज्ञानिक है। वह मूलत:स्वांत: सुखाय दृष्टिकोण से काम करती है, और फिर भी, उसके समवर्गीय वैज्ञानिक उसके काम को सराहना की दृष्टि से देखते हैं। उसका विश्वास है कि जीवित प्राणियों के व्यवहार के अध्ययन से सम्पूर्ण प्राणियों की जातियों के विकास के बारे में अत्यन्त मूल्यवान संकेत और जानकारी मिल सकेगी, और नये विषयों के चुनाव में बुद्धिमत्ता का प्रयोग करते हुए प्राणि-वैज्ञानिक इस विषय में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकेंगे।

इस जानकारी को हासिल करना ही उसका लक्ष्य है। यद्यपि यह सच है कि उसे अपने काम में प्रवृत्त करनेवाली प्रमुख शक्ति यह नहीं है। उसके मन में जीवित प्राणियों के बारे में अधिक से अधिक जानने की जन्मजात अभिलाषा है, और मूलत: अपनी इसी ज्ञान-पिपासा को तुष्ट करने के लिए वह परिश्रम करती है। उम्र को देखते हुए वह अभी काफी काम करने की आशा कर सकती है, लेकिन यह काम भी उसकी प्यास को कुछ काल के लिए ही शांत कर सकता है, सदा के लिए बुझा नहीं सकता।

फ्लोरेंस वैन स्ट्रटन

मौसमविज्ञान एक नवीन विज्ञान है। द्वितीय महायुद्ध के पहले तार-प्रणाली का प्रयोग शुरू हो गया था और इसके कारण मौसमविज्ञान ने कुछ प्रगति की थी, किन्तु इसका सर्वांगीण विकास नहीं हुआ था। जब अमरीका दूसरे महायुद्ध में कूद पड़ा तो फ्लोरेंस वैन स्ट्रैटन नौसेना में भरती हो गई, और उसके आला अफसरों ने उसे इस नये विज्ञान के क्षेत्र का काम सौंप दिया। तब से वह इसी काम में है। पहले वह अमरीकी नौसैनिक अधिकारी थी और सन् १९४६ के बाद से नौसैनिक परिचालन के प्रधान के कार्यालय में सिविलियन तकनीकी परामर्शदाता के रूप में काम कर रही है। इन पदों पर रहते हुए उसने ऐसे अनेक महत्त्वपूर्ण कामों में सफलता प्राप्त की है जो इस अपेक्षाकृत नवीन विज्ञान को धीरे-धीरे इसके लक्ष्य की ओर बढ़ा रहे हैं।

मौसमविज्ञान (Meteorology) का लक्ष्य इस शब्द में प्रयुक्त 'मीटर' के सामान्य अर्थ से कहीं अधिक व्यापक है। इसका लक्ष्य उन सभी भौतिक क्रियाओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना है जो 'मौसम' को जन्म देती हैं, चाहे 'मौसम' शब्द के प्रयोग से हमारा तात्पर्य प्रशान्त महासागर के तूफान से हो, भारत अथवा टैक्सास में पड़नेवाले अकाल से हो या उच्चतर वातावरण की उन व्यवहार-पद्धतियों से हो जिनका सामना वायुयानों या पृथ्वी-तल से छोड़े जानेवाले उपग्रहों को करना पड़ता है। संक्षेप में मौसमविज्ञान वातावरण का विज्ञान है।

जब फ्लोरेंस वैन स्ट्रैटन अमरीकी नौसेना में भरती हुई और उसे इस नवीन विज्ञान से संबद्ध काम सौंपा गया, उसके पहले ही वह भौतिक रसायन में पी-एच० डी० कर चुकी थी। यह डिग्री उसके लिए अत्यन्त मूल्यवान सिद्ध हुई। उन दिनों पुरुष मौसमवैज्ञानिकों की बहुत कमी थी, इसलिए नौसेना में काम करनेवाली पच्चीस महिलाओं को वायुवैज्ञानिक इंजीनियरिंग (नौसेना में मौसमविज्ञान के

लिए प्रायः इसी शब्द का प्रयोग होता था) में एक ट्रेनिंग के लिए भेजा गया ताकि पता लगाया जा सके कि स्त्रियां इस क्षेत्र में काम कर सकती हैं या नहीं। फ्लोरेंस को अभी नौसेना में भरती हुए सिर्फ पांच सप्ताह हुए थे, लेकिन पी-एच० डी० होने के कारण उसे भी इन पच्चीस महिलाओं के प्रथम दल में शामिल कर लिया गया। यह ट्रेनिंग ९ महीने की थी, और मेसाचुसेट्स के प्रविधि संस्थान में प्रदान की गई। २५ में से २२ महिलाएं यह कठोर ट्रेनिंग पूरी कर सकीं—वैन स्ट्रैटन भी उनमें से एक थी। इन महिलाओं को सनदयाफ्ता मौसमवैज्ञानिक के डिप्लोमा प्रदान किए गए। इस ट्रेनिंग के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम का बौद्धिक अनुशासन कितने ऊंचे दर्जे का था, इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि अगर वह पहले ही पी-एच० डी० न कर चुकी होती तो इन नौ महीनों में किया गया काम इस संस्थान में वायुवैज्ञानिक इंजीनियरिंग में पी-एच० डी० की डिग्री के लिए ढाई वर्ष के ग्रेजुएट-कार्य के बराबर समझा जाता। जो तीन महिलाएं यह ट्रेनिंग पूरी नहीं कर सकीं, उनके लिए भी यह नहीं कहा जा सकता कि उत्तीर्ण महिलाओं की अपेक्षा उनकी बुद्धि-लब्धि (I. Q.) कम थी।

फिर भी, हाईस्कूल में अपने अन्तिम सीम्स्टर-कार्य के लिए तैयार होने के पहले फ्लोरेंस वैन स्ट्रैटन ने भौतिक विज्ञानों की ज्ञाता बनने की बात सोची तक न थी। वह इस विषय में निश्चित थी कि उसे क्या करना है, लेकिन उसकी महत्त्वाकांक्षा का विज्ञान से दूर का भी सम्बन्ध नहीं था। वह एक लेखक बनना चाहती थी। उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि भी इसके लिए अत्यन्त उपयुक्त थी। उसके मां-बाप हॉलैंड से आकर अमरीका में बस गए थे। उसकी मां एक प्रतिभाशाली भाषाविद् थी, और छः भाषाओं की ज्ञाता थी (प्रतिपत्र या 'प्रॉक्सी' द्वारा जैक्स वैन स्ट्रैटन से विवाह करने और तदन्तर न्यूयार्क में आ बसने से पहले वह हॉलैंड-भर में सबसे अधिक वेतन प्राप्त करनेवाली महिला थी) और उसका पिता अपनी एकमात्र बच्ची फ्लोरेंस की हर इच्छा पूरी करने के लिए तैयार था।

उसका पिता मेट्रो-गोल्डविन-मेयर पिक्चर्स का वित्तीय प्रतिनिधि था। उसका प्रमुख कार्यालय न्यूयार्क में था। कभी-कभी उसे अपने काम से बाहर भी जाना पड़ता था। इसी सिलसिले में एक बार फ्लोरेंस उसके साथ नाइस गई, और उसने अपनी माध्यमिक शिक्षा का एक वर्ष वहीं बिताया। इस बीच उसने फ्रेंच भाषा पर अच्छा अधिकार कर लिया। वह अंग्रेज़ी और डच भाषा पर समान अधिकार से

बोलती थी। इसके अलावा उसने अपने मां-बाप से जर्मन, इटालियन और स्पेनिश भाषाओं का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था, फलतः "मुझे कभी भी इनमें से किसी भी भाषा में एकदम कोरा बनकर नहीं जाना पड़ा।" एक भावी लेखक के लिए यह एक सुन्दर सांस्कृतिक पृष्ठभूमि हो सकती थी। अंग्रेज़ी उसका प्रिय विषय था, किन्तु वह अपने अध्ययन के सभी विषयों में रुचि लेती थी और अच्छे अंक प्राप्त करती थी। फिर भी, स्कूल के दिनों में इस सबका उसपर कोई खास असर नहीं पड़ा था। इस छोटे-से परिवार के तीनों सदस्य न्यूनाधिक रूप में यह स्वीकार कर चुके थे कि फ्लोरेंस एक दिन लेखक बनेगी।

लेकिन वे तीनों ही इस तथ्य से परिचित थे कि लेखन कोई ऐसा व्यवसाय नहीं है जिसमें प्रवृत्त होने का निश्चय करके आप उसकी तैयारी के लिए किसी कॉलेज में दाखिल हो जाएं, और जब वहां से शिक्षा पूर्ण करके निकलें तो अपनी जीविका कमा सकें। इस सचाई की याद दिलाने के लिए उसका पिता अक्सर उससे यह पहेली पूछा करता था, "जानती हो लेखक लोग दुछत्तियों में क्यों रहते हैं?" फ्लोरेंस इस पहेली का उत्तर जानती थी, "क्योंकि वे पहली, दूसरी या तीसरी मंज़िलों पर नहीं रह सकते।" बूढ़े होने के पहले लेखक सामान्यतः काफी पैसे नहीं कमा पाते—इस बात का ज्ञान फ्लोरेंस के लिए विशेष महत्त्व रखता था क्योंकि यह तय था कि ब्रुकलिन-स्थित गर्ल्स हाईस्कूल से वह कुल सोलह वर्ष की अवस्था में ग्रेजुएट हो जानेवाली थी। मां के पढ़ाने और अध्ययन में स्वाभाविक गति होने के कारण उसने अपनी स्कूल की शिक्षा दो वर्ष कम उम्र में ही पूरी कर ली थी।

इसके अलावा फ्लोरेंस अपने पिता जैकस वैन स्ट्रैटन से अपने जीवन में विशेष प्रभावित हुई है। जब जैक्स जवान था तो एम्सटर्डम में उसे एक ऐसा अनुभव हुआ जिसने उसे सिखाया कि जीवन सदैव व्यक्ति की योजनाओं के अनुरूप नहीं ढल पाता। वह डॉ० बनने के लिए कृतसंकल्प था, किन्तु अभी उसने कॉलेज में पढ़ना शुरू किया ही था कि उसका सम्पन्न परिवार अचानक सर्वथा अकिंचन हो गया, और उसे अपने परिवार की सहायता करने के लिए पढ़ाई छोड़कर नौकरी करनी पड़ी जिसके बारे में उसने स्वप्न में भी न सोचा था। इस अनुभव को ध्यान में रखते हुए उसने अपनी बेटी को सुझाव दिया, "कॉलेज में अपना कुछ समय किसी ऐसे विषय के अध्ययन में लगाने में क्या हानि है जो लेखन से इतर हो किन्तु जो, आवश्यकता पड़ने पर, तुम्हें जीविकोपार्जन में सहायता दे सके।"

यह सुझाव इतना तर्कसंगत था कि फ्लोरेंस ने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। कठिनाई यह थी कि वह इस बारे में कोई निर्णय नहीं ले पा रही थी कि वह किस विषय को चुने। तब मिस्टर वैन स्ट्रैटन ने सोचा कि क्यों न इस बारे में लड़की के स्कूल की प्रिंसिपल से सलाह ली जाए। उसने ऐसा ही किया। कुछ विचार करने के बाद प्रिंसिपल ने उसके लिए रसायनशास्त्र का सुझाव दिया। यह एक ऐसा विषय था जो फ्लोरेंस ने पहले कभी नहीं पढ़ा था। अभी उसे हाईस्कूल में एक कोर्स और करना था, इसलिए उसने वह कोर्स रसायन में ले लिया और "अपने अध्ययन के अन्य विषयों की भांति मुझे यह भी अच्छा लगा, यह विचार मुझे संतोष देता था कि मेरी प्रिंसिपल और पिताजी समझते हैं कि रसायन एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें मैं कभी भी अपनी जीविका अर्जित कर सकती हूं।"

इस निर्णय की तरह ही यह निर्णय भी अनायास ही लिया गया कि यह भावी वैज्ञानिक न्यूयार्क विश्वविद्यालय में अंग्रेजी और रसायन को अपना प्रमुख विषय चुने और इन दोनों में से किसी एक विषय में बैचलर की डिग्री प्राप्त करे। फ्लोरेंस ने स्वप्न में भी कभी न सोचा था कि वह अपनी डिग्री अंग्रेज़ी में न लेकर रसायन में लेगी।

कॉलिज में उसके अन्तिम वर्ष के प्रारम्भिक दिनों में एक ऐसी घटना घटी जिसने उसके पिता की भांति आशातीत रूप से उसके जीवन की दिशा भी बदल दी। फैकल्टी की एक सदस्या बीमार पड़ गई और उसके ठीक होने तक फ्लोरेंस से उसकी छात्राओं की लेबोरेटरी की क्लास को रसायन पढ़ा देने के लिए कहा गया। फैकल्टी की वह सदस्या ठीक नहीं हो सकी और फ्लोरेंस पूरे साल उस क्लास को पढ़ाती रही। वसन्त आ गया, और वसन्त के साथ ही उसके सम्मुख यह प्रस्ताव आया कि यदि वह एक शर्त मान ले तो उसे अगले वर्ष के लिए टीचिंग फेलोशिप मिल सकती है। यह शर्त उसके लिए बहुत बड़ी थी। शर्त के अनुसार उसे यह फेलोशिप तभी मिल सकती थी जब वह बैचलर की डिग्री अंग्रेजी के स्थान पर रसायन में लेने, और फेलोशिप का उपयोग रसायन में पी-एच० डी० करने के लिए तैयार हो जाती।

उसने इस प्रस्ताव पर भली भांति सोचा। वह अभी कुल १९ वर्ष की थी। हाईस्कूल और कॉलिज में से प्रत्येक में उसे सिर्फ साढ़े तीन वर्ष लगे थे। लेखक के लिए तो सभी प्रकार का अनुभव पाथेय का काम करता है। उसने यह प्रस्ताव

स्वीकार कर लिया। सन् १९३३ में उसने रसायन में शानदार अंकों के साथ बी० एस० की डिग्री प्राप्त की और 'फाई बीटा कैप्पा' के लिए चुनी गई।

वह हाईस्कूल और कॉलेज-जीवन में फिक्शन लिखती आई थी। लेकिन, अब उसे ऐसा महसूस हुआ कि वह लिखने के अयोग्य हो गई है। वैज्ञानिक के सत्यादर्श और सत्य के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उसका इतना अधिक तादात्म्य हो गया था कि अब उसे फिक्शन लिखने की इच्छा तक नहीं होती थी। उच्चादर्शों-वाली इस युवती के लिए सत्य का महत्त्व सर्वोपरि था। विज्ञान के सम्पर्क ने उसे इतना अधिक प्रभावित किया था कि अब उसके लिए सत्य के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि-कोण ही एकमात्र ईमानदार दृष्टिकोण बन गया था। अगले कुछ वर्षों में ही उसका चिन्तन कितना परिपक्व हो चुका था, यह स्वयं उसीके शब्दों से प्रकट होता है, "गम्भीर फिक्शन-लेखक और वैज्ञानिक दोनों ही अपने-अपने ढंग से सत्य की शोध करते हैं। यद्यपि मैं मूलतः एक वैज्ञानिक हूं, फिर भी मैं मानती हूं कि कला भी उसी सार्वभौमिक सत्य की शोध है जिसे अभिव्यक्ति देने का प्रयत्न वैज्ञानिक कर रहा है। सत्य एक और अखण्ड है। उसे 'वैज्ञानिक सत्य', 'धार्मिक सत्य', 'कलागत सत्य' आदि खंडों में विभक्त नहीं किया जा सकता।"

धीरे-धीरे, इस सत्य की प्रतीति के साथ, उसके मन में लिखने की इच्छा फिर से उत्पन्न होने लगी। ऐसे और भी अनेक लब्धप्रतिष्ठ वैज्ञानिक हुए हैं जो किसी कला में रुचि उत्पन्न हो जाने पर उसे बनाये रखते हैं, और व्यवसाय के रूप में न अपनाकर भी अपने उस कलागत अनुराग को बुद्धिमत्तापूर्ण, बल्कि ज़रूरी, समझते हैं। आइन्सटाइन हमेशा से वॉयलिन के प्रेमी रहे हैं, और गर्टी कोरी आजन्म पुस्तकों के अध्ययन में अपनी कलागत रुचि को संतुष्ट करती रही।

सनदयाफ्ता मौसमविज्ञान का डिप्लोमा प्राप्त करने के बाद ही डॉ० वैन स्ट्रैटन को वह वैज्ञानिक फोकस प्राप्त हो सका जिसे भविष्य में उसके मस्तिष्क के लिए एक स्थायी चुनौती और दिशा-दर्शक बनना था। न्यूयार्क विश्वविद्यालय में वह नौ वर्षों तक फैकल्टी की लैसर मैंबर रह चुकी थी। इन नौ वर्षों में उसने बी० एस० की डिग्री प्राप्त की और भौतिक रसायन में पी-एच० डी० किया। विलियम एफ० एहरेट के सहयोग में उसने जो अनुसंधान किया था उसके परिणाम कुछ वैज्ञानिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए थे, और इस सबसे उसे वैज्ञानिक सफलताजन्य सन्तोष भी मिला था, लेकिन मेसाचुसेट्स के प्रविधि संस्थान में

उच्चतर विशिष्ट अध्ययन करते समय ही उसे यह अनुभूति हुई कि कला से रूपांतरित होकर विज्ञान बनते जानेवाले मौसमविज्ञान में अनेक सुअवसर उसे चुनौती दे रहे हैं।

शायद चुनौती का यह बल कई गुना इसलिए बढ़ गया था, क्योंकि जब वह भरती हुई तो उन दिनों अमरीकी नौसेना दो महासागरों पर अपने और अमरीका के अस्तित्व को बचाए रखने के लिए भयानक संग्राम में जुटी हुई थी। प्रशान्त महासागर में मौसम की स्थितियों के अधिकाधिक ज्ञान और उपलब्ध ज्ञान के सर्वोत्तम उपयोग की विशेष रूप से ज़रूरत महसूस की जा रही थी। परम्परागत तथ्य यह था कि नौसैनिक युद्धों के परिणाम मौसम पर बहुत कुछ निर्भर करते हैं। पश्चिमी देशों में पढ़नेवाला हर बच्चा जानता है कि ब्रिटिश जहाज़ी बेड़े के अनुकूल वायु में एक अलक्षित परिवर्तन के कारण वायु का लाभ ब्रिटेन को न मिलकर उसके शत्रु स्पेन के जहाज़ी बेड़े को मिल गया था और वह भाग निकला था। द्वितीय महायुद्ध में अमरीकी राष्ट्रीय मौसम सेवा का काम इस बात का ध्यान रखना था कि हमारे जहाज़ों को मौसम की प्रतिकूल परिस्थितियों में न फंसना पड़े, और युद्धों में सफलता प्राप्त करने के लिए यथासम्भव मौसम का पूर्वानुमान लगा लिया जाए। यह काम और भी कठिन इसलिए था कि सामान्यतया यह माना जाता था कि प्रशान्त महासागर में जापानी लोग अमरीका या मित्र राष्ट्रों की अपेक्षा मौसम की स्थितियों के बारे में ज़्यादा जानते हैं।

डॉ० वैन स्ट्रैटन का काम वायुयानों या जहाज़ों में बैठकर मौसम-सम्बन्धी सूचनाएं एकत्र और संचारित करना नहीं था। ज़ाहिर है कि इस काम के लिए विज्ञान में पी-एच० डी० प्राप्त व्यक्ति की आवश्यकता नहीं पड़ती। उसका काम अपने वैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग उन तरीकों और तकनीकों के विकास में करना था जो वायुवैज्ञानिक अधिकारियों को इस योग्य बना सकें कि वे कमांडिंग अफसरों को नित्य, और हो सके तो हर घंटे बाद मौसम की स्थितियों के बारे में सलाह दे सकें। इसे एक उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है :

युद्ध-काल में कुछ वायुयान-वाहक डेक से उड़ाए जाते हैं, और अपना काम पूरा करके वे उसीपर लौट आते हैं। उनकी उड़ान व वापसी के समय जहाज़ को हवा के रुख की ओर बढ़ना चाहिए और हवा व जहाज़ की संयुक्त गति एक निर्धारित निम्नतम गति से तीव्र होनी चाहिए। उड़ान के लिए अनुकूल और लक्ष्य के

निकटतम हवाएं खोजना, वायुयान के हवा में उठने तक जहाज़ को सुरक्षित रेंज में रखना, और वापसी के वक्त अनुकूल पवन में उन्हें जहाज़ में वापस लेना—ये सब काम दुष्कर हैं। इन कामों में सफलता तभी मिल सकती है जबकि वायुवैज्ञानिक अधिकारी एकदम सही सूचानाएं दे सके।

द्वितीय महायुद्ध के समय किए जानेवाले भविष्य-कथन के लिए दूरवर्ती क्षेत्रों के मौसम से सम्बद्ध अनेक तथ्यों की जरूरत पड़ती थी। रडार-तकनीकें विकसित हो चुकी थीं, और उनकी सहायता से विशिष्ट रडार-गूंजों और मौसम की विभिन्न स्थितियों को पहचाना जा सकता था। उदाहरणार्थ : पहले रडारस्कोप की सहायता से तड़ित-झंझा का पता लगाया जाता था, फिर कैरियर डेक को उस प्रदेश में पहुंचाया जाता था, जहां वह उस क्षेत्र के किनारों पर चक्कर लगाता था। तडित-झंझा के साथ चलनेवाली तेज़ हवाओं के कारण जहाज़ों के लिए उड़ान भरना या काम खत्म करके कैरियर डेक पर उतरना सम्भव हो जाता था।

जब जापानियों ने मार्शल और गिलवर्ट द्वीपों पर हवाई हमला किया तब एक बार उनके बमवर्षकों की नज़र अमरीकी कृतिक बल (Task force) पर पड़ी। उस समय अमरीकी हवाई जहाज़ अपना काम खत्म करके वापस आए थे और उनकी आखिरी टोली कृतिक बल पर उतर ही रही थी। चूंकि जहाज़ों की गति की अपेक्षा वायुयानों की गति बहुत तीव्र होती है, इसलिए बमवर्षकों से बचाव करने में यह समस्या उत्पन्न हुई कि कृतिक बल को बमवर्षकों से दूर कैसे ले जाया जाए। वायुवैज्ञानिक अधिकारी को इसकी एक तरकीब सूझ गई। कुछ दूर आगे उसे एक शीताग्र (Chld front) दिखाई दिया जिससे एक प्राकृतिक धूमावरण (Smoke screen) का काम लिया जा सकता था। उसने जो अक्षांश और देशान्तर बताए उनसे होता हुआ कृतिक बल सुरक्षित रूप से उस शीताग्र तक जा पहुंचा और तब जहाज़ों की गति शीताग्र की गति से समंजित कर दी गई। वहां से कृतिक बल की तलाश में घूमते हुए जापानी बमवर्षकों की आवाज़ सुनाई दे रही थी। काफी समय के बाद यह निश्चित हो गया कि बमवर्षक असफल होकर लौट गए हैं तब कृतिक बल सुरक्षित रूप से पर्ल हार्बर लौट आया।

सामान्य जन इस प्रकार की उपलब्धियों का सही मूल्यांकन नहीं कर सकते। 'धरातल पर, या उसके आस-पास के मौसम का पूर्वानुमान लगाना उच्चतर वायुमण्डल के पूर्वानुमान की अपेक्षा कहीं अधिक दुष्कर है। मौसमविज्ञानवेत्ता का

पूर्वानुमान गलत निकलने पर सामान्य जन के लिए हंस देना बड़ा आसान है, किन्तु डा॰वैन स्ट्रैटन का मत है कि यह पूर्वानुमान इतनी बार गलत नहीं निकलता जितना कि लोग-बाग समझते हैं। "दरअसल होता यह है कि आम आदमी 'विफलताओं' को तो याद रखता है, और 'सफलताओं' को भूल जाता है।" मौसम-वैज्ञानिक जानता है कि इस बात का भविष्य-कथन करना आसान है कि न्यूयॉर्क से लॉस एंजिल्स तक पहुंचने में किसी वायुयान को किस प्रकार के मौसम का सामना करना पड़ेगा, किन्तु इसमें से किसी भी शहर के मौसम के बारे में पूर्वानुमान लगाना, अपेक्षाकृत कहीं कठिन है। धरातल के आसपास की स्थितियां उस भू-प्रदेश के स्थानीय प्रभावों के कारण कहीं अधिक अनियत होती हैं। चौवीस से छत्तीस घंटों के बीच के समय के मौसम का पूर्वानुमान लगाने के लिए सभी आवश्यक आंकड़ों की ज़रूरत होती है, किन्तु सभी आवश्यक आंकड़े बहुधा उपलब्ध नहीं हो पाते।

डा॰ वैन स्ट्रैटन के नौसेना में भरती होने के कुछ ही बाद एक ऐसी लोमहर्षक दुर्घटना हुई थी, जिससे पता चलता है कि अनिवार्य आंकड़ों की कमी से कितनी बुरी बीत सकती है। जिन दिनों अमरीका प्रशांत महासागर द्वीपों पर एक के बाद एक अधिकार कर रहा था तो वायुयानों के उतरने का समय वायुवैज्ञानिक अफसर निर्धारित करते थे। अधिकतर उनके बताए समय पर वायुयान सकुशल उतर आते थे। लेकिन एक बार जब वायुयान उतर रहे थे तभी महासागर अप्रत्याशित रूप से विक्षुब्ध हो उठा, और उन भयंकर स्थितियों के कारण जान और माल की भारी हानि हुई। बाद में पता चला कि ये भयंकर स्थितियां उस द्वीप से कोई एक हज़ार मील दूर प्रशान्त महासागर में उठे एक प्रचण्ड तूफान के कारण उत्पन्न हुई थीं, किन्तु कोई भी वायुयान अथवा स्वचालित मौसम-केंद्र उस तूफान को पहले से लक्षित नहीं कर सका था।

युद्ध के समाप्त होते-होते फ्लोरेंस वैन स्ट्रैटन के सामने यह बात स्पष्ट हो गई थी कि मौसम की स्थितियों के बारे में अभी अनेक बातें अज्ञात हैं, और उन्हें जानना ज़रूरी है। उसके प्रतिभाशाली मस्तिष्क के लिए यह एक तरह की चुनौती थी। उसके आला अफसर इस बात से प्रभावित थे कि उसके पास उनके काम के लिए उपयुक्त योग्यताएं हैं। वातावरण की स्थितियों के ज्ञान को प्रयोग योग्य प्रक्रियाओं में विकसित करने के लिए उन दिनों जो वैज्ञानिक उपलब्ध थे उनमें

उसके जैसी योग्यताओंवाले व्यक्ति बहुत कम थे। आगे वह एक सिविलियन के रूप में नौकरी करना चाहती थी। और इसमें भी कोई अड़चन न थी, क्योंकि उसका नाम नौसेना की सक्रिय सूची से हटाकर बड़े आराम से निष्क्रिय (Inactive) सूची पर लिखा जा सकता था। इस प्रकार, सन् १९४६ में लेफ्टिनैंट कमांडर की वर्दी छोड़कर उस पद से अवकाश ग्रहण किया, और नौसेना में सिविलियन परामर्शदाता बन गई, जहां कि वह आज भी है। और ज्यों-ज्यों वर्ष बीतते गए कुहरों से लेकर रेडियधर्मी 'फॉलआउट' तक की सभी समस्याओं के लिए "मैं नौसेना के लिए एक मिस्त्री-सी बन गई।"

शायद मिस्त्री के रूप में असाधारण रचनात्मक प्रतिभा प्रदर्शित करने पर ही उसे नौसेना का उल्लेखनीय सेवा पुरस्कार प्रदान किया गया। इस पुरस्कार की प्राप्ति के समय उसे सिविलियन सर्विस में काम करते हुए दस वर्ष बीत चुके थे, और वह नौसैनिक रिज़र्व में कमांडर की श्रेणी में जा पहुंची थी। जो भी हो, विश्व-युद्ध समाप्त हो जाने पर उसे जो पहली बड़ी नौकरी मिली वह किसी भी तरह मिस्त्री की नौकरी नहीं थी। ऐसा इस कारण हुआ, क्योंकि उच्चतर वायुमण्डल में जाने के लिए लम्बी दूरियों के प्रक्षेपणास्त्रों के निर्माण में लगे वैज्ञानिकों का ध्यान इस ओर नहीं गया था कि उन्हें अपने काम में मौसमवैज्ञानिकों से कितनी अमूल्य सहायता प्राप्त हो सकती है। वे ये भूल रहे थे कि वायुमण्डलगत स्थितियां—हवा, तापक्रम, घनत्व आदि उनकी 'चिड़ियों' को प्रभावित करेंगे। इसके विपरीत नौसैनिक मौसम सेवा का दृढ़ मत था कि वायुमण्डल और उसके विविध रूपों के विश्लेषण से ऐसी अनेक बातें प्रकाश में आएंगी, जिनका ध्यान लम्बी दूरीवाले प्रक्षेपणास्त्रों के निर्माण में रखना आवश्यक है। अपने इसी विश्वास के कारण उन्होंने १,००,००० फुट की ऊंचाई तक की हवा और तापक्रम-विषयक सभी, सामान्य और असामान्य, सूचनाओं को प्राप्त करके उनका विश्लेषण करने का निश्चय किया। तभी यह घोषणा हुई कि इन सब सूचनाओं को एकत्र और विश्लिष्ट करने का काम डा० एफ० डब्ल्यू० स्ट्रैटन के निदेशन में किया जाएग।

यह एक लंबा और भारी काम था, जैसाकि उन चार भारी-भरकम तकनीकी रिपोर्टों के पन्ने उलटते ही स्पष्ट हो जाता है, जो डा० वैन स्ट्रैटन के कार्यालय से प्रकाशित हुईं। इस बारे भी उनका काम खुद प्रेक्षण करना नहीं था, बल्कि विभिन्न तरीकों से किए गए हजारों प्रेक्षणों का विश्लेषण करनेवाली योजना के

निदेशन में अपने वैज्ञानिक ज्ञान का उपयोग करना था। ग्रीनलैंड से जापान तक के लगभग बीस भौगोलिक स्थानों से एकत्र की गई सूचनाओं का उसके डेस्क पर ढेर लगा दिया जाता था। दो वर्षों के अन्दर इबारत, तालिका और लेखाचित्र (Graph) आदि के रूप में उसके द्वारा किए गए विश्लेषण का विवरण थोड़ा-थोड़ा करके प्रकाशित होता रहा, ताकि वैज्ञानिक लोग उससे अविलंब लाभ उठा सकें।

इन लेखाचित्रों और तालिकाओं को देखकर प्रक्षेपणास्त्र तैयार करनेवाले वैज्ञानिकों की समझ में आया कि उन्हें अपने काम में मौसमवैज्ञानिकों से कितनी अधिक सहायता मिल सकती है। कुछ वैज्ञानिकों का यह सुखद सिद्धांत, कि प्रक्षेपणास्त्र ज्योंही समतापमंडल (Stratosphere) में, अर्थात् पृथ्वी से ३०,००० से ४०,००० फुट ऊपर, पहुंचता है वैसे ही निर्बाध और तूफानरहित क्षेत्र प्रारंभ हो जाता है, चूर-चूर हो गया। कुछ प्रारंभिक प्रेक्षणों से ही यह स्पष्ट हो गया कि ७० पौण्ड वज़न लेकर, १,००,००० फुट की ऊंचाई तक पहुंच सकने-वाले गुब्बारे समतापमंडल में पहुंचकर भयानक रूप से दोलायमान होते हैं, हवाएं उन्हें झकझोर देती हैं। एक प्रेक्षण से पता चला कि ६५,००० से ७०,००० फुट ऊपर हवाओं में इतनी शक्ति होती है कि उन्होंने एक गुब्बारे से लटकते हुए ५५ पौण्ड के वज़न को इतने ज़ोर से ऊपर की ओर उछाला कि उसके लगने से गुब्बारे का थैला फट गया। यह सिद्ध हो गया कि समतापमंडल में सिर्फ वे प्रक्षेपणास्त्र ही प्रविष्ट हो सकते हैं जो या तो इन हवाओं को बचा सकें अथवा इनका सामना करने के लिए ज़रूरी साज-समान से लैस हों।

उन दिनों के मुकाबले आज गुब्बारे द्वारा हवा और मौसम की सूचनाएं एकत्र करने की तकनीकों में बहुत अधिक सुधार हो गया है। जिन वैज्ञानिकों के प्रयत्नों से यह सुधार संभव हुआ है उनमें डॉ० वैन स्ट्रैटन का नाम भी लिया जाता है। सन् १९५० के दशक के मध्य में अमरीकी नौसेना जापान में नित्य ४०-५० फुट वाले गुब्बारे छोड़ने लगी थी। इन गुब्बारों का थैला सिगरेट की डिब्बी पर लगे मोमिया कागज़ की तरह पतला होता था, मगर उनमें से हर गुब्बारे में ६०० पौंड से अधिक भार ले जाने की क्षमता थी। इन गुब्बारों को, प्रत्येक के थैले में हीलियम का एक बुलबुला रखकर, छोड़ दिया जाता है, वे ३०,००० फुट की ऊंचाई तक उठ जाते हैं, और फिर स्थिर होकर उसी ऊंचाई पर तैरते रहते हैं।

हर दो घंटे बाद वे अपनी स्थिति, तापक्रम और दवाव से संवद्ध जानकारी रेडियो से देते रहे हैं। हवाओं के साथ सैर करते हुए वे प्रशांत महासागर पार करते हैं, अमरीका के ऊपर से होते हुए अटलांटिक महासागर को पार करते हैं, और तव, यूरोप के तट पर पहुंचते ही खुद-व-खुद फूट जाते हैं ताकि किसी प्रकार का अन्तर्राष्ट्रीय नियम भंग न हो। हर रेडियो-रिपोर्ट से उनकी स्थिति का मिलान करके उस क्षेत्र की हवाओं की गति के वारे में मालूम किया जाता है जिससे होकर वे गुज़रे हैं।

डॉ० वैन स्ट्रैटन का बहुत-सा काम अभी गोपनीय है। ठीक इसी प्रकार, एक दिन उसके उस काम का एक बड़ा हिस्सा गोपनीय था, जिसके बारे में पहले बताया जा चुका है। जिन उपलब्धियों पर उसे सन् १९५६ में पुरस्कार प्रदान किया गया, उसके भी कुछ अंशों पर ही प्रकाश डाला जा सकता है, दूसरे अंश गोपनीय हैं। समय के साथ-साथ उसकी व्यक्तिगत प्रगति भी हुई है। आज वह उन वैज्ञानिकों की श्रेणी में शामिल हो गई है जो नौसेना से संवद्ध गूढ़ समस्याओं को सुलझाने के लिए बुलाए जाते हैं। कभी-कभी उसने इन पेचीदा समस्याओं को सुलझाने के मौलिक और सफल उपाय सुझाए हैं। कभी वह एक नये प्रकार के उपकरण के निर्माण का सुझाव दे देती है, या उपलब्ध साधनों के प्रयोग की कोई नई तकनीक सुझा देती है, तो कभी उसका सुझाव होता है कि नई सूचनाएं एकत्र करने से समस्या का निदान खोजा जा सकता है, उसके सभी सुझावों पर अमल नहीं किया जाता—उदाहरणार्थ उसकी उस योजना पर काम नहीं किया गया जो उसने वायुयानों पर बर्फ का जमना रोकनेवाले एक ध्वानिक यंत्र से (Sonic device) तैयार करने के लिए प्रस्तुत की थी, यद्यपि उसका यह विचार उसके नाम पर पेटेंट हो गया। दूसरी ओर, उसके सुझावों के अनुसार एक ऐसे रडार-प्रतिकृति-तंत्र पर कांम किया जा रहा है जो संबंधित क्षेत्र की जानकारी रडार-सैट पर अथवा एक या अनेक वायु-स्टेशनों पर अपने-आप लिख देता है।

नई समस्याओं को सुलझाने की उसमें अद्भुत क्षमता है—यह सिद्ध हो जाने के बाद उसे इस बात की छूट दे दी गई कि यदि वह चाहे तो उन समस्याओं पर भी काम कर सकती है जो उसके निर्धारित कार्य-क्षेत्र में नहीं आतीं। इस प्रकार उसने रेडियधर्मी 'फॉल आउट' की समस्याओं के कुछ पक्षों पर कामं करना शुरू किया, विशेष रूप से उसका प्रयत्न ऐसे उपाय ढूंढ़ निकालने की दिशा में था जो

एटमी हमले के समय अमरीका की रक्षा कर सकें। वाशिंगटन-स्थित कार्यालय में अपने डेस्क पर बैठे-बैठे वह सोचने लगी :

'मान लो वाशिंगटन पर बमबारी हो जाए। ऐसी हालत में अधिकारियों को यह कैसे पता चलेगा कि मनुष्यों को बचाने, अस्पतालों को लाने-ले जाने, और रेडियधर्मी प्रभावों से बची हुई रसद को सर्वाधिक सुरक्षित स्थान पर पहुंचाने के लिए क्या कदम उठाए जाएं ?'

उसे ज्ञात था कि रेडियधर्मी कण कुछ निश्चित 'फॉल आउट' पद्धतियों का अनुकरण करते हैं, और ये पद्धतियां वायुमण्डल की स्थितियों से प्रभावित होती हैं। ये कण कुछ क्षेत्रों में तो अत्यधिक सघन होते हैं, और शेष क्षेत्रों में बहुत ही कम घने, यहां तक कि विस्फोट के स्थान के निकटवर्ती क्षेत्रों में भी ये कम घने हो सकते हैं। समय बीतने के साथ इनमें परिवर्तन होते रहते हैं। इस समस्या पर काम करते हुए उसने वायुमण्डल की किन्हीं भी स्थितियों में रेडियधर्मी 'फॉल आउट' और उनकी अनुसरणीय पद्धतियों की संगणना करनेवाली एक वैज्ञानिक प्रक्रिया को जन्म दिया। यदि इस प्रकार की सूचनाओं का निर्धारण नित्य किया जाए तो किसी भी बस्ती के अधिकारियों को तुरंत पता चल जाएगा कि बमबारी-ग्रस्त क्षेत्र को अधिक से अधिक सुरक्षा के साथ किस प्रकार खाली कराया जा सकता है।

यह एक ऐसा एहतियाती कदम था जिसे बिना किसी विशेष व्यय या कठिनाई के उठाया जा सकता था, किन्तु जैसाकि नई सूझ के साथ प्रायः होता है, अधिकारियों ने इसे कार्यरूप में परिणत करने की ओर कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। अनेक वैज्ञानिक इस बात पर सहमत नहीं थे कि रेडियधर्मी 'फॉल आउट' वास्तव में कोई बड़ा खतरा पैदा कर सकता है। इसलिए डा० वैन स्ट्रैटन ने अपनी योजनाओं के कागज़ों का पुलंदा लपेटकर रख दिया, और दूसरे कामों में जुट गई। फिर शायद एक साल बाद एक दिन दुनिया-भर में यह कहानी बिजली की तरह फैल गई कि प्रशांत महासागर में अमरीका ने जो परमाणु-परीक्षण किए थे उनके रेडियधर्मी 'फॉल आउट' से कुछ जापानी मछुओं को गंभीर क्षति पहुंची है। तुरंत ही दुनिया-भर में लोगों के कान खड़े हो गए, और अमरीका सरकार ने अपनी सभी सशस्त्र सेनाओं को अपने सभी कामों में रेडियधर्मी 'फॉल आउट' का ध्यान रखने के आदेश जारी कर दिए। दुर्भाग्य से यह कोई नहीं जानता था कि 'ध्यान

कैसे रखा जाए।'

फिर भी एक व्यक्ति को इस बारे में पर्याप्त ज्ञान था। फ्लोरेंस वैन स्ट्रैटन ने अपने उन कागज़ों की धूल झाड़ी जिनमें इस समस्या के निदान से संबद्ध मूलभूत जानकारी निहित थी, हाल ही में इस विषय में किए गए परीक्षणों से प्राप्त नवीन जानकारी के प्रकाश में अपने पिछले काम को दुहराया और अपनी योजनाओं को फिर से प्रस्तुत कर दिया। दरअसल 'ध्यान रखने' से अभीप्सित भी यही था।

इस काम पर उसे जो पुरस्कार मिला उसमें इस दिशा में उसके पहले करने का उल्लेख किया गया है। बिना कहे ही उसने समस्या को पहचान लिया था, और उसका हल भी खोज निकाला था। उसके कार्य के फलस्वरूप अब समुद्र या भूमि पर स्थित प्रत्येक नौसैनिक अड्डे पर एक वायु-वैज्ञानिक अधिकारी नियुक्त रहता है जो नित्य एक लेखाचित्र अंकित करता है। इस लेखाचित्र से यह पता चलता है कि यदि उसके क्षेत्र में कोई बम गिरेगा तो रेडियधर्मी 'फॉल आउट' किन पद्धतियों को अपनाएगा। इस वायुवैज्ञानिक अधिकारी के दैनिक कार्य का एक अंग यह निर्धारित करना भी है कि वायुमण्डल की मौजूदा स्थितियों में जहाज़ों के लिए, सघनतम 'फॉल आउट' के क्षेत्रों को बचाते हुए किन दिशाओं से गुज़रना उचित रहेगा। यदि उसकी नियुक्ति भूमि के किसी अड्डे पर है तो उसे इस बात का निश्चय करना होता है कि अस्पताल, रसद, दवाइयां और जनता किस मार्ग से होकर गुज़रें और उन्हें किस स्थान पर पहुंचाया जाए।

डा० वैन स्ट्रैटन का कार्यक्षेत्र मौसमविज्ञान के सामान्य अर्थ से कहीं अधिक व्यापक हो गया है। यह तथ्य मान्यता प्राप्त कर चुका है—यह इस बात से स्पष्ट है कि सन् १९५८ के आरम्भ में एयरो-मेडिकल एसोसिएशन महिला विभाग ने वायुमंडलीय भौतिकी के क्षेत्र में की गई उपलब्धियों के आधार पर उसे 'वर्ष की सर्वश्रेष्ठ महिला' का सम्मान प्रदान किया। उसका विश्वास है कि खुद मौसमविज्ञान में आज की अपेक्षा कहीं अधिक युवतियों को रुचि लेनी चाहिए, क्योंकि यह एक मनोरंजक क्षेत्र है और इसमें सुअवसरों की कमी नहीं है। सन् १९५४-५५ के आसपास अमरीका में अनुमानतः दो प्रतिशत महिलाए मौसमविज्ञान को अपना व्यवसाय चुनती थीं। यद्यपि मौसम का पूर्वानुमान इस विज्ञान का सर्वाधिक सुपरिचित अंग है, लेकिन डा० वैन स्ट्रैटन का विश्वास है कि अनुसंधान, दूसरी तरह के प्रायोगिक कार्य और अध्ययन के क्षेत्र में महिलाओं के लिए अपेक्षाकृत अधिक

सुअवसर हैं। उद्योगों के लिए जलवायुविज्ञान के बढ़ते हुए महत्त्व के कारण इस क्षेत्र में सुअवसर कहीं अधिक हो गए हैं। वर्षा-तूफान में अपवाह (Run off) का पूर्वानुमान लगानेवाले जलविज्ञान का महत्त्व भी बढ़ता जा रहा है, क्योंकि अब बाढ़-नियंत्रण के कार्यों का विस्तार किया जा रहा है।

मौसमविज्ञान की किसी भी शाखा में काम किया जाए, गणित और भौतिक-विज्ञान इस क्षेत्र के लिए जरूरी है। इसके बिना किसी कॉलेज में मौसमविज्ञान में डिग्री के लिए दाखिला नहीं मिल सकता। अभी अधिक शोधार्थी मौसमविज्ञान में शोध-कार्य नहीं कर रहे हैं, यद्यपि इस प्रकार के कार्य के लिए पी-एच० डी० किए हुए मौसम-वैज्ञानिकों की आवश्यकता पड़ती है। उसका वैज्ञानिक क्षेत्र निश्चित रूप से ऐसा है जिसमें अतीत से कहीं अधिक काम भविष्य में होना है। अब बाहरी आकाश के नियंत्रण की बातें वैज्ञानिक उपन्यासकार नहीं करते। इन समस्याओं का अब गंभीर वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है और भविष्य में इन्हें सुलझाने में मौसम-वैज्ञानिकों का भी हाथ रहेगा।

ग्लैडिस एण्डरसन एमर्सन

ग्लैडिस एमर्सन के आरम्भिक जीवन में ऐसी कोई बात नहीं थी जिससे यह सूचना मिलती कि उसका भविष्य किस प्रकार का होगा। उसके पास केवल एक ही निधि थी—उसकी सहज-प्रसन्न चित्तवृत्ति—जिसके कारण किसी भी क्षेत्र में कार्य करना उसके लिए सरल हो जाता। उसका जन्म कैंसास में कार्डवैल नामक एक छोटे-से कस्बे में हुआ, लेकिन अभी वह बच्ची ही थी कि उसके मां-बाप टैक्सास में जाकर बस गए। किशोर अवस्था पार करने पर भी उसके कोई भाई या बहन नहीं हुई। उसे न तो पाठ्यक्रम की भारी-भरकम पुस्तकों में हर समय नाक घुसेड़े रहने की ज़रूरत थी, और न इस ओर उसकी रुचि ही थी। किताबों और अध्यापकों से सीखने में उसे कोई परेशानी न होती थी, और अपनी कक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होकर भी वह तफरीह के लिए काफी समय निकाल लेती थी। प्रारम्भ से ही वह जीवन का आनन्द लूटने के लिए कुछ समय निकाल रखना सीख गई थी, और यद्यपि समय के साथ-साथ अवकाश का आनन्द उठाने के बारे में उसके विचार परिपक्व होते गए तथापि उसने काम के बाद खेल और खेल के बाद काम का अपना पुराना रवैया जारी रखा। जब सन् १९५६ में वह कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के गृह-अर्थशास्त्र विभाग की चेयरमैन होकर एक नये पद पर और एक नये वातावरण में गई तो वह एक पियानो, तीन-चार कैमरे, संगीत की अलबमों का एक संग्रह, जिसमें मुख्यतः शास्त्रीय संगीत के रिकार्ड थे, आदि सामान भी अपने साथ लेती गई। इसके अलावा वह यह भी चाहती थी कि उसे एक ऐसा कुत्ता मिल जाए जो उसके भूतपूर्व प्रिय बड़े बालोंवाले टैरियर कुत्ते का स्थान ले सके।

स्कूल के दिनों में उसका नाम ग्लैडिस एण्डरसन था, और अन्य बहुत-सी लड़कियों की तरह वह भी अपने अध्ययन के अधिकांश विषयों में रुचि लेती थी,

और किन्हीं विशेष विषयों की ओर उसका रुझान नहीं था। फोर्ट वर्थ के ग्रेड स्कूलों में पढ़ते समय वह अपनी मां के प्रिय विषय गणित और पिता के प्रिय विषय इतिहास में समान रूप से रुचि लेती थी। इसके बाद उसका परिवार एल रेनो, ओकलाहोका, चला गया। वहां हाई स्कूल में उसे पता चला कि लैटिन और रसायन में भी उसकी उतनी ही रुचि है जितनी गणित, इतिहास और दूसरे सामाजिक विज्ञानों में। कभी-कभी उसे महसूस होता था कि उसे सार्वजनिक मंच से भाषण देने में सबसे अधिक आनन्द आता है, विशेष रूप से उसे यह अनुभूति उन दिनों हुई जब उसने स्टेट चैम्पियनशिप की विजेता टीम का नेतृत्व किया था। जब भी वह दिवास्वप्नों में खोई होती तो उसे लगता कि उसे उसका अभीष्ट या तो थिएटर दे सकता है, अथवा भाषण-मंच। हाई स्कूल के दिनों में चाहे उसकी प्रतिभा कैसी भी क्यों न रही हो, इतना तय है कि उसके शिक्षकों में से किसीको भी इस बात का गुमान नहीं था कि एक दिन पचास से भी कम की अवस्था में इस लड़की को वैज्ञानिक सफलताओं के लिए इसके समकक्ष वैज्ञानिक आदर-सम्मान देंगे।

जब वह ओकलाहोका में कॉलेज में पढ़ रही थी, तभी रंगमंच की अभिनेत्री बनने का उसका चाव समाप्त हो गया। उस वर्ष कॉलेज के ड्रामा एसोसिएशन ने शेक्सपियर के 'ऐज़ यू लाइक इट' को रंगमंच पर प्रस्तुत करने का निश्चय किया, और तुरन्त ही ग्लैडिस उस नाटक में रोज़ेलीन बनने के ख्वाब देखने लगी। जब अन्तिम रूप से पात्रों का निश्चय हुआ तो उसे पता चला कि उसे विलियम की भूमिका मिली है, जिसे कि शेक्सपियर ने एक देहातिन दासी ऑड्रे के प्रेमी गंवार मसखरे के रूप में चित्रित किया है। उसने वह भूमिका तो अदा की, किन्तु इस घटना से उसकी रंगमंच-सम्बन्धी आकांक्षाओं पर वज्रपात हो गया। अब केवल भाषण-मंच रह गया।

सच बात तो यह है कि यदि रसायन ने ग्लैडिस एण्डरसन को अपनी ओर आकृष्ट न किया होता तो अधिक सम्भावना इसी बात की थी कि वह एक सफल अध्यापक बनती। जब से उसने एक वैज्ञानिक के रूप में नाम कमाना शुरू किया है तब से एक सार्वजनिक वक्ता के रूप में उसकी मांग बराबर रही है। माउंट होलियोक, विल्सन, वर्नार्ड तथा अन्य महिला-कॉलेजों ने उसे अपने मंचों पर आमंत्रित किया है। येल, हारवर्ड ब्राउन, पेन्सिलवेनिया विश्वविद्यालय तथा दूसरे विश्वविद्यालय, रैन्सेलर पॉलीटैक्नीक और कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय का

मेडिकल स्कूल, उसे भाषण देने, अथवा अपने छात्रों के लिए विचार-गोष्ठियों का आयोजन करने के लिए बुला चुके हैं। रौटरी, किवानीज़ व दूसरे क्लब उसे अपने यहां निमन्त्रित कर चुके हैं। इसके अलावा वह वैज्ञानिक सम्मेलनों में भी प्राय: भाग लेती रहती है और वहां विचार-विनिमय में सम्मिलित होती है, अथवा लेख पढ़ती है।

हाई स्कूल के दिनों की भांति ही कॉलेज में उसकी रुचि किसी विषय-विशेष में नहीं थी, क्योंकि उसे कोई एक ऐसा विषय नज़र नहीं आता था जो अन्य विषयों की अपेक्षा अधिक आकर्षित कर सके। ओकलाहोका से उसने बैचलर की दो डिग्रियां प्राप्त कीं—भौतिकी और रसायन में बी० एस० तथा इतिहास और अंग्रेज़ी में ए० बी०। छात्र-सरकार की प्रेसिडेंट होने के नाते वह हफ्ते में एक बार मंच पर आने के अपने अभ्यास को बढ़ाती थी। यद्यपि वह कॉलेज के चोटी के खिलाड़ियों में नहीं गिनी जाती थी तथापि थोड़ा-बहुत टेनिस खेलते रहने से यह लड़की, जिसे तमाम उम्र लोग-बाग सराहना की दृष्टि से देखते रहे, चुस्त और फुर्तीली नज़र आती थी। वह कॉलेज की गतिविधियों में खुलकर भाग लेती थी, और दो वर्षों के लिए रसायन और भौतिकी में मिले टीचिंग असिस्टेण्ट के पद की ज़िम्मेदारियां भी निभाती थी। फिर भी वह पियानो पर रियाज़ करने के लिए समय निकाल लेती थी, तथा छात्र-जीवन के हर प्रकार के आमोद-प्रमोद में पूरा-पूरा हिस्सा बंटाती थी।

कॉलेज में उसके सामने यह विकल्प था कि वह विज्ञान अथवा इतिहास दोनों में से किसी एक विभाग में सहायक अध्यापक का पद स्वीकार करे। उसने विज्ञान को प्राथमिकता दी। ग्रेजुएट पाठ्यक्रम के प्रथम वर्ष के लिए उसने अपना यह निर्णय सुरक्षित रखा। इसके बाद वह स्टैनफोर्ड विश्वविद्यालय चली गई और अगले वर्ष सहायक अध्यापक रहते हुए उसने वहां से इतिहास में एम० ए० कर लिया। अगले वर्ष वह ओकलाहोका सिटी में एक जूनियर हाई स्कूल में सामाजिक विज्ञानों के विभाग की अध्यक्ष हो गई।

तब, २३ वर्ष की अवस्था में ग्लैडिस एण्डरसन ने उस मार्ग पर पहला कदम रखा जिसपर चलकर २६ वर्ष बाद उसे रसायन में विशिष्ट कार्य करने पर गार्वन पदक प्राप्त हुआ। उसके पास अध्यापन का सुअवसर प्रदान करनेवाले दो आकर्षक आमन्त्रण आए जिनमें से एक आर्ट्स का था और दूसरा विज्ञान का।

दूसरा आमन्त्रण बर्कले-स्थित कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के पोषण-विभाग में एक फेलोशिप के रूप में था। अब उसके सामने ग्रेजुएट कक्षाओं में विज्ञान का अध्ययन करने का सुअवसर भी था, और इस बात का निर्णय अविलम्ब कर लेना उसके लिए आवश्यक हो गया था कि वह सामाजिक विज्ञानों और जीवरसायन में से किसे चुने। उसने विज्ञान में उच्चतर अध्ययन का सुअवसर प्रदान करने-वाली कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय की इस फेलोशिप को स्वीकार कर लिया।

बर्कले में पहले साल काम कर लेने के बाद उसकी रुचि जीवविज्ञान में सुस्थिर हो गई। तीन साल कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में पढ़ाने और एक साल आयोवा स्टेट कॉलेज में नौकरी करने के बाद वह कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय लौट आई और जीव-पोषण और जीव-रसायन में सन् १९३२ में उसने वहां से पी-एच० डी० की डिग्री प्राप्त कर ली। इसीके आसपास अन्य अनेक युवती वैज्ञानिकों की भांति उसने भी अपने एक सह-वैज्ञानिक के नाम पर अपना नाम परिवर्तित कर लिया।

जीवरसायनज्ञ के रूप में उसकी शिक्षा में एक बड़ी कमी यह रह गई थी कि वह अधिकार के साथ जर्मन नहीं पढ़ पाती थी, और न उसमें वार्तालाप ही कर पाती थी। वह जिन विषयों पर काम करना चाहती थी उनका अधिकांश भाग पहले जर्मन में प्रकाशित होता था, और वैज्ञानिक सभा-सम्मेलनादि की प्रकृति इतनी अन्तर्राष्ट्रीय होती है कि जर्मन में वार्तालाप करने की क्षमता होने से बड़ी सहूलियत हो जाती है। इसके अलावा युवा डा० एमर्सन का यह विश्वास था कि विदेश में रहकर, विख्यात जर्मन वैज्ञानिकों के संपर्क में रहकर और उनके अधीन काम करके वह अपना सम्यक् विकास कर सकेगी। इसलिए उसने एक साल तक विदेश में अध्ययन करने का निश्चय किया और इसके लिए गौटिंजेन विश्व-विद्यालय को चुना, जहां कि एडोल्फ विंडौस रसायन के प्रोफेसर और विश्व-विद्यालय की प्रयोगशालाओं के निदेशक थे। कुछ वर्ष पहले विंडौस को विटामिनों के सन्दर्भ में स्टेरोल (Sterols) के अनुसन्धान पर नोवल पुरस्कार मिल चुका था। स्टेरोल आणविक अलकोहलों का एक वर्ग है। इस वर्ग में सामान्य जन का सर्वाधिक परिचय कोलेस्टेरोल से है। डा० एमर्सन इस विषय में पहले से ही रुचि लेने लगी थी।

गौटिंजेन में उस वर्ष के अनुभव वैसे आनन्दप्रद नहीं सिद्ध हुए जैसीकि उसे

आशा थी। ग्लैडिस एमर्सन के पहुंचने के छः महीने बाद ही जर्मनी पर नाज़ियों का अधिकार हो गया। विश्वविद्यालयों से शीघ्र ही लोग गायव होने लगे, और गौटिंजेन भी इसका अपवाद नहीं था। नाज़ियों के यहूदी-विरोधी आदेशों का कुप्रभाव प्रो० विंडौस पर नहीं पड़ा, और डा० एमर्सन उनके, फैकल्टी के दूसरे असाधारण सदस्यों तथा ग्रेजुएट छात्रों के साथ अपने काम में लगी रही। इन्हीं साथियों में से एक एडोल्फ ब्यूटेनेंट इन दिनों 'हारमोन्स' नाम से विख्यात शरीर-रसायनों पर काम कर रहा था जिसपर कुछ वर्षों बाद उसे नोवल पुरस्कार मिला जो उसे अस्वीकार कर देना पड़ा, क्योंकि नाज़ियों के आदेशानुसार उन दिनों कोई जर्मन वैज्ञानिक नोवल पुरस्कार स्वीकार नहीं कर सकता था। यद्यपि हालात नाजुक होते जा रहे थे किन्तु डा० एमर्सन ने गौटिंजेन में अपने एक वर्ष में अपने व्यवसाय से सम्बन्धित अनेक लोगों से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित किए। जब नाज़ियों की शक्ति कुचल दी गई, और जर्मन विश्वविद्यालयों, विज्ञान और उद्योगों का पुनर्गठन हुआ, तो गौटिंजेन के इन बहुत-से साथियों ने उस पुनर्गठन का नेतृत्व किया, तब उनसे डा० एमर्सन के सम्बन्ध फिर से नये हो उठे।

डेढ़ वर्ष विदेश में रहने से उसे सबसे अधिक निराशा इस बात से हुई कि ऐसे वातावरण में रहकर और काम करके भी, जहां कि हर समय जर्मन बोली जाती थी, वह धाराप्रवाह जर्मन बोलना नहीं सीख सकी।

"मैं इसे पढ़ तो आसानी से लेती हूं," उसका कहना है, "और जर्मन में बात-चीत में अपने मंतव्य को किसी कदर स्पष्ट भी कर देती हूं। लेकिन मेरी जर्मन कर्णकटु होती है और मैं अनुमान लगा सकती हूं कि भाषा के जानकार को यह कैसी लगती होगी। फिर भी, जब कभी मैं यूरोप जाती हूं तो जर्मन का ही प्रयोग करने का प्रयत्न करती हूं—और हर बार मेरे श्रोता मेरी बातों का जवाब शुद्ध अंग्रेज़ी में देते हैं।"

सौभाग्य से, बातचीत में धाराप्रवाह जर्मन न बोल पाने से उसे उन प्रयोगगत जंतुओं से संपर्क स्थापित करने में कोई परेशानी नहीं उठानी पड़ी जिनपर घर लौटने के बाद उसने काम शुरू किया। यहां बोले गए शब्दों का कोई महत्त्व नहीं था। जब उसने सफेद चूहों, कुत्तों और दुष्ट प्रकृति, तुनुकमिज़ाज व महंगे छोटे रीसस (Rhesus) बन्दरों पर प्रयोग किए तब भी उच्चरित भाषा की सहायता उसे नहीं लेनी पड़ी। योग्यताप्राप्त वैज्ञानिक जानते हैं कि ये सब जानवर प्रायो-

गिक कार्य का जवाब ऐसे शब्दहीन संदेशों से देते हैं जिनकी व्याख्या वैज्ञानिक अपनी भाषा में कर सकता है।

उस अगले वर्ष, अमरीका लौट आने पर, डा० एमर्सन को कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रायोगिक जीव-विज्ञान संस्थान में रिसर्च एसोशिएट का पद दिया गया और पोषण विभाग का इनचार्ज बनाया गया। उसने भोजन में व्यवस्थित प्रयोगों द्वारा यह पता लगाने और इसकी व्याख्या करने का काम शुरू किया कि हमारे भोजन में निहित रासायनिक पदार्थों का मानवों पर क्या प्रभाव पड़ता है, और जानवरों पर प्रयोग करके इस दिशा में क्या कुछ जानकारी हासिल की जा सकती है। यह कोई नया काम नहीं था, बल्कि उसने अपने पहले किए गए काम को ही आगे बढ़ाने का निश्चय किया था। इस काम में सफेद चूहों, हेम्सटरों (एक प्रकार के बड़े चूहों), और कुत्तों पर प्रयोग किए जाने थे, क्योंकि मनुष्यों की भांति ये भी स्तनधारी हैं। इन्हें 'स्तनधारी' इसलिए कहा जाता है क्योंकि इनकी मादाओं के दूध देनेवाली स्तन-ग्रंथि होती हैं जिसके कारण इनके लिए अपने बच्चों को दूध पिलाना संभव होता है। उन दिनों, और आज भी, प्रायोगिक कार्यों के लिए सबसे अधिक प्रयोग सफेद चूहों का होता था। इसका एक कारण तो यह है कि इन्हें पैदा करने और इनकी देखभाल करने में खर्च कम होता है, दूसरे, अन्य निम्न कशेरुकी वर्ग (Lower vertebrates) की अपेक्षा सफेद चूहों पर भोजन और दवाओं की प्रतिक्रिया बहुत कुछ वही होती है जो मानवों पर होती है।

सन् १९३३ में वह बर्कले, अपने इंस्टिट्यूट लौटी तो वहां विटामिन 'ई' पर काम हो रहा था। इसके निदेशक हरबर्ट एम० ईवांस इस विटामिन को खोजकर, इसका नामकरण कर चुके थे। अभी से इसे 'प्रजनन-विटामिन' कहा जाने लगा था, क्योंकि यह सिद्ध हो चुका था कि जिन चूहों को विटामिन 'ई' की कमी-वाली खुराक दी गई, उनकी प्रजनन-शक्ति नष्ट हो गई। तब यह मान लिया गया था कि प्रजनन-शक्ति का यह ह्रास विटामिन 'ई' की कमी के कारण ही हुआ है। यदि ऐसा है, तो क्या विटामिन 'ई' की कमी मनुष्यों को प्रजनन-शक्तिहीन बना सकती है? यह एक ऐसी समस्या थी जिसपर अभी अनुसंधान होना था। यह तो ज्ञात हो चुका था कि विटामिन 'ई' अनाज, सब्ज़ियों, गोश्त और दूध में होता है, और गेहूं के अंकुर में यह विटामिन-विशेष प्रचुरता से होता है। इस आखिरी मान्यता के कारण दुनिया के कुछ हिस्सों में यह रिवाज चल निकला था कि

विवाहित युवतियां, विशेष रूप से गर्भिणी महिलाएं, रोज़ एक मुट्ठी गेहूं के दाने खाने लगीं ताकि वे संसार को स्वस्थ बच्चे दे सकें। फिर, वह रिवाज किसी तर्क-संगत आधार पर था या यह एक तर्कहीन अंधविश्वास-भर था ?

आज वैज्ञानिक हमें इस प्रश्न का आंशिक उत्तर देते हुए बताते हैं कि यह सिद्ध नहीं हो सका कि मानवीय पोषण के लिए विटामिन 'ई' अनिवार्य है। यदि गेहूं के दाने वास्तव में स्वस्थ बच्चे पैदा करने में कोई मदद देते हैं तो इसका कारण उनमें निहित विटामिन 'ई' नहीं है। फिर भी, इस प्रकार की बात तब तक नहीं कही जा सकती थी जब तक कि वैज्ञानिक, अन्य कारणों के अभाव में, इस विटामिन-विशेष के प्रभाव का अध्ययन न कर लेते। प्रकृति इसे केवल पेचीदे, और दूसरी चीज़ों के साथ मिले हुए, रूप में ही उत्पन्न करती है, इसलिए इसपर संतोषजनक प्रायोगिक कार्य आरम्भ करने के पहले इसे खालिस रूप में प्राप्त करना ज़रूरी था।

डा० ईवांस और दूसरे अनुसंधाता विटामिन 'ई' को पृथक् करने का प्रयत्न कर रहे थे। इसी समय डा० एमर्सन भी उनका हाथ बंटाने बर्कले आ पहुंची। वे लोग विटामिन 'ई' को अलग करने के काम में तो कृतकृत्य हुए ही, सन् १९३६ तक उन्होंने इसे तीन भिन्न रूपों में पृथक् कर लिया और तीनों के नाम अल्फा, बीटा और गामा टोको फेरोल रख दिए। इन तीनों को गेहूं के अंकुर, मक्का के अंकुर और बिनौलों के तेलों से प्राप्त किया गया था। जब पृथक् किए गए विटामिन 'ई' के अध्ययन से उसकी रचना स्पष्ट हो गई,और उसे संश्लेषणात्मक रूप से प्रयोग-शाला में तैयार करना संभव हो गया,तब इस संश्लिष्ट विटामिन 'ई' और प्राकृतिक साधनों से प्राप्त विटामिन 'ई' के प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया। इस अध्ययन का निष्कर्ष यह निकला कि प्राकृतिक और संश्लिष्ट दोनों प्रकार के विटा-मिनों की शक्ति एक ही है। अब,बर्कले के अनुसंधाता प्रयोगगत जीवों पर इनके प्रयोग करने में जुट गए। उन्हें आशा थी कि शायद उन्हें कोई ऐसी उपलब्धि हो जाए जो चिकित्सा-पद्धति का एक अंग बनकर मानव-जाति का कुछ कल्याण कर सके।

यद्यपि, जैसाकि पीछे कह चुके हैं, मानव की प्रजनन-प्रक्रियाओं में विटामिन 'ई' का क्या महत्त्व है—इस बात का निर्णय अभी तक नहीं हो सका है, परंतु फिर भी प्रयोगों से इतना तो पता चल ही गया है कि सफल प्रजनन के लिए इसे अनिवार्य माननेवाली प्राचीन मान्यता सही है। सन् १९३९ में डा० ईवांस

और डा० एमर्सन ने सफेद चूहों की चार पीढ़ियों का अध्ययन किया। जिनमें कुल मिलाकर लगभग ३०० चूहे थे। इस अध्ययन से पता चला कि विटामिन 'ई' की कमीवाली खुराक देने से पीढ़ी-दर-पीढ़ी उत्पादन-क्षमता किस प्रकार कम होती जाती है। यह भी स्पष्ट हो गया कि चुहियों को उदर-नली की सहायता से विटामिन 'ई' की खूराकें देकर, चौथी पीढ़ी में, उनमें फिर से उत्पादन-क्षमता उत्पन्न की जा सकती है।

अगले वर्ष एक और प्रयोग में पहले की ही भांति विटामिन 'ई' दिया गया। इस प्रयोग से पता चला कि विटामिन 'ई' की कमीवाली खूराक पर पलनेवाली चुहियों का दूध पीने से जिन बच्चों में पेशीगत दुष्पोषण हो गया है उसे रोका जा सकता है, बशर्ते कि प्रसव के दिन से ही जननेवाली चुहियों को विटामिन 'ई' दिया जाए। अनुसंधाताओं ने कुछ चुहियों को साथ-साथ विटामिन 'ई' की कमीवाली खूराकें दीं। जब एक दिन उनमें दो चुहियों के साथ-साथ बच्चे हुए तो उन्होंने उन सभी बच्चों को मिलाकर उन्हें दो भागों में बांटा। इसके बाद एक भाग के बच्चों को एक चुहिया का दूध पिलाया और दूसरे भाग के बच्चों को दूसरी का। अब उन्होंने एक चुहिया को तो पहले जैसी खूराक पर ही रहने दिया, मगर दूसरी को विटामिन 'ई' देना शुरू कर दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि यद्यपि सभी बच्चों को मिला दिया गया था और यह नहीं कहा जा सकता था कि कौन बच्चा किस चुहिया का है, फिर भी पहली चुहिया का दूध पीनेवाले बच्चे पेशीगत दुष्पोषण से नहीं बच सके; मगर दूसरी चुहिया, जिसे प्रसव के बाद से विटामिन 'ई' दिया गया था, का दूध पीनेवाले बच्चे पेशीगत दुष्पोषण का शिकार नहीं हुए।

उन दिनों मि० ज्यॉर्ज डब्ल्यू० मर्क इस इंस्टीट्यूट में अक्सर आते-जाते रहते थे। वे उस समय मर्क एण्ड कम्पनी के प्रेसीडेण्ट थे। इस कंपनी की राहवे, न्यूजर्सी-स्थित प्रयोगशालाएं अमरीका और विश्व के अन्य भागों में दवाओं आदि के लिए विख्यात हैं। मर्क चिकित्सीय शोध इंस्टीट्यूट भी इसी कंपनी से सम्बद्ध था, और उसमें भी बहुत कुछ वही प्रायोगिक कार्य होता था जो डा० एमर्सन के इंस्टीट्यूट में होता था। फर्क सिर्फ यह था कि मर्क इंस्टीट्यूट में यह काम अपेक्षाकृत बड़े पैमाने पर होता था। मि० मर्क व मर्क इंस्टीट्यूट के कई वैज्ञानिक डा० एमर्सन के कृतित्व व व्यक्तित्व से परिचित थे और वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि यदि डा० एमर्सन उनके इंस्टीट्यूट में आ जाएं तो वहां के कर्मचारी-मण्डल को चार चांद

लग जाएंगे। उन्होंने डा० एमर्सन को इस बात का आश्वासन दिया कि न्यूजर्सी में उपलब्ध सुविधाओं को देखते हुए, यह परिवर्तन उसके हित में ही रहेगा। इस प्रकार सन् १९४२ में ३९ वर्ष की उम्र में डा० एमर्सन मर्क इंस्टीट्यूट के जन्तु पोषण विभाग की अध्यक्षा बनकर न्यूजर्सी चली गई। अब उसके विभाग का सारा खर्च एक सफल फार्मेस्युटिकल कंपनी उठा रही थी, और उसे अपने प्रायोगिक कार्य के लिए, प्रायः आर्थिक कष्टग्रस्त सामान्य विश्वविद्यालय की अपेक्षा कहीं अधिक सुविधाएं प्राप्त थीं।

इस परिवर्तन के साथ डा० एमर्सन ने औद्योगिक संसार में पदार्पण किया जहां कि आजकल अनेक नवयुवतियां नौकरी कर रही हैं और वैज्ञानिक कार्यों को हाथ में लेना चाहती हैं, यद्यपि उनकी शैक्षिक योग्यता रसायन में बैचलर से अधिक नहीं होती। डा० एमर्सन के पास उच्चतर डिग्रियां थीं, वर्षों का अनुभव था जिसके कारण उसे पशुओं पर प्रयोग करने में विशेष निपुणता प्राप्त हो गई थी, प्रशासनिक योग्यता थी, और इसके अलावा अपने तथा दूसरे क्षेत्रों के लोगों से अच्छे संबंध बनाए रखने की अद्भुत क्षमता थी—इन सब बातों के कारण वह इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पद के लिए पूर्णतः योग्य थी।

इस नई नौकरी में कम योग्यताप्राप्त युवतियों को प्रायोगिक कार्यों की तकनीकों में प्रशिक्षित करने का काम भी उसे दिया गया। वह ऐसे शोध-कार्य के आयोजन और निदेशन में लगी हुई थी जो फार्मेसी और पोषण के क्षेत्रों में उपयोगी सिद्ध हो सकता था। प्रशिक्षित सहकर्मियों की आवश्यकता प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी क्योंकि अमरीका युद्ध में कूद पड़ा था, और वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में नारियों की मांग बढ़ रही थी। स्वयं वैज्ञानिकों को अपनी प्रयोगशाला में आपत्कालीन ड्यूटी देने आना पड़ता था, और आपत्काल में खुद डा० एमर्सन को अपना कुछ समय वैज्ञानिक-शोध एवं विकास कार्यालय में देना पड़ता था। युद्ध-समाप्ति के बाद व्याख्याता, या वैज्ञानिक विचार-गोष्ठियों की नेत्री के रूप में उसकी मांग बढ़ गई। मर्क इंस्टीट्यूट चाहता था कि वह इस प्रकार के शिक्षा-कार्यों को अपना कुछ समय देती रहे।

मर्क में उसने अपने आरंभिक प्रयोग अधिकतर सफेद चूहों पर ही किए। ये प्रयोग मुख्यतः विटामिनों के 'बी' कॉम्प्लेक्स परिवार से संबद्ध थे। ये विटामिन वाकई बड़े पेचीदा थे। इनके बारे में ज्ञात नवीन तथ्यों से पता चलता था कि इस

परिवार के हर विटामिन का स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोग है, इसलिए औषधि-निर्माताओं के इनके संश्लिष्ट रूप का निर्माण व्यापारिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण बन गया था। अनुसंधानों से पता चला कि आरम्भ में जिसे विटामिन 'बी' के नाम से पुकारा जाता था, वह एक विटामिन नहीं बल्कि एक विटामिन वर्ग है जिसमें कम से कम सात या इससे भी अधिक विटामिन हैं। डा० एमर्सन का यह काम पहले किए गए काम से मिलता-जुलता ही था, नवीनता यह थी कि अब जिस विशिष्ट विटामिन या एकाधिक विटामिनों का अध्ययन करना होता था उससे रहित भोजन देकर पहले पशुओं में तरह-तरह की बीमारियां उत्पन्न कर ली जाती थीं। जिन चूहों, हेम्सटरों, और कभी-कभी कुत्तों को इन विटामिनों से रहित भोजन दिया जाता था। उनके शरीर में या तो असामान्य वृद्धि हो जाती थी, अथवा उनकी आंख, त्वचा या अन्य अंगों की स्थितियों में असामान्यता दिखाई देने लगती थी। जब उक्त पशुओं के मृत शरीरों का विच्छेदन किया जाता था तो कभी-कभी जिगर, गुर्दों, तथा दूसरे हिस्सों को भी असामान्य स्थिति में पाया जाता था। इस बात का निर्धारण करना भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था कि इन विकृतियों को (ये विकृतियां बहुत कुछ इसी रूप में मनुष्यों में पाई जाती हैं) विटामिन की सर्वश्रेष्ट खूराक देकर किस प्रकार कम या बिलकुल दूर किया जा सकता है। इस बात का पता लगाने का भी प्रयत्न किया गया कि ये विटामिन इंजेक्शन के रूप में सुई से दिए जाएं या खूराकों के रूप में मुंह से। ये सब बातें चिकित्सा के क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थीं।

सन् १९४०–५० तक उसने विटामिनों पर काम किया। इस काम ने और विश्वविख्यात स्लोन-केटरिंग इंस्टीट्यूट फॉर रिसर्च में एसोशिएट के पद पर नियुक्त हो जाने के बाद अर्बुदों की उत्पत्ति पर कॉर्टिज़ोन और आहार के प्रभाव पर किए गए काम ने, डा० एमर्सन को उसके सबसे प्रिय अनुसंधान-क्षेत्र में प्रवृत्त किया। वह एक जीवरसायनज्ञ थी, और इस शब्द का अर्थ ही है एक ऐसा रसायनज्ञ जो जीवित शरीरों पर रासायनिक पदार्थों के प्रभावों का अध्ययन करे। अब वह धमनी-काठिन्य या धमनियों का कड़ा होना (Arterios clerosis) को जन्म देने-वाले कुछ पोषण-सम्बन्धी कारकों के प्रभाव का अध्ययन करने में प्रवृत्त हुई। धमनी-काठिन्य एक ऐसा रोग है जो वृद्धों को प्रायः हो जाता है। इससे उनकी मृत्यु कुछ जल्दी ही हो जाती है। जब मर्क इंस्टीट्यूट ने उसे रीसस बन्दरों पर

प्रयोग करने की सुविधा प्रदान की, ताकि इस बीमारी के कारणों और इसके इलाज के बारे में अधिक से अधिक जानकारी हासिल की जा सके, तो उसने इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया, यद्यपि रीसस बन्दर दुष्ट प्रकृति के छोटे जानवर होते हैं जिन्हें वह 'जंगली, निर्दय-नन्हे हैवान' कहती है, और उनपर प्रयोग करना खतरे से खाली नहीं है।

बहुत दिनों से वैज्ञानिक लोग यह मानते चले आ रहे थे कि वानर-परिवार के जन्तु भोजन की प्रतिक्रियाओं और पोषण-विषयक बीमारियों की ग्रहणशीलता में मानव-परिवार से बहुत कुछ समानता रखते हैं, और इनके अध्ययन से मानव-जाति के कल्याण के लिए अमूल्य जानकारी प्राप्त हो सकती है। सन् १६५० के दशक में बुशमैन पर आहार की कमियों का अध्ययन कर लेने के बाद तो वैज्ञानिकों का यह मत और भी दृढ़ हो गया। बुशमैन शिकागो के लिंकन-पार्क जू का प्रसिद्ध गुरिल्ला था जो बाईस वर्ष की उम्र में सात महीने की बीमारी के बाद मर गया था। अपनी बीमारी के दौरान उसने अनेक मनुष्यों की भांति जराकालीन ह्रास के परिणाम भुगते। यद्यपि उसका आहार तत्कालीन मानदण्डों की दृष्टि से ठीक था, फिर भी उसके एक हाथ और एक टांग के कुछ भाग पर फालिज गिर गया था। इसके अलावा वह धमनी-काठिन्य और एक प्रकार के तंत्रिका-शोध (Neuritis) से पीड़ित था जो एक प्रकार के विटामिन 'बी' की कमी के कारण हो जाता है। यद्यपि बुशमैन को वैज्ञानिक लोग अपनी समझ से 'उपयुक्त' आहार देते थे फिर भी उसकी शव-परीक्षा से पता चला कि उसके शरीर में कुछ और परिवर्तन भी हुए थे जिनका कारण पोषण की कमियां ही थीं।

यद्यपि गुरिल्लों और मनुष्यों की आहार-विषयक आवश्यकताएं एक नहीं होतीं तथापि बुशमैन के शरीर के वैज्ञानिक अध्ययन ने डा० एमर्सन आदि वैज्ञानिकों को यह मानने का एक और आधार प्रदान किया कि धमनी-काठिन्य से सम्बद्ध उनका पोषक-विषयक अनुसंधान ठीक दिशा में प्रगति कर रहा है। मर्क इंस्टीट्यूट की प्रयोगशाला में कुत्तों और वन्दरों पर प्रयोग किए जा रहे थे। पहले त्रुटिपूर्ण आहार देकर उनकी धमनियों को कड़ा किया जाता था और फिर उस आहार के स्थान पर उन्हें ऐसी वस्तुएं दी जाती थीं जो ह्रासोन्मुख रुधिर-वाहिकाओं को प्राकृतिक या बहुत कुछ प्राकृतिक अवस्था में ला सकें। इस प्रकार के अनुसंधान-कार्य के लिए रीसस बन्दरों का प्रयोग आसान या खतरे से खाली नहीं है, और

डा० एमर्सन अपने उन निडर सहयोगियों के प्रति वस्तुतः कृतज्ञ है जो इस काम में उसकी सहायता करते थे।

धमनी-काठिन्य के बारे में किए गए अध्ययन का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है: अपने पहले के वैज्ञानिकों के काम को आगे बढ़ाते हुए मर्क के अनुसंधाताओं ने पन्द्रह बन्दरों को चार से लेकर चौदह महीनों तक बी—६ की कमीवाला आहार दिया। समय-समय पर बन्दरों के शरीरों का विच्छेदन करके उनका अध्ययन किया गया। ज्ञात हुआ कि चार महीनों में ही उनकी धमनियां कठोर होनी शुरू हो गई थीं, और दूसरे अंग भी प्रभावित होने लगे थे। जिन बन्दरों का विच्छेदन सबसे पहले किया गया था उनके शरीरों में आए विकार अणुवीक्षण यंत्र की सहायता से ही देखे जा सकते थे, किन्तु जिनका विच्छेदन काफी समय बाद किया गया उनमें ये विकार केवल आंख से दिखाई दे जाते थे। तदनंतर, जो बन्दर जीवित थे, और जिनमें इन बीमारियों के लक्षण पाए जाते थे, उन्हें विटामिनयुक्त आहार दिया गया, और कुछ समय बीत जाने पर, जब उनके शरीर में काफी मात्रा में विटामिन पहुंच गया, एक-एक करके उनका भी विच्छेदन किया गया, व उनकी धमनियों तथा दूसरे अंगों की परीक्षा की गई। उनके शरीरों में लिखित संदेशों और उनके आहार-विषयक वैज्ञानिक प्रयोगों के परिणामों की व्याख्या करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला गया कि ये परीक्षण मानवीय रोगों के इलाज में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। मर्क इंस्टीट्यूट के अधिकारियों की इन अनुसंधानों में कितनी अधिक दिलचस्पी थी इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि कभी-कभी इन प्रयोगगत जन्तुओं के नाम मर्क इंस्टीट्यूट के उपप्रधानों के नाम पर रख दिए जाते हैं, और यह गौरव का विषय समझा जाता है।

जब सन् १९५६ में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय से उसके पास एक आकर्षक निमंत्रण आया तो डा० एमर्सन यह सोचकर उदास हो गई कि उसे अपना शोध-कार्य, विशेष रूप से धमनी-काठिन्य-विषयक अनुसंधान छोड़ना होगा। उसे गृह-अर्थशास्त्र विभाग की चेयरमैन के पद पर आमंत्रित किया गया था। जब कभी इस सुअवसर की बात चलती है तो डा० एमर्सन यह कहे बिना नहीं चूकती कि शिक्षक के पद के लिए मुझमें कोई असाधारण योग्यता नहीं थी। यूसीएलए (यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, लॉस एंजिल्स) में १६००० से अधिक पूर्णकालिक छात्र थे, और यह पद, मुख्य रूप से प्रशासनिक होने के कारण, उसकी रुचि का

था। उसे इस बात का भी आश्वासन दिया गया कि वह मर्क में परामर्शदाता के रूप में भविष्य में भी काम कर सकेगी। जब मर्क इंस्टीट्यूट कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय को २६ बंदर उपहार-स्वरूप देने को तैयार हो गया ताकि डा० एमर्सन अपना अनुसन्धान जारी रख सकें, तो वह इस सुअवसर का लाभ उठाए बिना न रह सकी। लॉस एंजिल्स पहुंचने के कुछ ही महीने बाद विश्वविद्यालय के नर्सरी स्कूल ने उससे एक बंदर की फरमाइश की ताकि बच्चे उसे पालकर अपना मनोरंजन कर सकें। अब उसे महसूस हुआ कि एक वैज्ञानिक की प्रयोगशाला से उसका एकेडैमिक जीवन कितनी दूर ले जाया जा सकता है, क्योंकि कोई व्यक्ति इन जानवरों की उचित देखभाल करने के लिए उत्सुक नहीं था जो नन्हे पालतू जानवर बनने के लिए नहीं, बल्कि उच्चतर वैज्ञानिक अनुसंधान के उपयुक्त थे।

जब ग्लैडिस एमर्सन कैलिफोर्निया-स्थित अपने नये घर में प्रविष्ट हुई तो वह ५३ वर्ष के लगभग की एक स्वस्थ-आकर्षक महिला थी। तब तक वह वैज्ञानिक पत्र-पत्रिकाओं में लगभग १०० लेखादि प्रकाशित करा चुकी थी, जिनमें या तो उसके अध्ययन के निष्कर्ष थे अथवा, जैसाकि वैज्ञानिक अनुसन्धान में सामान्यतः होता है, दूसरों के सहयोग में किए गए अनुसन्धान का विवरण था। उसे गार्वन स्वर्ण-पदक प्रदान किया जा चुका था। उसके समकक्ष वैज्ञानिकों का कहना है कि वह इस पदक की सर्वथा सुयोग्य पात्र थी। भावी जीवन के प्रति उसके मन में अनेक आशाएं थीं। वह विश्व स्वास्थ्य संघ तथा दूसरी संस्थाओं के सहयोग से विश्व के उन भागों के निवासियों को श्रेष्ठतर पोषण देने के तरीकों और साधनों की खोज करना चाहती है जहां पुष्टिवर्द्धक आहार उपलब्ध नहीं है। इस दिशा में योजनाएं बन रही हैं, और काम भी हो रहा है। डा० एमर्सन लॉस एंजिल्स अन्तर्राष्ट्रीय मामलों की परिषद् की गतिविधियों और अपने विश्वविद्यालय के छात्र-वर्गों में समान रूप से सक्रिय रुचि ले रही है।

उसका भविष्य जो भी हो, उसके दोस्तों का यकीन है कि वह सिर्फ काम में ही नहीं डूबी रहेगी। लॉस एंजिल्स में जाकर उसने सबसे पहले एक कुत्ता पाला— यह चॉकलेटी रंग का एक छोटा-सा पूडिल है। शीघ्र ही उसने एक ग्रुप आयोजित किया जो साथ-साथ लोकगीतों को गाने का अभ्यास करता था। इस ग्रुप के सदस्य सभी तरह के साज बजाते थे, जिनमें पियानो, गिटार, एकॉर्डियन और रिकॉर्डर

आदि सभी कुछ था। उसे पहले फुटवाल का वड़ा शौक था, लेकिन वहुत दिनों से वह उसकी उपेक्षा करती आ रही थी। अब उसने फुटबाल का लुत्फ उठाना भी शुरू कर दिया। आगामी वर्षों में उसका विचार इन सब चीज़ों का, और यात्रा और दूसरी चीज़ों का जी भरकर आनन्द उठाने का है। वह अपने मित्रों से मधुर सम्बन्ध बनाए रखने में विश्वास करती है, और प्रयोगशाला के अन्दर अपने सहयोगियों और उसके वाहर अपने मित्रों से कभी नाराज़ नहीं होती।

डोरोथी रुडनिक

जीवन के पहले बीस वर्षों में डोरोथी रुडनिक बहुत कुछ सोचती थी। वह वैज्ञानिक अध्ययन, विशेष रूप से प्रायोगिक अध्ययन का डटकर प्रतिरोध करती रही। होश संभालने के बाद १६ वर्ष की अवस्था तक उसने अपने भविष्य के प्रति जो कामनाएं की थीं उनमें वैज्ञानिक बनने की आकांक्षा शामिल नहीं थी।

ओकोनोमोवोक, विस्कांसिन, के एक प्राइवेट सैनिटोरियम में उसे पहली बार जीवन की पृथक् सत्ता का भान हुआ। उसकी शिकागो-वासी मां अपने प्रसव के लिए इसी स्थान को चुनती थी। उसका एक भाई बड़ा था, और एक छोटा। दोनों ही उदीयमान भौतिकविद् थे, और पिता रसायनज्ञ। इस वातावरण का उसके विकास पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था। उसीके शब्दों में, "मैं एक ऐसे घर में पली जहां हम सब सांस ही विश्लेषणशील वायुमंडल में लेते थे।"

इसमें उसके लिए दुःखी होने की कोई बात न थी। वह एक जहीन बच्ची थी, और जल्दी ही उसकी समझ में आ गया कि विज्ञान और विश्लेषणात्मक मनोवृत्ति —दोनों ही मनोरंजक हैं। फिर भी, उसके बाल-मन में कोई ऐसी चीज़ थी जो उसे यह नहीं मानने देती थी कि विज्ञान इतना रोचक विषय हो सकता है जिसमें वह अपना सारा जीवन लगा दे। उसके सामने और बहुत-सी संभावनाएं थीं, यद्यपि यह सच है कि वह यह निश्चय नहीं कर पाती थी कि अपना जीवन-व्यापी व्यवसाय किसे चुने।

डोरोथी ने अपनी शिक्षा अपने भाइयों के साथ शिकागो के दक्षिण में स्थित पब्लिक स्कूलों में प्रारम्भ की। वह पार्कर हाई में पढ़ती थी। पार्कर एक अच्छा हाई स्कूल था, और इसे याद करके अब भी वह अपने गुरुओं के प्रति कृतज्ञता से भर उठती है। एकाध अपवाद को छोड़कर इस स्कूल के सभी अध्यापक छात्र-समुदाय के आदर-पात्र थे—वे भी जो सुधी नहीं थे। "जब मैं उन दिनों को याद

करती हूं तो इस बात से प्रभावित हो उठती हूं कि स्कूल के अध्यापक वर्ग में कितनी बड़ी संख्या में ऐसे स्त्री-पुरुष थे जिनका व्यक्तित्व वस्तुतः गरिमामय था, और जो अपने अध्यापन-कार्य के प्रति वस्तुतः समर्पित थे। वे हमसे काम की आशा करते थे और हममें से अधिकांश लगन से काम करते थे।"

पार्क हाई अपना डिप्लोमा प्राप्त करने के लिए छात्रों को विषय-निर्वाचन में कुछ छूट देता था, और १३-१४ वर्ष की होते-होते डोरोथी निश्चित रूप से समझने लगी थी कि उसे क्या पढ़ना है, क्या नहीं। उसकी विशेष रुचि इतिहास और भाषाओं में थी, और जब भी मौका मिलता, वह अपने अध्ययन के लिए इन्हें अवश्य चुनती थी। उसने त्रिकोणमिति (Trigonometry) भी ली क्योंकि, "मेरे बड़े भाई ने कहा, त्रिकोणमिति लेना मत भूलना, बड़ा मज़ेदार विषय है, और उसका बात ठीक निकली। मैंने त्रिकोणमिति पढ़ी, और मुझे उसमें वाकई मज़ा आया।" वह रसायन या भौतिकी नहीं लेना चाहती थी, और पार्कर हाई से डिप्लोमा प्राप्त करने के लिए ये विषय लेना ज़रूरी भी नहीं था, इसके अलावा इन्हें बिना लिए ही वह शिकागो विश्वविद्यालय में प्रवेश भी पा सकती थी, इसलिए उसने खुशी-खुशी इन दोनों विषयों को तिलांजलि दे दी। सन् १९२२ में वह ग्रेजुएट हुई तो उसके पास साधारण अप्रायोगिक शरीर-क्रियाविज्ञान और मामूली-सी फिज़ियोग्राफी (भौताकृति विज्ञान) को छोड़कर विज्ञान का कोई विषय नहीं था।

इस सचाई के अलावा, कि उसके पास विज्ञान का कोई विषय नहीं था, काली आंखों और काले बालोंवाली इस छरहरे वदन की पन्द्रह-वर्षीय लड़की के बारे में, जो जल्दी ही शिकागो विश्वविद्यालय में कोर्स शुरू करनेवाली थी, कुछ और बातें भी स्पष्ट हैं। सबसे पहली बात तो यही है कि अपने अधिकांश सहपाठियों की अपेक्षा उसका बौद्धिक विकास कहीं अधिक तीव्र गति से हो रहा था। दूसरी बात यह है कि वह अपने परिवार द्वारा निर्धारित पैटर्न में अपनी संगति बिठाने में कठिनाई अनुभव कर रही थी। यह एक ऐसा तथ्य है जो उसे अपने सामाजिक, आर्थिक और बौद्धिक वर्ग के उन अधिकांश नवयुवाओं से पृथक् करता है जो बिना किसी प्रकार की हील-हुज्जत के अपने परिवार द्वारा निर्धारित पैटर्न का अनुगमन करते थे। डोरोथी रुडनिक की परम आकांक्षा कॉलेज में पढ़ने की नहीं, एक वर्ष के लिए यूरोप-भ्रमण करने की थी। यह सम्भव नहीं था, और वह इसके कारणों को भी समझती थी। वह जानती थी कि वह अभी बच्ची ही है, यद्यपि उस वर्ष

गर्मियों में साढ़े पन्द्रह वर्ष की उम्र को वह जितना अधिक समझती थी उतना फिर कभी नहीं समझा। उसके मन में यह बात साफ थी कि एक साल यूरोप में रहने पर जो खर्चा आएगा वह अपने मां-बाप से लेने का उसे कोई अधिकार नहीं है, क्योंकि आगामी वर्षों में रुडनिक-परिवार के बच्चों की उच्चतर शिक्षा पर काफी रुपया खर्च होना था, और वह जानती थी कि उनका पिता, जोकि आरमर लेबोरेटरीज़ में रसायनज्ञ था, कभी अमीर नहीं होगा। इसलिए यूरोप जाने की अपनी आकांक्षा को अपने मन में ही दबाए वह संतुष्ट मन से शिकागो विश्वविद्यालय में बैचलर ऑफ फिलासफी के लिए अपने अध्ययन में जुट गई। उसने भाषाओं को अपना प्रमुख विषय चुना।

उसने मुख्यतः फ्रेंच और इटालियन भाषाओं को चुना, यद्यपि उसके पितामह जब अपने मूल निवास-स्थान से यहां आकर बसे थे तो जर्मन बोलते थे। उसे विश्वविद्यालय के अध्ययन में बड़ा आनन्द आया। भौमिकी (Geology) उसे सबसे पसन्द आया और इस विषय में उसकी विशेष रुचि हो गई। उसका कहना है, "मुझे इस बात की खुशी है कि शिकागो विश्वविद्यालय में विषय-निर्वाचन में छूट नहीं थी, क्योंकि यदि वहां पी-एच० डी० के लिए भौमिकी अनिवार्य विषय न होता तो मैंने उसे कभी न पढ़ा होता।" कॉलेज में वह कभी बोर नहीं हुई। फिर भी, दो साल बाद उसने कॉलेज छोड़ दिया। अब, वह साढ़े सत्रह वर्ष की हो चुकी थी—नौकरी करने काबिल, और खुद कमाना चाहती थी। एक साल नौकरी करके और धन जमा करके वह एक वर्ष के लिए विदेश जाने की अपनी चिर-अभिलाषा पूर्ण कर सकती थी।

यह बात सन् १९२४ की है। उन दिनों शिकागो में नौकरी मिलना मुश्किल न था। शिकागो मण्डी में एक आलीशान इमारत में स्थित एक बैंक ने उसे बुककीपर रख लिया; जोड़ लगानेवाली मशीन से काम लेने और चैक छांटने में उस लड़की को क्या परेशानी हो सकती थी जिसे त्रिकोणमिति जैसी विषय मनोरंजक लगा हो। उसके मां-बाप ने उसकी कमाई में से अपने लिए कुछ नहीं लिया। विश्वविद्यालय में उसकी मैत्री एक ऐसी लड़की से हो गई थी जिसका परिवार अगले वर्ष विदेश में रहने के लिए जा रहा था। इसलिए, डोरोथी और उसकी सहेली ने कुछ दिनों के लिए साथ-साथ यात्रा करने की योजना बनाई। उन्होंने सोचा, कभी सिर्फ वे दोनों, और कभी सहेली के परिवार के साथ, अपने मन की हौंस निकालेंगी—

वे इटली में कुछ चीज़ें देखेंगी और आस्ट्रिया में संगीत का रस लूटेंगी। लेकिन डोरोथी ने अपनी योजना अपने ही बल-बूते पर, और अधिकतर अकेली रहने के विचार से बनाई।

इस प्रकार, शिकागो विश्वविद्यालय और बैंक की नौकरी छोड़कर अट्ठारह वर्ष की यह स्वतन्त्र युवती अपने पैसे से यूरोप-भ्रमण के लिए निकल पड़ी। यह एक रंगीन और साहसपूर्ण कार्य था। उसका चिर-स्वप्न सार्थक होनेवाला था। अब वह युवा हो गई थी, और इस साहसपूर्ण कृत्य का आनन्द और पुलक, यहां तक कि त्रास और कठिनाई का भी पूरा-पूरा आनन्द उठा सकती थी। वह जानती थी कि उसने यह आनन्द खुद कमाए पैसे से खरीदा है। यह आखिरी बात उसके लिए विशेष महत्त्व रखती थी कि उसने यह सब कुछ खुद खरीदा है। विश्लेषण-शील वातावरण उस अंश के अलावा जो उसके व्यक्तित्व में रस-बस गया था, पीछे छूट चुका था, और अब वह भावनात्मक उमंग में भरकर यूरोप जा रही थी। यह उमंग बनी ही रही और पैसा खत्म हो गया, मगर इसके पहले ही वह काफी हद तक अपने मन की निकाल चुकी थी। उसने टायरॉल पर पर्वतारोहण का आनन्द लूटा और अकेली पेरिस गई। जब वह पेरिस पहुंची तो वसन्त का मौसम था और वह अपने ख़र्चे पर कुछ महीने वहां रही।

यूरोप-भ्रमण में उसने बड़ी मितव्ययिता बरती। वह अपने पैसे से अधिक से अधिक दिन यूरोप में रहना चाहती थी। उसका कहना है, "पेरिस में मैं १० डालर प्रति सप्ताह खर्च करती थी, और अमीरों की तरह रहती थी। वहां मेरे परिचय में आनेवाले अधिकतर लोग ५ डालर प्रति सप्ताह ही खर्च करते थे।" मितव्ययिता से काम लेने के कारण वह एक वर्ष की बजाय डेढ़ वर्ष विदेश-भ्रमण का आनन्द लूट सकी। भ्रमण के अन्तिम दिनों में उसने अपने मां-बाप से कुछ पैसा उधार लिया, "यद्यपि यह रकम ज्यादा नहीं थी—और मैंने इसकी पाई-पाई चुका दी।" इधर डोरोथी विदेश-भ्रमण का आनन्द लूट रही थी, और उधर उसके मां-बाप के मित्रादि उनके प्रति ज़रूर हमदर्दी ज़ाहिर कर रहे होंगे, क्योंकि ऐसे मां-बाप कहां होंगे जो अपनी उस अट्ठारह वर्षीय लड़की के लिए थोड़े-बहुत चिन्तित न हो उठें जो उनसे बहुत दूर दुनिया की सैर कर रही हो। लेकिन आखिरकार यह सैर भी खत्म हुई, और पैसे की कमी की वजह से उसे रवाना होने के तीसरे वर्ष सर्दियों में फिर शिकागो लौट आना पड़ा।

अब उसे कुछ दिन दुःख में विताने पड़े। तथ्य आखिर तथ्य थे, और अब उसे इस बात का निर्णय कर लेना जरूरी जान पड़ा कि उसका भावी जीवन-क्रम किस प्रकार का रहेगा। अगर वह बाहर जा पाती, और वहां उसे लेखक के रूप में कोई काम मिल जाता, तो वह तुरन्त उसे स्वीकार कर लेती। लेकिन जिस प्रकार फ्लोरेंस वैन स्ट्रैटन्न ने महसूस किया था, "लेखक बनने का निर्णय करके इस विषय का कुछ वर्षों तक अध्ययन करने के बाद जीविका नहीं कमाई जा सकती," और यह महसूस करने के बाद वह मौसमविज्ञान की ओर उन्मुख हो गई थी, उसी प्रकार डोरोथी रुडनिक भी अपनी अकेन्द्रीभूत प्रवृत्ति को पहचानने का प्रयास करते हुए इस निर्णय पर पहुंची कि उसे किसी न किसी वैज्ञानिक विषय का अध्ययन करना चाहिए। अब वह पछताने लगी—काश इसे वह पहले पहचान पाती!

अब आकर, उसके मन में कम से कम एक बात स्पष्ट हो चुकी थी। 'मैं जान गई थी कि मैं केवल परोक्ष अनुभवों पर जीवित नहीं रह सकती। यद्यपि पुस्तकीय अध्ययन की ओर मेरी रुचि थी—शायद एक हद तक अपनी इसी रुचि के कारण विदेश-भ्रमण में मैं ब्रिटिश म्यूजियम और बिबलियोथिक नेशनल में घंटों बैठी पढ़ती रहती थी—किन्तु अन्ततः मैं इस सचाई को पहचान गई थी कि मुझे प्रायोगिक विज्ञान से प्राप्त प्रत्यक्ष अनुभव की परम आवश्यकता है।" इसलिए, उस वर्ष उसने विश्वविद्यालय लौटने का निश्चय किया। उसने निश्चय किया कि वह अपना प्रमुख विषय भाषाओं को ही रखेगी लेकिन कोई वैज्ञानिक विषय, संभवतः जीवविज्ञान भी ले लेगी, यद्यपि उस समय किसी विषय का उसके लिए इतना महत्त्व नहीं था, महत्त्व सिर्फ इस बात का था कि वह विषय विज्ञान से संबद्ध हो।

इस निर्णय के साथ ही उसने एक और निर्णय भी लिया, जो इतना कठिन नहीं था। उसने फैसला किया कि वह जो कुछ भी पढ़ेगी, रुचिपूर्वक पढ़ेगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बीस वर्ष की अवस्था को पार करके जो नई मिस रुडनिक आविर्भूत हो रही थी वह पहल करनेवाली, क्षमतावान और व्यक्तिगत उत्तरदायित्व को समझनेवाली युवती थी जो यह समझ गई थी कि अपनी क्षमताओं को बढ़ाने के लिए उसे अपनी प्रवृत्तियों को किसी एक बिन्दु पर केन्द्रित करना ही होगा।

जल्दी ही एक ऐसी बात हुई जो आशातीत और चौंका-देनेवाली थी। प्राणि-विज्ञान में एक आरम्भिक कोर्स करते हुए वह प्राणियों में पाए जानेवाले रचनात्मक पैटर्नों की अनेकविधता की ओर आकृष्ट हो गई। उसके मस्तिष्क में (उसका कहना है, "यह मूलतः एक इतिहासज्ञ का मस्तिष्क है।") यह बात आई कि भ्रूणविज्ञान ही इन रूपों के विकास का अध्ययन और इनका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष है। इसलिए उसने भ्रूणविज्ञान में एक कोर्स ले लिया और शीघ्र ही उसे पता चला कि प्राणियों के रूपों के इतिहास का 'विश्लेषण' करने के लिए इस विषय में बौद्धिक और तकनीकी उपकरण प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। इस अनुभूति के बाद उसका अनिश्चय समाप्त हो गया। अब उसके लिए भ्रूण ऐसे सुन्दर और रहस्यमय पदार्थ हो गए जो उचित प्रश्न किए जाने पर प्रश्नकर्त्ता को अपने गोपनीय रहस्य बता सकते हैं, और प्रोफेसर बी० एच० विलियर जैसे वैज्ञानिक की छात्रा को प्रश्न करने का उचित ढंग सीखने में कठिनाई ही क्या हो सकती थी। संक्षेप में, "भ्रूणविज्ञान ने मुझे आकृष्ट कर लिया। अब भी मैं इसे आकर्षक पाती हूं।" यह विषय उसके लिए 'आवश्यक' हो गया।

आशा के अनुरूप उसने जमकर काम किया और तेज़ी से प्रगति की। सन् १९२८ में उसने भाषाओं में पी-एच० डी० किया और 'फाई बीटा कैप्पा' के लिए चुन ली गई। ग्रेजुएट कक्षा में पहले वर्ष उसने फेलोशिप के लिए अर्ज़ी नहीं दी, क्योंकि वह समझती थी कि दूसरे विद्यार्थी उससे कहीं अधिक ज़रूरतमन्द हैं। लेकिन जब एक वर्ष बाद उसे पता चला कि फेलोशिप से उसे बड़ी सुविधाएं मिल सकती थीं तो उसने अर्ज़ी दे दी, और शिकागो विश्वविद्यालय में अगले दो वर्षों में उसे फेलोशिप मिलती रही।

प्राणिविज्ञान विभाग के प्रोफेसर विलियर वाले सैक्शन में उसे जल्दी ही भ्रूणविज्ञान की एक विशेष समस्या, या समस्याओं के एक वर्ग पर काम करना पड़ा जो आज तक उसकी रुचि का प्रमुख विषय है—इस समस्या को 'विभेदीकरण' (Differentiation) कहते हैं। इसे इस प्रकार समझा जा सकता है: भ्रूणवैज्ञानिक अध्ययन का सम्बन्ध प्राणियों की भ्रूण अवस्था से है जो मानवों में गर्भाधान के बाद तीन महीनों तक, और दूसरे जानवरों में इससे कम या अधिक समय तक रहती है। मिस रुडनिक और उसके साथियों ने भ्रूणविज्ञान के अपने कोर्स में प्राणियों की रचना का अध्ययन उनके विकास की 'प्रक्रिया' को समझने

के लिए किया था। विभेदीकरण इसी प्रक्रिया का एक पक्ष है। मिस रुडनिक के मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि ऐसा क्यों होता है कि एक भ्रूण का कोई छोटा-सा हिस्सा या कई हिस्से तो फेफड़ा बन जाता है, और दूसरा हिस्सा दाहिना कान या दुम का पर वन जाता है। उसमें इस प्रक्रिया में लगनेवाले समय और घटना-क्रम का निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त करने की भी इच्छा उत्पन्न हुई।

उदाहरणार्थ : नवदीक्षित भ्रूणवैज्ञानिकों के प्रिय उपकरण अंडे को देखते ही वह समझ जाती थी कि यह एक संसेचित अंडा है, तो यदि इसकी उचित देख-भाल की जाए तो—यह एक मुर्गी के वच्चे का रूप धारण कर सकता है। जब इसी अंडे को एक प्लेट में तोड़ दिया जाता था तो इसे देखते ही वह समझ जाती है कि इसकी ज़र्दी वह एकत्रित भोजन है जो भ्रूण या शावक चूज़े के काम आता, बशर्ते कि इस अण्डे को प्लेट में तोड़ने के बजाय अण्डे सेने की मशीन में रखा जाता। उसकी रुचि उस ज़रा-सी सफेद में थी जो अण्डे का छिलका तोड़ते ही उसकी ज़र्दी के ऊपर रह जाती है। यह सफेदी वस्तुत: जीवित जीवद्रव्य (Proto-plasm) था, जिसमें छिलके को फोड़कर बाहर आनेवाले चूज़े की शक्ल में वदल जाने की स्वाभाविक क्षमता होती है। वह जानती थी कि जीवित जीवद्रव्य की उस ज़रा-सी चिन्दी में ऐसे अदृश्य तत्त्व हैं जो एक दिन एक भरे-पूरे, परोंवाले चूज़े के प्रत्येक भेदीकृत अंग—ऊतक, अस्थि और शरीर के दूसरे अंगों में परि-वर्तित हो जाएंगे। उसे अचरज इस वात का था कि जीवद्रव्य की इस छोटी-सी चिन्दी में वह तत्त्व कहां है जो चूजे की पेषणी (Gizzard) वनेगा, वह चीज़ कहां है जो उसकी बायीं पलक वनेगी और वह चीज़ कहां है जो उसके दाहिने पैर का मुड़ा हुआ पंजा वनेगी। इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह था कि इन अदृश्य चीज़ों को चूज़े के विभिन्न अंगों और उपांगों में रूपायित करनेवाली यह प्रक्रिया कब शुरू होती है, और कैसे आगे बढ़ती है।

डा० विलियर के सुझाव पर उसने चूज़े के थाइरॉयड के मूल को खोजने के इरादे से एक शोध-कार्य प्रारंभ किया। यह शोध-कार्य पूरा हुआ और जब वह ग्रेजुएट विद्यार्थी के रूप में दूसरे वर्ष में पढ़ रही थी तब प्रायोगिक जीव विज्ञान और चिकित्सा की गतिविधियों में इसका उल्लेख किया गया। इस खोज से साफ-साफ पता लग गया कि अन्ततः चूज़े में थाइरॉयड का रूप लेनेवाले ऊतकों का मूल दो विशिष्ट क्षेत्रों में है। वह जीवित जीवद्रव्य (या ब्लैस्टोडर्म) में किसी भी

समझदार व्यक्ति को इन दोनों क्षेत्रों की स्थिति समझा सकता है—जीवद्रव्य जिसे पचासों बार उसने इस हसरत से देखा है कि वह उसके कुछ रहस्यों पर प्रकाश डाल सके।

ग्रेजुएट स्कूल-कार्य के आरम्भ से ही उसने एक भ्रूण के छांटे गए भाग दूसरे भ्रूण में प्रतिरोपित करने की सूक्ष्म तकनीकों के विकास का कार्य आरम्भ कर दिया था। वस्तुतः अपने इसी कार्य के कारण उसे विभेदीकरण के क्षेत्र में विशेष ख्याति प्राप्त हुई है। यह तकनीक उसकी मौलिक नहीं थी, किन्तु इसमें इतने अधिक हस्त-कौशल की अपेक्षा है कि इने-गिने भ्रूणवैज्ञानिक और आनुवंशिकविज्ञ ही इसका प्रयोग सफलतापूर्वक कर सकते हैं। सन् १९३१ में उसे शिकागो विश्व-विद्यालय से पी-एच० डी० की उपाधि मिली और सन् १९४० में वह न्यू हैवन में एलबर्ट्स मैगनस कॉलिज में प्राणिविज्ञान की असिस्टेंट प्रोफेसर बनी। इन दोनों घटनाओं के बीच के वर्षों में उसे एक के बाद दूसरी फेलोशिप मिलती रही। पहले उसने येल-स्थित ऑसबर्न प्राणिविज्ञान प्रयोगशाला में तीन वर्ष तक प्रायोगिक शोध की। इसके बाद तीन वर्ष तक वह रौचेस्टर विश्वविद्यालय में अनुसंधान-रत रही। फिर वह पहली बार कनैक्टीकट में कृषि-सम्बन्धी अनुसंधान केन्द्र में वेतनभोगी प्रशिक्षक बनी। इसके बाद उसने वैलज़ली में नौकरी की।

इन वर्षों में डा० रुडनिक इस बात पर बराबर शोध में लगी रही कि भ्रूणों में चीज़ें कैसे, क्यों और कब होती हैं। अलबत्ता, अध्यापन के क्षेत्र में आने के बाद वह अनुसंधान को अपेक्षाकृत कम समय दे पाई। उसका एक तरीका यह था कि वह एक भ्रूण के अंग दूसरे भ्रूण में प्रतिरोपित कर देती थी, और सूक्ष्म विश्लेषण द्वारा यह देखने का प्रयत्न करती थी कि कब और क्या परिणाम निकलते हैं। सन् १९४२ की गर्मियों में वह एक ऐसा प्रयोग करनेवाली थी जिससे दो प्रश्नों का उत्तर मिल सकता था। पहला प्रश्न था : यदि किसी ताज़े भ्रूण का कोई हिस्सा लेकर किसी दूसरे भ्रूण में प्रतिरोपित कर दिया जाए तो क्या वह हिस्सा इस नये भ्रूण में भी वही अंग बनेगा जो वह पहलेवाले भ्रूण में रहकर अपने स्वाभाविक विकास-क्रम में बनता? चूज़ों के भ्रूणों पर किए जानेवाले इस प्रयोग की तुलना उस प्रयोग से की जा सकती है जिसमें बाल्डविन सेबों की कलम मैंकिनतोश सेब के तने पर लगाई गई थी और उस कलम से बाल्डविन सेब ही उत्पन्न हुए थे।

अपने प्रयोग के लिए डा० रुडनिक ने क्रीपर (एक प्रकार की छोटी टांगों-वाली मुर्गी) के भ्रूण के कुछ खंड सफेद लैगहॉर्न मुर्गियों के अण्डों से प्राप्त भ्रूणों में प्रतिरोपित करने का निश्चय किया। क्रीपर जो अण्डे देती हैं उनमें से एक चौथाई में से तो बच्चे पैदा ही नहीं होते। इन अण्डों के भ्रूण छिलकों में ही मर जाते हैं। इनमें से जो भ्रूण बच जाते हैं और विकसित होते हैं उनके पैर सिर्फ छोटे नहीं बल्कि बेहद छोटे होते हैं।

यह प्रयोग स्टौर्स लेबोरेटरीज में किया गया, जहां वह पहले भी काम कर चुकी थी, और अब फिर वापस आ गई थी। सफेद लैगहार्न के अंडों को लगभग ६० घण्टे और क्रीपर के अंडों को सिर्फ २४–३० घण्टों तक अंडे सेने की मशीन में रखा गया। प्रयोग में काम आनेवाले अंडे को इस प्रकार के प्रकाश में देखा गया कि उसका भ्रूण दिखाई देने लगे और फिर जहां वह स्थित था उस जगह छिलके पर एक निशान बना दिया गया। अब डा० रुडनिक ने एक छोटी-सी आरी ली और इस निशान के चारों ओर एक छोटी-सी खिड़की-सी बना दी, और खिड़की के किवाड़ को लगा ही रहने दिया—इसे बाद को हटाना था। तब नमक के गर्म घोल से भरी एक पैट्री डिश में क्रीपर का एक अंडा तोड़ा गया। अपने द्विनेत्री विच्छेदक सूक्ष्मदर्शी के प्रयोग से डा० रुडनिक ने उसके भ्रूण (या ब्लैस्टोडर्म) को अलग किया और फिर शीशे की एक नली से नमक के घोल को बार-बार फूंककर उस भ्रूण को पैट्री डिश में फैला दिया।

अब उसने एक शीशे की सुई से, जो शीशे की एक छड़ को मद्धम गैस लपट में पिघलाकर बनाई गई थी, फैले हुए भ्रूण के केन्द्र में स्थित साइनस रॉम्बोइडेलिस (Sinus rhomboidalis) की दाहिनी और बायीं ओर से दो खण्ड काटकर अलग कर लिए। इन दोनों खण्डों में अंग-निर्माता क्षेत्र सम्मिलित था, किन्तु ये खण्ड उस क्षेत्र-विशेष से बड़े थे। अंडों को सेने की मशीन में रखने का यह समय इतना कम था कि एक अंग-निर्माता खण्ड को प्रतिरोपित करना सम्भव नहीं था। अब उसने पहलेवाले अंडे की खिड़की का किवाड़ हटा दिया, अन्दर की झिल्ली को कुछ दूर तक चीर दिया और उसे छोटी-छोटी चिमटियों से पकड़े रही। इसके बाद उसने अपने सूक्ष्मदर्शी का प्रकाश खुली हुई खिड़की के नीचे स्थित भ्रूण पर केन्द्रित किया और भ्रूण की कोख में एक छोटा-सा सूराख कर दिया। अब उसने शीशे की नली से क्रीपर के भ्रूण से अलग किया गया पहला खण्ड मुंह में चूस लिया

(दूसरा खण्ड लैंगहार्न के दूसरे भ्रूण में प्रतिरोपित करना था) और, सूक्ष्मदर्शी की सहायता से काम करते हुए, लैंगहॉर्न के भ्रूण की कोख में किए गए सूराख से उसे प्रतिरोपित कर दिया। इसके बाद खिड़की पर छिलके का वही किवाड़ लगा दिया गया, पैराफीन से बन्द कर दिया गया, और अंडे को फिर से अंडे सेने की मशीन में रख दिया गया।

इस सारे ऑपरेशन में १०-१५ मिनट लगे और "यह मुश्किल नहीं है," यह उसका कथन है—इस कथन को उस कलाकार के उन शब्दों की भांति ही समझना चाहिए जिनका वह आपको अपनी एचिंग दिखाते समय प्रयोग करता है। अपनी सूक्ष्म तकनीकों की पूर्णता से डोरोथी रुडनिक को वह कलात्मक संतोष प्राप्त होता है जो उसे कठिनाइयों की ओर से बेखबर कर देता है।

अगर यह कठिन नहीं है (उसके लिए!) तो भी इस तरह के शोध को संतोषजनक रूप से पूर्ण करना टेढ़ी खीर है, क्योंकि इसमें बहुत अधिक अंडों की दरकार होगी। यद्यपि सन् १९४५ में 'दि जर्नल ऑफ एक्सपेरीमेंटल जूओलॉजी' में उसने पूर्वोक्त प्रयोग से संबद्ध अपना जो लेख प्रकाशित कराया उससे यह नहीं पता चलता कि इस प्रयोग में कितने अंडे काम आए, फिर भी उससे यह तो पता चल ही जाता है कि कुल मिलाकर १५९ पृथक्-पृथक् ऑपरेशन किए गए, जिनमें लैंगहॉर्न अंडों में प्रतिरोपण के बाद ६ से १४ दिन तक भ्रूण जीवित था। १५९ जीवित भ्रूणों में से ९३ में प्रतिरोपित खंडों का विकास हुआ। इनमें से लगभग एक-तिहाई में साफ पता चल रहा था कि भ्रूण लैंगहॉर्न का होते हुए भी उसमें से जो पांव या पंख के भाग निकल रहे हैं वे क्रीपर के हैं।

इन प्रतिरोपित अंगों के परीक्षण से सिद्ध हो गया कि उसके पहले सवाल का जवाब 'हां' में था—अर्थात्, यदि एक भ्रूण के कुछ खंड किसी दूसरे भ्रूण में प्रतिरोपित कर दिए जाएं तो वे इस नये भ्रूण में भी उन्हीं अंगों के रूप में विकसित होंगे जिनमें वे अपने वास्तविक भ्रूण में होते।

दूसरे प्रश्न का उत्तर भी मिल गया। यह प्रश्न था: असामान्यता अंग-निर्माता क्षेत्र के 'भीतर' स्थित किसी कारण से होती है (जैसाकि कुछ वैज्ञानिकों का कहना है) अथवा उस क्षेत्र के बाहर से आई किसी चीज़ के कारण, जैसे अंग-मुकुल (Limb bud) के आकार ग्रहण करते समय अल्प प्रवाह या रुधिर-प्रवाह का विषाक्त हो जाना। इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए उसने अंगनिर्माता क्षेत्रों

से (इसके पहले कि भ्रूणों में उनका अपना रुधिर-संचार तंत्र विकसित हो सके) प्रतिरोपणीय खंड ले लिए। इन खंडों का सम्बन्ध सामान्य रुधिर-संचार से ही रहा था। परीक्षणों से पता चला कि सफल प्रतिरोपणों में से एक-चौथाई में प्रतिरोपित खंडों के कारण टांगें बहुत छोटी (क्रीपर जैसी) हैं। यह वही प्रतिशत है जो क्रीपर के अंडों में से सामान्यतया विकसित होता है (मगर अंडे के छिलके में ही मर जाता है)। इस प्रयोग से यह सिद्ध हो गया कि असामान्यता का कारण अंग-निर्माता क्षेत्र में ही विद्यमान है।

अंगों के इस प्रतिरोपण के समय अंडे बहुत कम समय के लिए सेने की मशीन में रखे जाते हैं—कुल १४–३० घंटे तक। इससे, सामान्य-जन इस बात का कुछ अंदाज़ा लगा सकता है कि भ्रूण की कितनी आरम्भिक अवस्था में यह पता लगाया जाता है कि जीवित जीवद्रव्य की उस छोटी-सी चिंदी में उस चीज़ की स्थिति का पता लगाया जाता है जो विकसित होकर टांग या पंख बनती है। वह यह भी समझ सकता है कि इस प्रकार के अनुसंधान के लिए प्रभूत परिश्रम की अपेक्षा है। इसकी कष्टसाध्य शारीरिक प्रक्रियाएं लंबा समय चाहती हैं, परीक्षणों और विश्लेषण में तो और भी अधिक समय लगता है, तब कहीं जाकर परिणाम निकलता है।

भावी अंग-निर्माता सामग्री के विभेदीकरण का अध्ययन करने के बाद उसने चूज़ों पर और भी काम किया जिसका सम्बन्ध उनके फेफड़े, दिल, यकृत, आंत और तंत्रिका-तंत्र से था। येल-स्थित ऑसबर्न ज़ूओलॉजिकल लेबोरेटरी की फेलो के रूप में वह डा० जे० एस० निकोलस के साथ चूहों के भ्रूणों पर भी कुछ काम कर चुकी थी। इन प्रयोगों से सिद्ध हो चुका था कि यदि चूहों के भ्रूणों को हटाकर जीव के शरीर के बाहर ऊतकों के संवर्द्धनों (Cultures) में प्रतिरोपित कर दिया जाए तो मां के शरीर के बाहर भी उनके आंशिक विकास, स्पंदनयुक्त दिल आदि का निर्माण हो सकता है। ऐसे एक प्रयोग में एक सौ सफल प्रतिरोपण किए गए और उनके परिणामों की रिपोर्ट तैयार की गई। फिर भी मिस रुडनिक का ध्यान विशेष रूप से चूज़ों के भ्रूणों पर ही रहा। सन् १९५० के आरम्भ में उसे जगनहाइम पुरस्कार मिला। इस पुरस्कार की सहायता से वह एलबर्टस मैगनस कॉलेज में अपने अध्यापकीय और प्रशासकीय कार्य से मुक्त होकर चूज़ों के भ्रूणों पर अपना काम आगे बढ़ा सकी। सन् १९४८ में वह इस कॉलेज में प्रोफेसर बना दी गई थी।

जगनहाइम पुरस्कार उसे विशेष रूप से चूज़ों के भ्रूणों में प्रोटीन के संश्लेषण से संबद्ध प्रकिण्व तंत्र का अध्ययन करने के लिए दिया गया था। यह काम यकृत (पूरी मुर्गी में प्रोटीन संश्लेषण का केन्द्र) के विभेदीकरण पर किए गए उसके काम का ही विकसित रूप था। उसने अंडे की ज़र्दी में से यकृत को अलग करके उसे जीवित भ्रूण में पहुंचा दिया, जहां उसका उपयोग अंग-निर्माता सामग्री के रूप में किया गया। अब उसने इस बात पर ध्यान दिया कि प्रोटीन का संश्लेषण कब शुरू होता है—उसका उद्देश्य इस संश्लेषण से संबद्ध प्रकिण्व-विषयक गति-विधियों का अध्ययन करना था। वह यह जानना चाहती थी कि भ्रूण यकृत में संघटित प्रकिण्वों को जल्दी से जल्दी कब पहचाना जा सकता है ?

यह प्रयोग डा० मेला और डा० वैल्श के सहयोग में डा० वैल्श की प्रयोग-शाला में किया गया। भ्रूणवैज्ञानिक डा० रुडनिक को जीवरसायनज्ञ डा० वैल्श की प्रयोगशाला में जाकर प्रकिण्वों का अध्ययन करने की सूक्ष्म विधियों को सीखना एक सुखद अनुभव प्रतीत हुआ। उन्हें प्रकिण्व के इतिहास की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालने में सफलता मिली। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि प्रकिण्व पहले खास भ्रूण के बाहर, अंडे की ज़र्दी के चारों ओर लिपटी रहनेवाली झिल्ली में प्रकट होता है। बाद में, भ्रूण-यकृत के प्रकट होने पर, यह उसमें पाया गया और काफी बाद में मस्तिष्क में पाया गया।

स्वाभाविक था कि इस सफलता से उत्साहित होकर डा० रुडनिक के मन में चूज़ों के तंत्रिका-तंत्र के ऊतकों (मस्तिष्क और मेरु रज्जु) के बारे में विस्तार से जानने की इच्छा उत्पन्न हुई, बाद में उसने डा० वैल्श के साथ इस विषय का अध्ययन भी किया। अभी (सन् १९५९ में) इसके कुछ भाग पर काम जारी ही है लेकिन यह काम शुरू करने के पहले डा० रुडनिक ने जगनहाइम पुरस्कार-वर्ष पूरा किया। इस क्रम में वह चार या पांच महीने बाहर भी गई और यूरोप में उसने भ्रूणवैज्ञानिक कार्य को देखा और समझा। उसने एटिएन वुल्फ लेबोरेटरी, स्ट्रासबर्ग, में छः सप्ताह काम किया, और बोलोग्ना में एक विचार-गोष्ठी में इटालियन भाषा में भाषण दिया। "मुझे बहुत अभ्यास करना पड़ा," उसका कहना है।

डा० रुडनिक उन वैज्ञानिकों में से है जिन्हें अध्यापन और अनुसंधान—दोनों में संतोष मिलता है, और न्यू हैवन में उसका पद ऐसा है कि उसे दोनों ही के

लिए सुअवसर प्राप्त हैं। ऑसवर्न जूओलॉजिकल लेबोरेटरी में उसकी एक छोटी-सी प्रयोगशाला है जहां वह ऑसवर्न की ओर से मिलनेवाली सुविधाओं के सहारे अपना शोध-कार्य करती रहती है। यहां से, कार में, चंद मिनटों में ही वह एलवर्टस मैगनस कॉलेज पहुंचकर अपनी कक्षाओं और प्रयोगशालाओं में काम कर सकती है। अनुसंधान-कार्य प्रायः वह सप्ताहांत में, गर्मियों में और दूसरी छुट्टियों में ही करती है, क्योंकि पढ़ाने में उसे काफी समय देना पड़ता है। जब कभी कोई प्रयोग या अनुसंधान ज़रूरी होता है तो वह शाम को या तीसरे पहर आकर ऑसवर्न में काम करती है।

अनुसंधान और अध्यापन के अतिरिक्त डा० रुडनिक ने कुछ वर्षों तक 'सोसाइटी फॉर दि स्टडी ऑफ ग्रोथ एंड डेवेलपमेंट' द्वारा प्रकाशित वार्षिक ग्रंथ में संपादक के रूप में भी काम किया। इस ग्रंथ में सोसाइटी द्वारा प्रतिवर्ष आयोजित परिसंवाद में पढ़े गए लेखादि भी प्रकाशित किए जाते हैं। उसे लिखने में अब भी आनन्द आता है, और उसने पाठ्य-पुस्तकों और दूसरे प्रकाशनों में लेखक के रूप में अपना योगदान दिया है। भ्रूणविज्ञान के अपने क्षेत्र में वह एक मान्य अधिकारी विद्वान है। अभी उसके सामने वर्षों का सक्रिय जीवन है, और उसे आशा है कि भ्रूणविज्ञान उसके लिए आकर्षणहीन कभी नहीं होगा, और वह उसमें और महत्त्वपूर्ण कार्य करेगी।

ooo